असंभव क्रान्ति

भगवान श्री रजनीश

असंभव क्रान्ति

भगवान श्री रजनीश

सम्पादन :

स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व

संकलन :

मा अमृत मुक्ति

ओम रजनीश ध्यान केन्द्र प्रकाशन

बम्बई

कापीराइट :
रजनीश फाउन्डेशन, पूना

प्रकाशक :
स्वामी ईश्वर समर्पण
३१, इजरायल मोहल्ला, भगवान भुवन,
मस्जिद बन्दर रोड, बम्बई-९

प्रथम संस्करण : मर्च-१९७६
प्रतियां : ५,०००

मूल्य :

मुद्रक :
अशेष प्रिन्टर्स,
७८१, राइट-टाउन, जबलपुर

अंतर्क्रम

पूर्वाभास

लोगों को मरघट पर अर्थी ले जाते मैं देखता हूं। तो कन्धे बदलते रहते हैं रास्ते में। इस कन्धे पर रखी अर्थी, फिर उस कंधे पर रख लेते हैं। कन्धा बदलने से थोड़ी राहत मिलती होगी—इस कन्धे पर वजन कम हो जाता है, यह थक जाता है, तो फिर दूसरा कन्धा। थोड़ी देर बाद फिर उनको मैं कन्धे बदलते देखता हूं, फिर इस कन्धे पर ले लेते हैं। कन्धे बदल जाते हैं, लेकिन आदमी के ऊपर वह अर्थी का बोझ तो तैयार ही रहता है—इससे क्या फर्क पड़ता है कि कन्धे बदल लिए ? थोड़ी देर राहत मिलती है, दूसरा कन्धा फिर तैयार हो जाता है।

इसी तरह दुनिया में इतने धर्म पैदा हो गए हैं—कन्धे बदलने के लिए। नहीं तो कोई और कारण नहीं था कि ईसाई हिन्दू हो जाता, हिन्दू ईसाई हो जाता। एक पागलपन से छूटता है, दूसरा पागलपन हमेशा तैयार है। दुनिया में तीन सौ धर्म पैदा हो गए, कन्धे बदलने की सुविधा के लिए। और कोई उपयोग नहीं है। जरा भी उपयोग नहीं है। और भ्रांति यह पैदा होती है कि मैं एक गुलामी से छूटा, मैं आजादी की तरफ जा रहा हूं। एक हिन्दू ईसाई होता है, तो सोचता है, मैं आजादी की तरफ जा रहा हूं। सिर्फ अपरिचित गुलामी उसको आजादी मालूम पड़ गई। थोड़े दिनों बाद पायेगा कि फिर एक नई गुलामी में खड़ा हो गया। पुराना मन्दिर छूट गया, नया चर्च खड़ा हो गया। लेकिन वह नया देखने-भर को ही था। वह सबस्टीट्यूट सिद्ध होता है—पुराने मन्दिर की जगह फिर एक दूसरा मंदिर उपलब्ध हो जाता है। एक गुलामी बदलती है, दूसरी गुलामी शुरू हो जाती है।

मैं आपको कोई नयी गुलामी का संदेश देने को नहीं हूं। गुलामी से गुलामी की तरफ नहीं, गुलामी से स्वतंत्रता की तरफ यात्रा करनी है। वह मेरी बात मानकर नहीं हो सकता है। इसलिए मेरी बात मानने की जरा भी जरूरत नहीं है। मैं कहीं भी आपके रास्ते में खड़ा नहीं होना चाहता हूं। मैंने निवेदन कर दी अपनी बात—वह

सोचने-समझने को है। अगर वह फिजूल मालूम पड़े तो उसे एकदम फेंक देना। क्योंकि जानकर आपने फेंकने में संकोच किया, कि वह आपको पकड़ लेगी। जरा ही आप डरे कि इसको न फेंकें, वह आपकी गुलामी बन जायेगी। फिर वह आपके भीतर जड़ें फैलाना शुरू कर देगी। कल आप एक नई गुलामी में फिर से आबद्ध हो जायेंगे। एक नया कारागृह फिर खड़ा हो जायेगा। अब तक के सभी गुरु, सभी शास्ता मनुष्य के लिए कारागृह इसी तरह बन गये।

मैं आपके लिए कोई कारागृह कोई इमप्रिजनमेन्ट नहीं बनना चाहता हूं। इसलिए मेरी बात मानने की जरा भी मोह करने की जरूरत नहीं है। मैं कह रहा हूं—आप तथ्यों को विचार कर लें, सोच लें और अगर तथ्य दिखाई पड़ते हों, तो क्या मैं आपसे कहूं कि आपको फिर एक्ट करना पड़ेगा, आपको कुछ करना पड़ेगा? तथ्य दिखाई पड़ेंगे तो आप कुछ करेंगे ही। तथ्य दिखाई नहीं पड़ते, इसलिए कुछ नहीं करते।

रास्ते पर सांप जाता आपको मिल जाये, दिखाई पड़ जाय, तो आप पूछेंगे, अब मैं क्या करूं? आप छलांग लगा जायेंगे, पूछेंगे नहीं। पूछने की सुविधा और फुरसत वहां आप नहीं पायेंगे। घर में आग लग जाये, तो आप क्या पूछेंगे कि अब मैं क्या करूं? आप बाहर निकल जायेंगे।

जिस दिन आपको यह दिखाई पड़ जाय कि आपका मन हजारों साल से गुलामी में बंधा हुआ है, उस दिन क्या आप किसी से पूछेंगे, मैं क्या करूं? नहीं, आप गुलामी के बाहर कूद जायेंगे।

देखते ही क्रिया होनी शुरू हो जाती है। देखते ही असम्भव क्रांति होनी शुरू हो जाती है।

उपरोक्त वचन भगवान श्री रजनीश के हैं—असम्भव-क्रांति के लिए सूत्र-रूप हैं। इसलिए अपनी गुलामी को छिपायें न, अच्छे-अच्छे शब्दों में उसे ढांकें न। उसे देखें, देखते ही असम्भव क्रांति घटित होने लगेगी।

—स्वामी नरेन्द्र बोधिसत्व

श्री रजनीश आश्रम, पूना-१

१. सत्य का द्वार

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक सम्राट एक दिन सुबह अपने बगीचे में निकला। निकलते ही उसके पैर में कांटा गड़ गया। बहुत पीड़ा उसे हुई। और उसने सारे साम्राज्य में जितने भी विचारशील लोग थे, उन्हें राजधानी आमन्त्रित किया। और उन लोगों से कहा, ऐसी कोई आयोजना करो कि मेरे पैर में कांटा न गड़ पाए।

वे विचारशील लोग हजारों की संख्या में महीनों तक विचार करते रहे और अन्ततः उन्होंने यह निर्णय किया कि सारी पृथ्वी को चमड़े से ढांक दिया जाय, ताकि सम्राट के पैर में कांटा न गड़े। यह खबर पूरे राज्य में फैल गई। किसान घबड़ा उठे। अगर सारी जमीन चमड़े से ढंक दी गई, तो अनाज कैसे पैदा होगा? सारे लोग घबड़ा उठे—राजा के पैर में कांटा न गड़े, कहीं इसके पहले सारी मनुष्य जाति की हत्या तो नहीं कर दी जायगी? क्योंकि सारी जमीन ढंक जाएगी, तो जीवन असम्भव हो जाएगा।

लाखों लोगों ने राजमहल के द्वार पर प्रार्थना की और राजा को कहा, ऐसा न करें कोई और उपाय खोजें। विद्वान थे, बुलाए गए और उन्होंने कहा, तब दूसरा उपाय यह है कि पृथ्वी से सारी धूल अलग कर दी जाय, कांटे अलग कर दिए जाएं, ताकि आपको कोई तकलीफ न हो।

कांटों की सफाई का आयोजन हुआ। लाखों मजदूर राजधानी के आसपास झाड़ुएं लेकर रास्तों को, पथों को, खेतों को कांटों से मुक्त करने लगे। धूल के बवंडर उठे, आकाश धूल से भर गया। लाखों लोग सफाई कर रहे थे। एक भी कांटे को पृथ्वी पर बचने नहीं देना था, धूल नहीं बचने देनी थी, ताकि राजा को कोई तकलीफ न हो, उसके कपड़े भी खराब न हों, कांटे भी न गड़ें। हजारों लोग बीमार

पड़ गए, इतनी धूल उड़ी। कुछ लोग बेहोश हो गए, क्योंकि चौबीस घंटा, अखंड धूल उड़ाने का क्रम चलता था। धूल वापस बैठ जाती थी, इसलिए क्रम बंद भी नहीं किया जा सकता था।

सारी प्रजा में घबड़ाहट फैल गई। लोगों ने राजा से प्रार्थना की यह क्या पागलपन हो रहा है। इतनी धूल उठा दी गई है कि हमारा जीना दूभर हो गया, सांस लेना मुश्किल है। कृपा करके ये धूल के बादल वापस बिठाए जाएं। कोई और रास्ता खोजा जाए।

फिर हजारों मजदूरों को कहा गया कि वे जाकर पानी भरें और सारी पृथ्वी को सींचें। नदी और तालाब सूख गए। लाखों भिस्तियों ने सारी राजधानी को, राजधानी के आसपास की भूमि को पानी से सींचा। कींचड़ मच गई, गरीबों के झोपड़े बह गए। बहुत मुसीबत खड़ी हो गई। फिर राजा से प्रार्थना की गई कि यह क्या हो रहा है—क्या आप हमें जीने न देंगे? क्या आपके पैर में एक कांटा लगता है तो हम सबका जीवन मुश्किल हो जाएगा? कोई और रास्ता खोजें।

और तभी एक बूढ़े आदमी ने आकर राजा को कहा, मैं यह जूता आपके लिए बना लाया हूं, इसे पहन लें, कांटा फिर आपको न गड़ेगा और हमारा जीवन भी बच जाएगा।

राजा हैरान हुआ। इतना सरल उपाय भी हो सकता था क्या? पैर ढंके देखकर वह चकित हो गया। क्या कोई इतना बुद्धिमान मनुष्य भी था जिसने इतनी सरलता से बात हल कर दी, जिसे लाखों विद्वान हल न कर सके! करोड़ों रुपया खर्च हुआ, हजारों लोग परेशान हुए—क्या इतनी सरल बात थी।

और सारे पंडित, सारे विद्वान क्रोध और ईर्ष्या से भर गए—यह बूढ़ा आदमी खतरनाक था। इसके प्रति, इस बूढ़े के प्रति, उन सबके मन में तीव्र रोष भर गया। उन्होंने कहा, जरूर इस आदमी को शैतान ने ही सहायता दी होगी। क्योंकि हम इतने विचारशील

लोग नहीं खोज पाए जो बात, वह इसने खोज ली है! जरूर इसमें कोई खतरा है।

राजा को उन्होंने समझाया। यह जूता खतरनाक सिद्ध होगा, शैतान का हाथ इसमें होना चाहिए। क्योंकि हमारी सारी बुद्धिमत्ता जो नहीं खोज सकी, उसे यह बूढ़ा आदमी कैसे खोज लेगा। राजा को उन्होंने भड़काया, समझाया। राजा भयभीत हो गया। उस बूढ़े आदमी को सूली दे दी गई। वह पहला समझदार आदमी सूली पर चढ़ा। और उसके बाद जितने लोगों ने यह सलाह दी है कि कृपा करें, पृथ्वी को परेशान न करें, अपने पैर ढंक लें, उन सभी को सूली दी जाती रही है।

शायद इसलिए वह पहला क्रांतिकारी व्यक्ति, जिसने जूते की ईजाद की थी, उसके वंशज आज भी अपमानित हैं—आज भी चमार का कोई आदर नहीं है। शायद पंडितों का ही हाथ होगा इसमें।

इस कहानी से इन तीन दिनों की चर्चा को मैं शुरू करना चाहता हूं। इस वजह से कि सारी दुनिया में सभी मनुष्यों का एक ही प्रश्न है—दुख के कांटे जीवन को पीड़ित किए रहते हैं। अशान्ति के कांटे, चिन्ता के कांटे, अज्ञान और अंधकार के कांटे गड़ते हैं और कोई उपाय समझ में नहीं आता कि इनसे कैसे बचा जाए। और सभी लोग बुद्धिमानों की, तथाकथित बुद्धिमानों की सलाह मानकर सारी पृथ्वी को ढंकने की आयोजना में लग जाते हैं—अपने को छोड़कर, अपने को भूलकर! अपने पैर को ढंकने की सीधी सी युक्ति किसी की भी समझ में नहीं आती!

इतनी सीधी युक्ति है, लेकिन इस जमीन पर दस-पांच ही ऐसे लोग हुए हैं, जिन्होंने अपने पैर ढंके हों। अधिक लोग पृथ्वी को ही बदलने की कोशिश करते रहे हैं। और ये अधिक लोग, जितनी इन्होंने कोशिश की है, जमीन को ढंक देने की, धूल, कांटों से अलग कर देने की, उतनी ही जमीन मुश्किल में पड़ती चली गई। इन सभी सुधारकों के कारण ही मनुष्य जाति इतनी पीड़ाओं में उलझ गई है कि आज कोई छुटकारा भी दिखाई नहीं पड़ता है।

लेकिन एक सीधी सी बात थी कि हर आदमी अपने पैर ढंक ले और कांटों से मुक्त हो जाय। लेकिन यह सीधी सी बात—आश्चर्य ही है कि मुश्किल से ही कभी किसी को दिखाई पड़ती है। इस सीधी सी बात को ही इन तीन दिनों में समझाने की आपको कोशिश करूंगा। नाराज आप जरूर होंगे मन में क्योंकि सीधी बात किसी को भी समझाई जाये तो नाराजगी होती है। इतनी सीधी बात को भी समझाने की कोशिश करने से गुस्सा आता है। ऐसे लगता है कि क्या आप हमें इतना नासमझ समझते हैं कि सीधी सी बात को हमें समझाएं।

लेकिन क्षमा मैं बाद में मांग लूंगा, बात तो यही मुझे समझानी है। क्योंकि यही एकमात्र कष्ट है मनुष्य के सामने। कांटे उसे चुभते हैं, लेकिन पैर को जूते से ढंकने का ख्याल नहीं आता है। सब तरफ दृष्टि जाती है, हजारों उपाय सूझते हैं जीवन को शांत कर लेने के—एक उपाय भर नहीं सूझता है, अपने को बदलने का, अपने को ढक लेने का! और सब योजना चलती है—सुख की और आनन्द की। खोज की सब दिशाएं खोज ली जाती हैं, सिर्फ एक दिशा में अनछुई रह जाती है—वह है स्वयं की दिशा! जैसे स्वयं को हम देखते ही नहीं और सबको देखते रहते हैं!

तो यहां इन तीन दिनों में इस सीधीसी बात पर थोड़ा सा हम विचार करेंगे कि क्या स्वयं को भी देखा जा सकता है? क्या सम्भव नहीं है कि हम अपने को बदल लें? क्या यह सम्भव नहीं है कि हमारी दृष्टि स्वयं के परिवर्तन और स्वयं की चिकित्सा पर चली जाय? क्या यह नहीं हो सकता है कि हम अपने पैरों को ढंक लें और दुखों और पीड़ाओं से मुक्त हो जाएं। क्या उस राजा को समझदार लोगों ने जो सलाह दी थीं, वे ही हम भी मानते रहेंगे? क्या उस बूढ़े और सीधे आदमी की बात हमारे ख्याल भी नहीं आएगी?

इसी सम्बन्ध में थोड़ी सी बातें इन तीन दिनों की चर्चाएं शुरू हों, कुछ और थोड़ी सी प्राथमिक बातें आज ही मुझे कह देनी हैं।

क्योंकि आज रात से जो तीन दिन का जीवन शुरू होगा उसे मैं चाहूंगा—आपका मन भी चाहता होगा, इसलिए आप आए हैं—कि वे तीन दिन उपलब्धि के दिन हो जाएं। इन तीन दिनों में कोई झलक, कोई किरण जीवन के अंधेरे को आलोकित कर दे। इन तीन दिनों में कोई मार्ग सूझ जाय। उलझाव के बाहर निकलने की कोई दिशा ख्याल में आ जाय। वह ख्याल में लेकिन अकेली मेरी कोशिश से नहीं आ सकता है। मेरी अकेली कोशिश हो और आपका सहयोग न हो, तो फिर मैं आपके सामने नहीं, दीवालों के सामने बोल रहा हूं। आपके सहयोग से ही आप दीवाल नहीं रह जाते, सचेतन व्यक्ति बन जाते हैं।

एक फकीर हिन्दुस्तान से चीन गया था, कोई चौदह सौ वर्ष पहले बड़ा प्यारा आदमी रहा होगा। अगर वहां मेरी जगह होता, तो आपकी तरफ मुंह करके न बोलता, वह आपकी तरफ पीठ करके बोलता। वह जब भी किसी से बोलता, तो पीठ उसकी तरफ करता था और मुंह दीवाल की तरफ। लोग हैरान थे। चीन का सम्राट उससे मिलने आया और जब उसने पीठ उसकी ओर की और दीवाल की तरफ मुंह करके बात करने लगा, तो उसने कहा, यह क्या पागलपन है! आप मुझसे बात करते हैं, और दीवाल की तरफ मुंह किए हैं। उस फकीर ने कहा अब तक मुझे ऐसा आदमी नहीं मिला, जो दीवाल न हो। कोई सहयोग ही नहीं करता, तो उससे बोलने का प्रयोजन भी क्या है! सिर्फ भ्रम होता है कि हम बोल रहे हैं। सुनने वाला मौजूद ही नहीं होता है।

तो तीन दिनों में आप किस भांति सहयोग कर सकेंगे, उस सम्बन्ध में कुछ तीन सूत्र आज मुझे आपसे कह देने हैं। उन तीन सूत्रों के आधार पर ही आपका सहयोग, आपका को-आपरेशन मिल सकता है, और जो मैं कहना चाहता हूं—मैं तो उसे कहूंगा ही, लेकिन आपका सहयोग होगा, तो आप भी उसे सुन सकेंगे। अन्यथा मेरा कहना तो पूरा हो जाएगा, आपके सुनने की भी शुरुआत नहीं होगी।

इतने से ही काफी मत समझ लेना की मैंने बोला, तो आपने सुन लिया। यह बात इतनी आसान नहीं है। आपको सुनने के लिए भी कुछ करना होगा, जैसा कि बोलने के लिए मुझे कुछ करना पड़ता है। आप यहां निष्क्रिय होकर, आप यहां पैसिव होकर तीन दिन बैठे रहें, जैसे आप सिनेमा देखते हैं—वैसे, तो फिर मेरी बात आपको सुनाई नहीं पड़ेगी।

जिन सत्यों की हमें यहां चर्चा करनी है, उन सत्यों को सुनने के लिए आपको एक्टिव पर्टिसिपेन्ट, आपको सक्रिय-सहयोगी होना पड़ेगा, अन्यथा वे बातें आप तक नहीं पहुंचेंगी। तो आप कैसे अपना सहयोग दे सकेंगे? मैं तो बोलूंगा, लेकिन आप कैसे सुन सकेंगे? और आप नहीं सुन सके, तो कोई अर्थ मेरे श्रम का नहीं होता है। और आप नहीं सुन सके, तो शायद आप कहेंगे मैं गया, लेकिन कुछ भी नहीं हो पाया। बहुत कुछ हो सकता है। लेकिन उसमें मुझसे ज्यादा महत्वपूर्ण आप हैं। मैं बहुत महत्वपूर्ण नहीं हूं। आप ही ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। और वे तीन छोटे से सूत्र हैं, जिनके अनुकूल इन तीन दिनों अगर आपने थोड़ी तैयारी की, तो जिस बात की आप कामना लेकर आए हैं, वह हो सकता है।

उनमें पहला सूत्र है—इन तीन दिनों में इस भांति जिएं, जैसे कि पीछे कुछ भी नहीं है और आगे भी कुछ नहीं है।

हम तो इस भांति जीते हैं, जैसे इस समय कुछ भी नहीं है—जो कुछ है, पीछे था और जो कुछ है, आगे है। वर्तमान का, प्रजेन्ट का—जो मौजूद है, हमारी दृष्टि में कोई आकलन ही नहीं होता है। और सच्चाई यह है कि वर्तमान की ही केवल सत्ता है। एक्जिस्टेन्स केवल उसका ही है, जो मौजूद है। न तो, जो बीत गया, उसकी कोई सत्ता है और न उसकी, जो आने को है।

लेकिन या तो हम पीछे की तरफ देखते हुए जीते हैं, या आगे की तरफ। या तो अतीत की चिंता हमारे मन में होती है, या भविष्य की कल्पना। लेकिन वर्तमान का कोई बोध नहीं होता है।

और वर्तमान का बोध न हो, तो, न तो आप जी सकते हैं और न सुन सकते हैं, न समझ सकते हैं—और न सत्य को जानने का द्वार खुल सकता है।

हमारा चित्त निरन्तर की आदत के कारण या तो पीछे की स्मृतियों में खोया रहता है, जिनकी अब कोई जगह नहीं रह गई जमीन पर, पृथ्वी पर। सत्ता में जिनके कोई चिन्ह नहीं रह गए, सिवाय हमारी मेमोरी, हमारी स्मृति को छोड़कर। और या फिर हम भविष्य की ऊहापोह में, कल्पना में आने वाले कल के इरादे और विचारों में खोए रहते हैं। ये दोनों ही तरह के लोग कभी भी सत्य को नहीं जान सकते हैं। क्योंकि सत्य है वर्तमान में—इस क्षण में, अभी और यहां। और हम अभी और यहां—कभी भी नहीं होते हैं। हम कहीं पीछे या कहीं आगे होते हैं।

बुद्ध बारह वर्षों के बाद अपने गांव वापस लौटे थे। उनके पिता बुद्ध का स्वागत करने गांव के बाहर गए। लेकिन मन में उनके बहुत क्रोध था। बारह वर्ष पहले यह लड़का घर छोड़कर भाग गया था, उसकी पीड़ा थी, दुख था। जाकर उन्होंने बुद्ध से कहा, तू अभी भी वापस लौट आ, मेरे द्वार खुले हैं। बहुत चोट, बहुत दुख तूने मुझे पहुंचाया है, लेकिन आखिर मैं पिता हूं, पिता का प्रेम, मैं अपने दरवाजे बंद नहीं कर सकता, तुझे क्षमा कर दूंगा, तू वापस आ जा।

बुद्ध ने क्या कहा, पता है?

बुद्ध ने कहा—मैं निवेदन करूंगा, कृपा करके आप एक बार मुझे देखें, जो मैं हूं। जो बारह साल पहले आपके घर से गया था, वह अब कहीं भी नहीं है। मैं दूसरा ही होकर लौटा हूं। मैं बिल्कुल नया हूं। और आप मुझे देख ही नहीं रहे हैं, क्योंकि आपकी आंखों में बारह वर्ष पहले का चित्र ही मौजूद है। आप उसी से बातें कर रहे हैं, जो बारह साल पहले था। गंगा में बहुत पानी बह गया बारह वर्षों में, मुझमें भी बहुत पानी बह गया बारह वर्षों में, मैं अब बिल्कुल दूसरा आदमी होकर लौटा हूं।

लेकिन बुद्ध के पिता की आंखें तो क्रोध से भरी थीं। वे कहने लगे, मैं और तुझे नहीं जानूंगा, मैंने तुझे जिसने पैदा किया और जन्म दिया; मुझे तू शिक्षा देगा, मुझे तू समझाएगा? बुद्ध ने कहा, परमात्मा करे किसी दिन आपके ख्याल में आए कि जिसको आपने पैदा किया था, वह अब कहां है। मैं निवेदन करता हूं, एक बार मुझे देखें, जो मैं हूं।

पता नहीं बुद्ध के पिता देख पाए या नहीं। हम भी नहीं देख पाते हैं। हम भी पीछे-पीछे अटके रह जाते हैं। और जिन्दगी रोज बदल जाती है। जिन्दगी रोज बदल जाती है, प्रतिपल सब कुछ बदल जाता है, और हम पीछे ही उलझे रह जाते हैं। इसलिए जीवन से हमारा संस्पर्श नहीं हो पाता। और या फिर हम आगे के ऊहापोह में और कल्पना में खो जाते हैं।

मैंने सुना है एक आदमी एक ट्रेन में न्यूयार्क की तरफ सफर कर रहा था। एक बीच के स्टेशन पर एक युवक भी सवार हुआ। उस युवक के हाथ के बस्ते को देख कर लगता था वह किसी इन्श्योरेन्स कम्पनी का एजेन्ट होगा। उस बूढ़े आदमी के पास वह बैठा। फिर थोड़ी देर बाद उसने पूछा कि क्या महाशय आप बता सकेंगे आपकी घड़ी में कितना बजा हुआ है? वह बूढ़ा थोड़ी देर चुप रहा और उसने कहा क्षमा करें, मैं न बता सकूंगा। उस युवक ने कहा, क्या आपके पास घड़ी नहीं है। उस बूढ़े ने कहा, घड़ी तो जरूर है, लेकिन मैं थोड़ा आगे का भी विचार कर लेता हूं, तभी कुछ करता हूं। अभी तुम पूछोगे कितना बजा है और मैं घड़ी में देखकर बताऊंगा कितना बजा है। हम दोनों के बीच बातचीत शुरू हो जाएगी। फिर तुम पूछोगे, आप कहां जा रहे हैं। मैं कहूंगा न्यूयार्क जा रहा हूं। तुम कहोगे मैं भी जा रहा हूं। आप किस मोहल्ले में रहते हैं। तो मैं अपना मोहल्ला बताऊंगा। संकोचवश मुझे कहना पड़ेगा, अगर कभी वहां आएं, तो मेरे घर भी आना। मेरी जवान लड़की है, तुम

घर आओगे, निश्चित ही उसके प्रति आकर्षित हो जाओगे। तुम उससे कहोगे कि चित्र देखने चलती हो। वह जरूर राजी हो जाएगी। और यह मामला यहां तक बढ़ेगा कि एक दिन मुझे विचार करना पड़ेगा कि बीमा एजेन्ट से अपनी लड़की की शादी करनी है या नहीं करनी है। और मुझे बीमा एजेन्ट बिलकुल भी पसन्द नहीं आते। इसलिए कृपा करो, मुझसे तुम घड़ी का समय मत पूछो।

इस आदमी पर जरूर हमें हंसी आ सकती है। लेकिन हम सब इसी तरह के आदमी हैं। हमारा चित्त प्रतिपल वर्तमान से छिटक जाता है और भविष्य में उतर जाता है। और भविष्य के सम्बन्ध में आप कुछ भी सोचें, सब ऐसा ही फिजूल और व्यर्थ है। क्योंकि भविष्य है नहीं। जो भी आप सोचेंगे, वह इसी तरह का झूठा और व्यर्थ है। जैसे इस आदमी का, इस छोटी सी बात से कि घड़ी में कितना बजा है, इतनी लम्बी यात्रा पर कूद जाना है। इसका चित्त हम सबका चित्त है।

हम सब प्रतिपल खड़े होते नहीं वर्तमान में और भविष्य में कूद जाते हैं, या अतीत में कूद जाते हैं। लेकिन जो क्षण मौजूद होता है, उसमें हम मौजूद नहीं हो पाते। और उसकी ही सत्ता है, वही वास्तविक है। अतीत और भविष्य इन दोनों के बन्धनों में मनुष्य चेतना वर्तमान से अपरिचित रह जाती है। अतीत और भविष्य दोनों मनुष्य की ईजादें हैं। जगत् की सत्ता में उनका कोई भी स्थान नहीं। न कोई तीर्थंकर है, न कोई अवतार है।

बिल्ली से कौन सीखने जाएगा?

लेकिन कभी बिल्ली को देखें—चूहे को पकड़ने के लिए कितनी तत्परता से बैठी है, कितनी सचेत। एक पत्ता हिल जाएगा, तो बिल्ली अपने पूरे प्राणपण से कूदने को मौजूद है। एक चूहे की जरा सी खड़खड़ाहट होगी, किसी चूहे के बिल में थोड़ी सी आवाज होगी, किसी को पता नहीं चलेगा। लेकिन बिल्ली—बिल्ली सचेत है और जागी हुई है।

बिल्ली की भांति सचेत होने को जो आदमी...अपने चित्त की जो तैयारी कर लेता है, उस आदमी से सत्य बचकर नहीं निकल सकता। बिल्ली से चूहा बचकर निकल भी जाय, लेकिन सचेत मनुष्य से सत्य बचकर नहीं निकल सकता। इतनी सचेतना चाहिए।

लेकिन हम तो सोए-सोए जीते हैं। रास्ते पर निकल जाते हैं—न तो हमें वृक्ष दिखाई पड़ते हैं, न उन पर बैठे हुए पक्षी हमें सुनाई पड़ते हैं, न आकाश में ऊगा हुआ चांद हमें दिखाई पड़ता है। हमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। हम तो जैसे सोये हुए चले जा रहे हैं। कई बार अनुभव हुआ होगा—किसी किताब का एक पन्ना पढ़ते हैं, बाद में पता चलता है कि मुझे तो जैसे, मैंने कुछ भी नहीं पढ़ा, कुछ ख्याल नहीं आता। उनका कोई भी अस्तित्व नहीं।

भविष्य और अतीत, पास्ट और फ्यूचर—कल्पित समय है, स्यूडो टाइम हैं, वास्तविक समय नहीं। वास्तविक समय, रियल टाइम तो केवल वर्तमान का क्षण है। वर्तमान के इस क्षण में जो जीता है, वह सत्य तक पहुंच सकता है, क्योंकि वर्तमान का क्षण ही द्वार है। लेकिन जो अतीत और भविष्य में भटकता हैं, वह सपने देख सकता है, स्मृतियों में खो सकता है। लेकिन सत्य, सत्य से उसका साक्षात कभी भी सम्भव नहीं है।

इन तीन दिनों में ऐसे जिएं कि जो क्षण आपके पास है, बस वही हो। दूसरा क्षण मनुष्य के हाथ में होता भी नहीं। एक ही क्षण होता है—दो क्षण भी नहीं होते। और उस एक क्षण को हम गंवा दें—बीते हुए क्षणों के लिए या आने वाले क्षणों के लिए, तो बड़ी भूल हो जाती है। एक छोटा सा क्षण मिलता है मनुष्य को, उससे ज्यादा नहीं। उस छोटे से क्षण को जीने की कला ही धर्म में प्रवेश की कला है—वह है आर्ट।

आज रात से ऐसे जिएं कि जो क्षण है, वही है। जो काम आप कर रहे हैं, वही कर रहे हैं। यहां सुन रहे हैं, तो सिर्फ सुन रहे हैं। इस सुनने में फिर और कुछ भी नहीं।

मैं बोल रहा हूं—उस वक्त अगर आप सोचने लगें, यही गीता में भी लिखा है, तो आप पीछे चले गए। कभी आपने पढ़ा होगा, उससे आप मेलजोल बिठालने लगे तो मैं जो कहता था, उसका आपसे सम्बन्ध टूट गया। अगर मैं कुछ कह रहा हूं—और आप सोचने लगे कि अगर मैं ऐसा करूं या सोचूं, तो कहीं ऐसा तो न हो कि मुझे घर-द्वार छोड़ देना पड़े—आप भविष्य में चले गए। आप समय बताने की जगह लड़की का चिन्तन करने लगे। क्या होगा—पुरानी बातों से मेल करने लगे, तो पीछे चले गए। और वंचित हो गए उस बात को सुनने से, जो मैं आपसे कहता था।

जो मैं आपसे कह रहा हूं—अगर उसे ही सुनना है, तो उस सुनने के क्षण में फिर और कहीं आप नहीं होना चाहिए। लेकिन यह केवल सुनने में ही नहीं हो सकता। यह तो तभी हो सकता है, जब हम चौबीस घंटे ऐसे जिएं—जब आप पानी पी रहे हों तो सिर्फ पानी पिएं, और भोजन करते हों तो सिर्फ भोजन, और रास्ते पर चलते हों तो सिर्फ रास्ते पर चलें। और उस क्षण को ही समझ लें—कि इसके आगे कुछ नहीं और पीछे कुछ नहीं—यही है और इसी में मुझे पूरी तरह मौजूद होना है।

यह तो पहला ध्यान रखने का है, इन तीन दिनों में। कठिन नहीं है, ख्याल में आ जाएगा तो बहुत सरल है। कठिन तो वह है, जो आप कर रहे हैं। जो मैं कह रहा हूं, वह तो बहुत सरल है। लेकिन अपने पैर पर जूता चढ़ाने जैसी सरल बात भी मुश्किल से ख्याल में आती है। कठिन वह है, जो आप कर रहे हैं। जिस ढंग से आप जी रहे हैं, वह जीना एकदम कठिन है। आश्चर्य है कि हम जिए चले जा रहे हैं। जो मैं कह रहा हूं, वह बहुत सरल है।

यहां से लौटते वक्त इसका प्रयोग करके लौटें। और कम से कम तीन दिन तो कोशिश करें। हो सकता है, तीन दिन में उसकी सच्चाई दिखाई पड़ जाय। और फिर जिसकी सच्चाई हमें दिखाई पड़

जाती है, उससे इस जीवन में अलग होना कठिन है। तीन दिन के लिए हिम्मत करें—पीछे को छोड़ दें।

छूट गया है अतीत आपसे—आप व्यर्थ ही उसे पकड़े हैं। कहां है वह? कल का दिन अब कहां है? बीता क्षण अब कहां है? जो गया, वह जा चुका। जो अभी नहीं आया, वह नहीं आया। जो है, बस वही है।

तीन दिन देखें। एक-एक पल जीकर देखें। आगे-पीछे नहीं—मौजूद में, प्रजेन्ट में, वर्तमान में। सुबह उठें—तो ऐसे ही कि बस यही है—दोपहर यही है, सांझ यही है। जो क्षण सामने आए, उसको इस तरह लें, जैसे इसके आगे-पीछे और कुछ भी नहीं है। बहुत हैरान हो जाएंगे। इस ख्याल से जीने की गति और ही हो जाती है। एक बहुत अद्भुत शान्ति, क्षण में जीने से शुरू होती है।

आदमी कभी शान्त नहीं है।

सुनते हैं, एक बार सिर्फ सारी मनुष्य जाति शांत हो गई थी, एक क्षण को। कोई बहुत होशियार आदमी ने तरकीब निकाली थी, तब कहीं यह हो पाया था। लेकिन यह बहुत पुरानी घटना है, आपमें से किसी को भी याद नहीं होगी। किसी किताब में नहीं लिखी गई, क्योंकि किताबें बहुत बाद में लिखी गईं। यह इसके पहले की घटना है। और शायद आपने सुनी भी न होगी, क्योंकि बहुत ही मुश्किल से किसी को यह पता है।

एक बार एक समझदार आदमी ने, एक तरकीब निकाली थी, कि सारी मनुष्य जाति को शांत रहने का अनुभव करा दें। उसने यह अफवाह उड़ाई, सारी दुनिया में कि चांद पर भी लोग रहते हैं। अगर हम सारे लोग बहुत ताकत से चिल्लाएं तो शायद वे सुन लें। तो सारी पृथ्वी पर एक खास, नियत दिन, खास समय पर सारे लोग जोर से 'हो' की आवाज करके चिल्लाएंगे। यह अफवाह उड़ा दी।

सारी दुनिया में बड़ी उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा की गई। वह क्षण आ गया, वह घड़ी आ गई, वह पल करीब आने लगा। सारी

दुनिया के लोग, बच्चों से बूढ़ों तक तैयार थे, क्योंकि सारे लोग चिल्लाएंगे, तो ही शायद चांद तक रहने वालों तक आवाज पहुंच सके। और उनसे सम्बन्ध पैदा करना था।

ठीक क्षण भी आ गया, लेकिन कोई भी नहीं चिल्लाया। क्योंकि हर एक सोचता था कि मैं चुप रह जाऊं तो इतनी बड़ी आवाज सुनने का मौका फिर दोबारा आने वाला नहीं है। सब चिल्लाएंगे—कितनी अद्भुत आवाज होगी मैं सुन लूं। और एक के न चिल्लाने से क्या फर्क पड़ेगा। दुनिया में कोई भी नहीं चिल्लाया। और वह एक क्षण टोटल साइलेन्स का क्षण था, क्योंकि सभी प्रतीक्षा कर रहे थे। कोई भी पीछे के ख्याल में नहीं था। इसी वक्त एक घटना घट रही थी कि सारी दुनिया में सारे लोग चिल्लाएंगे "हो"—और इस आवाज को हम सुन लें।

उस क्षण—उस अद्भुत होशियार आदमी ने बड़ी तरकीब का काम किया था। फिर बहुत समय से ऐसा कोई काम नहीं हुआ। और आदमी की जिन्दगी में कोई शान्ति का क्षण नहीं आया। उस वक्त सारे लोग हैरान रह गए थे। उस पल के बीत जाने पर लोगों को पता चला था, कितनी गहरी शान्ति सम्भव है। क्योंकि उस क्षण कोई पास्ट नहीं था, कोई फ्यूचर नहीं था। एक उसी पल घटना घटने वाली थी, जरा चूक गए तो चूक गए। तो सारे लोग सचेत थे और प्रत्येक आदमी ने सोचा था—मैं सुन लूं। सुना सबने—आवाज नहीं सुनी, शान्ति सुनी। आवाज तो हुई ही नहीं। लेकिन साइलेंस सुनी।

देखें कल से, एक-एक पल में थोड़ा खड़े होकर। हो सकता है, वह शान्ति आप भी सुन सकें। और वह सुन लें तो आपकी जिन्दगी दूसरी हो जाएगी।

अगर आप नहीं मानेंगे इस तरह, तो हो सकता है, मैं भी किसी दिन अफवाह उड़ाऊं और फिर इस तरह की कोशिश करूं। लेकिन बड़ा कठिन है, आजकल आदमी बहुत समझदार हो गया है। पुराने दिन

की बात है, लोग राजी हो गए होंगे चिल्लाने को। अब तो शायद ही कोई चिल्लाने को राजी भी हो। और राजी भी हो जाय, तो भी शायद शोरगुल सुनने के लिए कोई न रुके, क्योंकि वैसे ही बहुत शोर-गुल हो रहा है। और अब उस शोरगुल से कोई भी फर्क न पड़ेगा।

यह तो पहला सूत्र है : पल-पल, मूमेन्ट टु मूमेन्ट जीने का।

दूसरा सूत्र। हम निरन्तर एक अजीब बीमारी से ग्रसित हैं, और वह बीमारी है अत्याधिक व्यस्त होने की, आक्युपाइड होने की। हर आदमी ऐसा लग रहा है, जैसे बहुत भारी काम में उलझा हुआ है। शायद काम कुछ भी नहीं है, लेकिन आदत अत्याधिक काम में उलझे होने की हमने खड़ी कर ली है। हर आदमी भाग रहा है, दौड़ रहा है, और इस भाँति संलग्न है, जैसे सारे जगत का भार उसके ऊपर है। इतना व्यस्त मालूम हो रहा है। और यह व्यस्तता, यह जो आक्युपाइड माइन्ड है—यह दिन-रात व्यस्त होना इसके कारण चित्त निरन्तर क्षीण होता चला जाता है। विश्राम का कोई भी क्षण न होने से चित्त दुर्बल हो जाता है। और दुर्बल चित्त सत्य को नहीं जान सकता है। सत्य को जानने के लिए शक्ति से परिपूर्ण बहता हुआ, भरा हुआ चित्त चाहिए। और ऐसा चित्त तभी हो सकता है, जब आप अव्यस्त होने की थोड़ी सामर्थ्य पैदा कर लें।

कभी आपने देखा आकाश में सांझ को, चीलें आकाश से उतरती हैं? तब उनको देखा—वे परों को फैलाकर अत्यन्त विश्राम में हवा पर डोलती हुई धीरे-धीरे उतरती आती हैं। कभी ख्याल किया? कभी चीलों के पर देखे तुले हुए—न तो पंखे हिल रहे हैं, न वे हवाओं में तैरने की कोशिश कर रही हैं, उन्होंने सिर्फ पंख छोड़ दिए हैं और हवाओं पर सवार हो गई हैं, हवाएं उन्हें धीरे-धीरे नीचे उतारती ला रही हैं।

सारी प्रकृति इसी भांति विश्राम में जी रही है, सिर्फ मनुष्य को छोड़कर मनुष्य अति तनाव में है। और उसे ख्याल भी नहीं है

कि इतना तना हुआ होना, इतना व्यस्त, इतना उलझा हुआ होना ही उसे वंचित कर रहा है किसी सत्य को, किसी आनन्द को जानने से।

तो इन तीन दिनों में अत्यन्त शांत और अव्यस्त—जैसे आप कोई काम नहीं कर रहे हैं, विश्राम कर रहे हैं। इन तीन दिनों को सब भांति आध्यात्मिक छुट्टी के दिन बना लें, स्प्रीचुअल हाली-डे समझ लें। साधारणतः छुट्टी हम मनाते हैं। वह भी शरीर की छुट्टी होती है, मन की छुट्टी नहीं होती। इन तीन दिनों में मन को भी छुट्टी दे दें। इस भांति जिएं, जैसे कोई भी काम नहीं है। और यहां क्या काम है? आप बिल्कुल बिना काम हैं यहां। और इन दिनों को बिल्कुल ही ऐसे गुजार देना है, जैसे कोई सोकर, विश्राम करके गुजार देता है।

तो इन दिनों में आप पाएंगे आपका मन एक नई ताजगी, ऊर्जा और शक्ति से भर गया। और यह शक्ति बहुत जरूरी है। इस शक्ति के बिना कोई रास्ता नहीं है कि आप तय कर सकें। लेकिन अव्यस्त होना जरूरी है। कोई आक्युपाइड चित्त की दशा न हो।

लेकिन हम तो एक आदमी को मैं देखता था रोज सांझ वे घूमने जाते थे। लेकिन घूमने भी वे ऐसे जाते थे, इतनी तेजी से कि जैसे किसी युद्ध पर जा रहे हों। तो मैंने उन्हें रोका और मैंने कहा कि आप किसी लड़ाई पर जाते हैं रोज? उन्होंने कहा, लड़ाई पर! मैं तो घूमने जाता हूं। तो मैंने कहा, जाते आप ऐसे हैं, इतने तने हुए, इतने खिचे हुए, इतने परेशान, इतने भागे हुए, जैसे कहीं पहुंचना हो। कहां पहुंचने के लिए जाते हैं? उन्होंने कहा, पहुंचने नहीं, सिर्फ घूमने जाता हूं। लेकिन मैंने कहा, आपका मन घूमने की दशा में नहीं होता। घूमने जाने का मतलब है, ऐसे जाना, जैसे कहीं पहुंचना नहीं है। कोई हम यात्रा थोड़ी कर रहे हैं। यात्रा जब कोई करता है, तो तना हुआ, खिचा हुआ होता है—उसे कहीं पहुंचना है।

आपको कहीं पहुंचना नहीं है। और अगर आप समवेअर, कहीं पहुंचने की कोशिश करेंगे, तो एक बात तय समझ लेना, वहां नहीं पहुंच

सकेंगे, जहां आप हैं। और जिस दिन आप इस तरह जिएंगे, नो-वेयर, कहीं भी नहीं पहुंचना है, उस दिन आप वहां पहुंच जाएंगे, जहां आप हैं। जहां मैं बैठा हूं, वहां पहुंचने के लिए मुझे सब पहुंचने की जो दौड़ है, चित्त में, वह छोड़ देनी होगी।

तो इन दिनों में ऐसी कोशिश न करें—कि आप ध्यान सीख रहे हैं। आप ऐसी कोशिश न करें—कि सत्य को खोज रहे हैं। ऐसी खोज न करें—कि परमात्मा के दर्शन करने हैं। अगर यह कोशिश आपके भीतर रही, तो आप शान्त ही नहीं हो सकेंगे, दर्शन तो बहुत दूर है। आप शांत ही नहीं हो सकेंगे, सत्य तो बहुत दूर है। आप शान्त ही नहीं हो सकेंगे। परमात्मा की यात्रा फिर नहीं हो सकती। परमात्मा की यात्रा बड़ी अजीब है। परमात्मा की यात्रा वही करता है—वही कर सकता है, जो सब यात्रा छोड़ देता है। इतना शान्त हो जाता है कि उसे कहीं भी नहीं पहुंचना है।

एक फकीर था। एक पहाड़ी के किनारे बैठा रहता, सोया रहता। एक युवक सत्य की, ईश्वर की खोज में पहाड़ पर गया था। उसने उस फकीर से पूछा कि आप चुपचाप यहां क्यों बैठे हैं? ईश्वर को नहीं खोजना? उस फकीर ने कहा, जब तक खोजता था, तब तक नहीं मिला। फिर मैं ऊब गया और मैंने वह खोज छोड़ दी और जिस दिन मैंने सब खोज छोड़ दी, मैं हैरान रह गया। मैं तो उसमें मौजूद ही था। खोज रहा था, इसलिए दिखाई नहीं पड़ रहा था। कई बार खोजने का तनाव ही खोजने में बाधा बन जाता है। कई बार हम जिस चीज को खोजते हैं, खोजने के कारण ही उसको नहीं उपलब्ध हो पाते हैं।

कभी ख्याल किया आपने—किसी आदमी का नाम खो गया है आपके मन में और आप खोजने में लगे हुए हैं। खोजते हैं और परेशान हो जाते हैं, सिर ठोक लेते हैं कि बिल्कुल जबान तक आता है, लेकिन आता नहीं। पता नहीं चलता, कहां गया, कैसे खो गया! मालूम है मुझे! यह भी मालूम है कि मुझे मालूम है। भीतर आता है, पर न

मालूम कहां अटक जाता है। फिर आप खोज छोड़ देते हैं। फिर आप अपनी बगिया में गड्ढा खोद रहे हैं, या अपने कुत्ते के साथ खेल रहे हैं, या अपने बच्चे से गप-शप कर रहे हैं और एकदम आप हैरान हो जाते हैं, वह नाम मौजूद हो गया।

आप खोजते थे—खोजने के तनाव की वजह से मन अशान्त हो गया। अशान्त होने की वजह से उसे रास्ता नहीं मिलता था आने का। वह अटका रह गया पीछे। आप शान्त हो जाओ तो वह आ जाय। आप अशान्त हो-तो वह आए कहां से, द्वार कहां मिले, रास्ता कहां मिले?

भीतर परमात्मा निरन्तर आप तक आने की कोशिश कर रहा है। लेकिन आप? आप इतने व्यस्त हैं कि आपकी इस व्यस्तता में बाधा देने जैसी अशिष्टता परमात्मा न करेगा। वह आपको परेशान नहीं करेगा। जब आप शान्त हो जाएं, तो वह आ जाएगा। वह उन मेहमानों में से नहीं है कि आप कुछ भी कर रहे हों और वह आ जाए। जब देखेगा कि आप तैयार हैं, तो वह तो हमेशा मौजूद है। भीतर कोई हमारे रास्ता खोज रहा है। लेकिन हम इतने, सतह पर इतने व्यस्त हैं, इतनी लहरों से भरे हैं कि उसे रास्ता नहीं मिलता है। कृपा करें रास्ता दें।

आपको परमात्मा को नहीं खोजना है—परमात्मा आपको ही खोज रहा है।

आप इतनी ही कृपा करें कि रास्ता दे दें। आप बीच में न खड़े हों अपने और परमात्मा के, तो सारी बात हल हो जाती है।

लेकिन शायद हमें इसका ख्याल नहीं है। इन तीन दिनों में इस ख्याल पर थोड़ा सा ध्यान ले जाएं। तीन दिन इस तरह जिएं कि आपको कोई भी काम नहीं है। और आश्रमों में, और संतों, साधुओं और महात्माओं के पास आप जाते होंगे, उस भांति मेरे पास न आएं। वे आपको काम सिखाते हैं। वे सिखाते हैं—प्रार्थना करो,

पूजा करो, नाम जपो, गीता पढ़ो, यह करो, वह करो। बहुत जोर से करो। जितना ज्यादा करोगे—एक हजार दफे नाम जपोगे तो, एक लाख दफे जपोगे तो, और फायदा है; एक करोड़ दफे जपोगे तो और फायदा है। एक दफा गीता पढ़ोगे तो कम, हजार दफे पढ़ोगे तो बहुत ज्यादा। एक उपवास करोगे तो कम, हजार कर लोगे तो बहुत ज्यादा ! वे आपको कोई काम सिखाते हैं। वे आपको किसी काम में लगाते हैं।

मैं आपको कोई काम सिखाने को यहां नहीं हूं। मैं तो चाहता हूं कि आप थोड़ी देर को बेकाम हो जाएं। आपके मन में कोई काम न रह जाय, तो शायद उस काम से रहित चित्त की अन-आक्युपाइड स्थिति में, अव्यस्त स्थिति में कुछ फलित हो जाय, कुछ घटित हो जाय।

तो दूसरा सूत्र इन तीन दिनों के लिए—व्यस्तता न दिखाएं यहां। कोई फिक्र नहीं अगर मेरी एक चर्चा में न आ पाएं, तो कोई हर्जा नहीं हुआ जाने वाला। कोई फिक्र नहीं, अगर ध्यान को वक्त पर न पहुंच पाएं, कोई हर्जा नहीं हुआ जाने वाला। लेकिन इतनी शान्ति से जिएं इन तीन दिनों में कि आप कोई काम में नहीं लगे हैं—मौज में, एक आनन्द में यहां हैं। यहां कोई साधना करने आए हैं—तो साधना की हमारी धारणा ही कुछ अजीब है। उसमें तो जो जितना बड़ा साधक है, उतना ही तनकर और चुस्त बैठा रहता है। उतना ही तनाव से भरा रहता है। ऐसी साधना यहां नहीं है। मैं तो साधना ही उसको कहता हूं कि आप सब तरह से आराम को, विश्रान्ति को—एकदम चित्त के तल पर सब तरह के काम से छुटकारा पा जाएं।

तीन दिन इस तरह का, इस तरफ ध्यान देने का आपसे निवेदन है। और जैसे ही आप थोड़े से विश्राम में रहना जान पाएंगे, आप हैरान हो जाएंगे। यहां इतने दरख्त हैं, इतने पक्षी बोलते हैं, चुपचाप उनके पास दरख्तों के पास जाकर बैठ जाएं—कुछ न करें।

तीन दिनों में ज्यादा समय कुछ न करें। और देखें कि उस न—करने से कुछ हो सकता है क्या ? अब तक जिन्होंने भी जीवन की गहराईयां जानी हैं, वे, वे ही लोग हैं, जिन्होंने किन्हीं न—करने के क्षणों में परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ लिया है।

लाओत्से कहा करता था, कुछ करना हो तो संसार की तरफ जाओ; कुछ न करना हो तो परमात्मा की तरफ। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप अपनी दूकानें बन्द कर दें, नौकरियां छोड़ दें, अपने काम-धन्धे बन्द कर दें। वह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं तो सिर्फ इतना निवेदन कर रहा हूं कि तीन दिनों में आप इस एटीट्यूड में, इस दृष्टि में जीने का थोड़ा प्रयोग करें। फिर आप पाएंगे बिलकुल चित्त के तल पर बिना काम रहकर भी, बाहर के तल पर काम किया जा सकता है। और तब काम योग बन जाता है। भीतर अकर्म हो, भीतर चित्त पर कोई भी कर्म की भाग-दौड़ न हो, और बाहर जीवन पूरा सक्रिय हो, तो जीवन योग हो जाता है। दूसरा सूत्र यह है।

और तीसरा सूत्र, अन्तिम सूत्र है : सचेत होकर तीन दिन जीने का।

सचेत होकर कभी किसी बिल्ली को चूहा पकड़ते देखा होगा। शायद ख्याल न किया हो क्योंकि अगर हम जीवन के चारों तरफ ख्याल कर लें, तो छोटी-छोटी बातों में जीवन के सारे संदेश मौजूद हैं। लेकिन बिल्ली को कौन गुरु बनाना चाहेगा ? न तो बिल्ली भगवा वस्त्र पहनती है, न टीका लगाती है, न त्याग करती है।

कभी ख्याल आता है, कोई आदमी कोई बात करता है और बात आपसे चूक जाती है—बाद में हमें ख्याल आता है, सुनी तो थी ! लेकिन कुछ ख्याल नहीं पड़ता, सोए-सोए सुनी होगी। केवल चौबीस घन्टे में मुश्किल से कोई क्षण होता होगा, जब हम जाग कर जिन्दगी को थोड़ा-बहुत अनुभव करते हों, अन्यथा हम सोए-सोए चलते हैं।

एक शिक्षक था, युवकों को दरख्तों पर चढ़ना सिखाता था। एक युवक को सिखा रहा था। एक राजकुमार सीखने आया हुआ था।

राजकुमार चढ़ गया था ऊपर की चोटी तक, वृक्ष की ऊपर की शाखाओं तक। फिर उतर रहा था, वह बूढ़ा चुपचाप दरख्त के नीचे बैठा हुआ देख रहा था। कोई दस फीट नीचे रह गया होगा युवक, तब वह बूढ़ा खड़ा हुआ और चिल्लाया, सावधान ! बेटे सावधान होकर उतरना, होश से उतरना !

वह युवक हैरान हुआ। उसने सोचा, यह बूढ़ा पागल है। जब मैं सौ फीट ऊपर था और जहां से गिरता तो जीवन के बचने की सम्भावना न थी—जब मैं बिल्कुल ऊपर की चोटी पर था, तब तो यह कुछ भी नहीं बोला, चुपचाप आंख बन्द किए, वृक्ष के नीचे बैठा रहा! और अब! अब जबकि मैं नीचे ही पहुंच गया हूं, अब कोई खतरा नहीं है, तो पागल चिल्ला रहा है, सावधान ! सावधान !

नीचे उतर कर उसने कहा कि मैं हैरान हूं ! जब मैं ऊपर था, तब तो आपने कुछ भी नहीं कहा—जब डेंजर था, खतरा था ? और जब मैं नीचे आ गया, जहां कोई खतरा न था, तब आपने चिल्लाया सावधान ! सावधान ! उस बूढ़े ने कहा; मेरे जीवन भर का यह अनुभव है कि जहां कोई खतरा नहीं होता, वहीं आदमी सो जाता है। और सोते ही खतरा शुरू हो जाता है। ऊपर कोई खतरा न था—क्योंकि खतरा था और उसकी वजह से तुम जागे हुए थे, सचेत थे, तुम गिर नहीं सकते थे। मैंने आज तक ऊपर की चोटी से किसी को गिरते नहीं देखा—कितने लोगों को मैं सिखा चुका। जब भी कोई गिरता है तो दस-पन्द्रह फीट नीचे उतरने में या चढ़ने में गिरता है। क्योंकि वहां वह निश्चिन्त हो जाता है। निश्चिन्त होते ही सो जाता है। सोते ही खतरा मौजूद हो जाता है। यहां खतरा मौजूद है। वहां खतरा मौजूद नहीं होता, क्योंकि वह सचेत होता है। जहाँ खतरा नहीं है, वहां खतरा मौजूद हो जाता है, क्योंकि वह सो जाता है।

मनुष्य सभी पशु-पक्षियों से ज्यादा सो गया है। क्योंकि जीवन में उसने सभी पक्षियों-पशुओं से ज्यादा सिक्योरिटी, सुविधा जुटा ली

है। कोई पशु-पक्षी इतना सोया हुआ नहीं, जितना आदमी। देखें, किसी कौए को आपके घर के पास। जरा आप आंख भी हिलाएं और कौआ अपने पर फैला देगा। आंख हिलाएं। आप जरा हाथ हिलाएं और कौआ तैयार है, सचेत है। जानवरों को भागते हुए देखें, दौड़ते हुए देखें, उनको खड़े हुए देखें—वे सचेत हैं।

आदमी ने एक तरह की सिक्योरिटी, एक तरह की सुरक्षा अपने चारों तरफ खड़ी कर ली है। और उस सुरक्षा की वजह से वह आराम से सो गया है। और सचाई यह है कि सब सिक्योरिटी झूठी है। क्योंकि मौत इतनी बड़ी असलियत है कि हमारी सब सुरक्षा झूठी ही सिद्ध होती है। कोई सुरक्षा हमारी सच्ची नहीं है। लेकिन एक फाल्स, एक मिथ्या ख्याल हमने पैदा कर लिया कि हम सुरक्षित हैं। सुरक्षित कोई भी मनुष्य नहीं है। जीवन असुरक्षा है, इनसिक्योरिटी है।

कौन सी चीज सुरक्षित है ?

आपकी पत्नी सुरक्षित है—कि आप सोचते हैं, कल भी वह आपको प्रेम देगी ? आपके बच्चे सुरक्षित हैं—कि आप सोचते हैं, वे बड़े होने पर आपको आदर देंगे ? आपके मित्र सुरक्षित हैं—कि वे कल शत्रु नहीं हो जाएंगे ? आप खुद किन अर्थों में सुरक्षित हैं ? आपकी मौत आपकी सब सुरक्षा को दो कौड़ी का सिद्ध कर देने को है।

एक आदमी ने एक महल बनवाया था। उसमें एक ही दरवाजा रखा था कि कोई शत्रु घर के भीतर न घुस सके। दरवाजे पर सख्त पहरा रखा था। फिर पड़ौस का राजा उसके महल को देखने आया। उसने कहा, और सब ठीक है, एकदम अच्छा है, मैं भी ऐसा ही महल बनाना चाहूंगा। लेकिन एक गलती है तुम्हारे महल में। इसमें एक दरवाजा है, यह खतरा है। दरवाजे से मौत भीतर आ सकती है। तुम कृपा करो, यह दरवाजा और बन्द कर लो। फिर तुम पूर्ण सुरक्षित हो जाओगे। फिर न कोई भीतर आ सकता है, न कोई बाहर जा सकता है।

उस राजा ने कहा, ख्याल तो मुझे भी यह आया था, लेकिन अगर यह दरवाजा बन्द कर लूंगा, तो फिर सुरक्षा की जरूरत भी किसे रह जाएगी। मैं तो मर ही जाऊंगा। जी रहा हूं, क्योंकि दरवाजा खुला है। तो उस दूसरे राजा ने कहा, इसका मतलब यह हुआ कि अगर दरवाजा बन्द हो जाए, तो तुम मर जाओगे। एक दरवाजा खुला है, तुम थोड़े जी रहे हो। दो दरवाजे खुलेंगे, तुम थोड़ा और ज्यादा जीओगे। अगर सब दरवाजे खुले रहेंगे, तो तुम पूरी तरह से जीओगे।

लेकिन सब दरवाजे खोलने में हम डरते हैं। और इसलिए जी नहीं पाते। सब दरवाजे बन्द कर लेते हैं जिन्दगी के, फिर भीतर सिक्योरिटी में, सुरक्षा में निश्चिन्त होकर सो जाते हैं। उसी सोने को हम जिन्दगी समझ लेते हैं।

इन तीन दिनों में इस तरह जिएं, जैसे कि जीवन में कोई सुरक्षा नहीं है। हो सकता है आप आए हैं माथेरान, वापस न लौट सकें। कोई जरूरी नहीं है आपका वापस लौट जाना। कौन सा जरुरी है? इस बात को मान लेने का क्या कारण है कि आप चार सौ आए हैं, चार सौ ही वापस लौट जाएंगे। हो सकता है कोई वापस न लौट पाए। एक दिन तो ऐसा होगा ही कि आप कहीं जाएंगे और वहां से वापस न लौट सकेंगे। प्रति घड़ी कोई एक लाख आदमी अपना जीवन खो देते हैं, कहीं न कहीं पृथ्वी पर। आप भी किसी क्षण खो देंगे। वह क्षण यही क्षण हो सकता है, आने वाला क्षण हो सकता है।

सुरक्षा कहीं भी नहीं और सुरक्षा के कारण आप व्यर्थ जो सो रहे हैं, वह सारे जीवन को, जीवन के आनन्द से, उत्फुल्लता से, ज्ञान से वंचित कर रहा है।

तो इन दिनों ऐसे जिएं, जैसे आप जागे हुए हैं प्रतिपल, होश से भरे हुए हैं। एक-एक घटना, एक-एक पत्थर, एक-एक पत्ता, एक-एक पत्ते पर चमकती सूरज की रोशनी, चांद की रोशनी बदलियों पर—सब आपको दिखाई पड़ रहा है, आप जागे हुए हैं। सब चीजों के प्रति

आप सचेत हैं। जीवन एक खतरा है और आप चेतना से भरे हुए हैं। उठते-बैठते सब तरह से जागे हुए हैं।

जागे हुए होने का अर्थ एक छोटी कहानी से समझाऊं, फिर मैं अपनी चर्चा पूरी करूं।

एक बहुत अद्‌भुत आदमी था। वह चोरों का गुरू था। सच तो यह है कि चोरों के अतिरिक्त और किसी का कोई गुरू होता ही नहीं। चोरी सीखने के लिए गुरु की बड़ी जरुरत है। तो जहां-जहां चोरी, वहां-वहां गुरु। जहाँ-जहां गुरु, वहां-वहां चोरी। वह चोरों का गुरु था, मास्टर थीफ था। उस जैसा कुशल कोई चोर नहीं था। कुशलता थी। वह तो एक टेकनिक थी, एक शिल्प था। जब बूढ़ा हो गया, तो उसके लड़के ने कहा कि मुझे भी सिखा दें। उस गुरु ने कहा, यह बड़ी कठिन बात है।

पिता ने चोरी करनी बन्द कर दी थी। उसने कहा यह बहुत कठिन बात है। फिर मैंने चोरी करनी बन्द कर दी, क्योंकि चोरी में कुछ ऐसी घटनाएं घटीं कि जिनके कारण मैं ही बदल गया। उसके लड़के ने कहा, कौन सी घटनाएं? उसने कहा, कुछ ऐसे खतरे आए कि उन खतरों में मैं इतना जाग गया—जागने की वजह से चोरी मुश्किल हो गई। और जागने की वजह से उस सम्पत्ति का अब ख्याल नहीं है, जो सोने के कारण दिखाई पड़ती थी। अब मैं एक दूसरी ही चोरी में लग गया हूं। अब मैं परमात्मा की चोरी कर रहा हूं। पहले आदमियों की चोरी करता रहा।

लेकिन मैं कोशिश करूंगा, शायद तुम्हें भी यह हो जाय। चाहता तो यही हूं कि तुम आदमियों के चोर मत बनो, परमात्मा के ही चोर बनो। लेकिन शुरुआत आदमियों की चोरी से कर देने में कोई हर्जा नहीं है।

ऐसे हर आदमी, आदमी की ही चोरी से शुरुआत करता है। हर आदमी के हाथ दूसरे आदमी की जेब में पड़े होते हैं। जमीन पर दो ही तरह के चोर हैं—आदमियों से चुराने वाले और परमात्मा से

चुरा लेने वाले। परमात्मा से चुरा लेने वाले तो बहुत कम हैं—कि जिनके हाथ परमात्मा की जेब में चले जाएं। लेकिन आदमियों के—तो सारे लोग एक दूसरे की जेब में हाथ डाले ही रहते हैं। और खुद के दोनों हाथ जब दूसरे की जेब में डाल देते हैं, तो दूसरों के हाथ उनकी जेब में डालने की सुविधा हो जाती है। स्वाभाविक है, क्योंकि अपनी जेब की रक्षा करें, तो दूसरे की जेब से निकाल नहीं सकते। दूसरे की जेब से निकालें, तो अपनी जेब असुरक्षित छूट जाती है, उसमें से दूसरे निकालते हैं। एक म्युचुअल, एक पारस्परिक चोरी सारी दुनिया में चल रही है।

उसने कहा, कि लेकिन चाहता हूं कि कभी तुम परमात्मा के चोर बन सको। तुम्हें मैं ले चलूंगा दूसरे दिन वह अपने युवा लड़के को लेकर राजमहल में चोरी के लिए गया। उसने जाकर आहिस्ता से दीवाल की ईटें सरकाई, लड़का थर-थर कांप रहा है खड़ा हुआ। आधी रात है, राजमहल है, संतरी द्वारों पर खड़े हैं, और वह इतनी शांति से ईटें निकाल कर रख रहा है कि जैसे अपना घर हो। लड़का थर-थर कांप रहा है। लेकिन बूढ़े बाप के बूढ़े हाथ बड़े कुशल हैं। उसने आहिस्ता से ईटें निकालकर रख दीं। उसने लड़के से कहा, कंपो मत। साहूकारों को कंपना शोभा देता है, चोरों को नहीं। यह काम नहीं चल सकेगा। अगर कंपोगे, तो क्या चोरी करोगे? कंपन बन्द करो। देखो मेरे बूढ़े हाथ भी कंपते नहीं।

सेंध लगाकर बूढ़ा बाप भीतर हुआ। उसके पीछे उसने अपने लड़के को भी बुलाया। वे महल के अन्दर पहुंच गए। उसने कई ताले खोले और महल के बीच के कक्ष में वे पहुंच गए। कक्ष में एक बहुत बड़ी बहुमूल्य कपड़ों की आलमारी थी। आलमारी को बूढ़े ने खोला। उसने लड़के से कहा, भीतर घुस जाओ और जो भी कीमती कपड़े हों, बाहर निकाल लो। लड़का भीतर गया, बूढ़े बाप ने दरवाजा बन्द करके ताला बन्द कर दिया। जोर से सामान पटका और चिल्लाया—चोर। और वह सेंध से निकलकर घर के बाहर हो गया।

सारा महल जाग गया। और लड़के के प्राण आप सोच सकते हैं, किस स्थिति में नहीं पहुंच गए होंगे। यह कल्पना भी न की थी कि बाप ऐसा दुष्ट हो सकता है। लेकिन सिखाते समय सभी मां-बाप को दुष्ट शायद होना पड़ता है। लेकिन एक बात हो गई, ताला बन्द कर गया है बाप, कोई उपाय नहीं छोड़ गया बचने का! चिल्ला गया है—महल के संतरी जाग गए, नौकर-चाकर जाग गए हैं, प्रकाश जल गए हैं, लालटेनें घूमने लगी हैं, चोर की खोज हो रही है। चोर जरूर मकान के भीतर है। दरवाजे खुले पड़े हैं, दीवाल में छेद है।

फिर एक नौकरानी मोमबत्ती लिए हुए उस कमरे में भी आ गई है, जहां वह बन्द है। अगर वे लोग न भी देख पाएं तो भी फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि वह बन्द है और निकल नहीं सकता, दरवाजे पर ताला है बाहर। लेकिन कुछ हुआ। अगर आप उस जगह होते तो क्या होता? आज रात सोते वक्त जरा ख्याल करना कि उस जगह अगर मैं होता—उस लड़के की जगह, तो क्या होता? क्या उस वक्त आप विचार कर सकते थे? विचार करने की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। उस वक्त आप क्या सोचते? सोचने का कोई मौका नहीं था। उस वक्त आप क्या करते? कुछ भी करने का उपाय नहीं था। द्वार बंद है, बाहर ताला लगा हुआ है, संतरी अंदर घुस आए हैं, नौकर भीतर खड़े हैं, घर भर में खोजबीन की जा रही है—आप क्या करते?

उस लड़के के पास करने को कुछ भी नहीं था। न करने के कारण वह बिलकुल शांत हो गया। उस लड़के के पास सोचने को कुछ नहीं था। सोचने की कोई जगह नहीं थी, गुंजाइश नहीं थी। सोचने का मौका नहीं था, क्योंकि खतरा बहुत बड़ा था। जिन्दगी मुश्किल में थी। वह एकदम अलर्ट हो गया। ऐसी अलर्टनेस, ऐसी सचेतता, ऐसी सावधानी उसने जीवन में कभी देखी नहीं थी। ऐसे खतरे को ही नहीं देखा था। और उस सावधानी में कुछ होना शुरू हुआ। उस सचेतता के कारण कुछ होना शुरू हुआ—जो वह नहीं कर रहा

था, लेकिन हुआ। उसने कुछ, अपने नाखून से दरवाजा खरोंचा। नौकरानी पास से निकलती थी। उसने सोचा शायद चूहा या कोई बिल्ली कपड़ों की अलमारी में अंदर है। उसने ताला खोला, मोमबत्ती लेकर भीतर झांका। उस युवक ने मोमबत्ती बुझा दी। बुझाई, यह कहना केवल भाषा की बात है। मोमबत्ती बुझा दी गई, क्योंकि युवक ने सोचा नहीं था कि मैं मोमबत्ती बुझा दूं। मोमबत्ती दिखाई पड़ी, युवक शांत खड़ा था, सचेत, मोमबत्ती बुझा दी, नौकरानी को धक्का दिया; अंधेरा था, भागा। नौकर उसके पीछे भागे। दीवाल से बाहर निकला। जितनी ताकत से भाग सकता था, भाग रहा था। भाग रहा था, कहना गलत है, क्योंकि भागने का कोई उपक्रम, कोई चेष्टा, कोई एफर्ट वह नहीं कर रहा था। बस पा रहा था कि मैं भाग रहा हूं। और फिर पीछे लोग लगे थे। वह एक कुए के पास पहुंचा, उसने एक पत्थर को उठाकर कुए में पटका। नौकरों ने कुए को घेर लिया। वे समझे कि चोर कुए में कूद गया है। वह एक दरख्त के पीछे खड़ा था, फिर आहिस्ता से अपने घर पहुंचा।

जाकर देखा, उसका पिता कम्बल ओढ़े सो रहा था। उसने कम्बल झटके से खोला और कहा कि आप यहां सो रहे हैं, मुझे मुश्किल में फंसाकर? उसने कहा, अब बात मत करो। तुम आ गए, बात खतम हो गई। कैसे आए—तुम खुद ही सोच लेना। कैसे आए तुम वापस? उसने कहा मुझे पता नहीं कि मैं कैसे आया हूं। लेकिन कुछ बातें घटीं। मैंने जिन्दगी में ऐसी अलर्टनेस, ऐसी ताजगी, ऐसा होश कभी देखा नहीं था। और आउट आफ देट अलर्टनेस, उस सचेतता के भीतर से, फिर कुछ शुरू हुआ, जिसको मैं नहीं कह सकता कि मैंने किया। मैं आ गया हूं।

उस बूढ़े ने कहा, अब दोबारा भीतर जाने का इरादा है? उस युवक ने कहा, उस सचेतता में, उस अवेयरनेस में जिस आनन्द

का अनुभव हुआ है, अब मैं चाहता हूं, मैं भी परमात्मा का चोर हो जाऊं। अब आदमियों की सम्पदा में मुझे भी कोई रस दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि उस सचेतता में मैंने अपने भीतर जो सम्पदा देखी है, वह इस संसार में कहीं भी नहीं है।

तो मैं परमात्मा के चोर होना आपको सिखाना चाहता हूं। लेकिन उसके पहले इन तीन सूत्रों पर...इन तीन दिनों में अगर आप सहयोग देंगे, तो इसमें कोई बहुत आश्चर्य नहीं है कि जाते वक्त आप अपने सामान में परमात्मा की भी थोड़ी सी सम्पदा ले जाते हुए अपने आपको अनुभव करें। वह सम्पत्ति सब जगह मौजूद है। लेकिन हिम्मतवर चोर आता ही नहीं कि उस सम्पत्ति को चुराए और अपने घर ले जाय।

परमात्मा करे, आप भी एक मास्टर थीफ हो सकें, एक कुशल चोर हो सकें, उस बड़ी सम्पदा को चुराने में उस चोरी के सिखाने का ही राज तीन दिनों में आपसे मैं कहूंगा। और अगर आपका सहयोग रहा तो, यह बात हो सकती है।

आज के लिए तो इतना बस। क्योंकि रात बहुत हो गई। और जिनको चोरी की तैयारी करनी है, उन्हें अपनी-अपनी जगह चले जाना चाहिये।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

अंत में यही प्रार्थना करता हूं, प्रभु करे, वह आशा और वह सपना पूरा हो सके, जिसके लिए हम सबके प्राण लालायित हैं। वह हो सकता है, सिर्फ आपके सहयोग की जरूरत है।

अत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

☐

साधना—शिविर माथेरान, दिनांक १८-१०-६६ रात्रि

२. आत्मा के फूल

ज्ञान की कोई भिक्षा सम्भव नहीं हो सकती। ज्ञान भीख नहीं है। धन तो कोई भीख में मांग भी ले, क्योंकि धन बाहर है। लेकिन ज्ञान? ज्ञान स्थूल नहीं है, उसके कोई सिक्के नहीं हैं, उसे किसी से मांगा नहीं जा सकता। उसे तो जानना ही होता है। लेकिन आलस्य हमारा, प्रमाद हमारा, श्रम न करने की हमारी इच्छा, हमें इस बासे उधार ज्ञान को जो कि ज्ञान नहीं है, इकट्ठा कर लेने के लिए तैयार कर देती है।

इससे बड़ा मनुष्य का और कोई अपमान नहीं है कि वह ज्ञान मांगने किसी के द्वार पर जाय। इससे बड़ा कोई अपमान नहीं है। इससे बड़ा कोई पाप नहीं है। लेकिन इस बात को तो धर्म समझा जाता रहा है। जैसे मैं कहूं—जो आदमी जितना शास्त्रों से, शास्ताओं से ज्ञान इकट्ठा कर लेता है, उतना धार्मिक समझा जाता है। उससे ज्यादा पापी मनुष्य दूसरा नहीं है। क्योंकि जीवन में सबसे बड़ा पाप वह कर रहा है—वह यह कि वह ज्ञान उधार मांग रहा है, भीख मांग रहा है, जो कि कभी मिल ही नहीं सकता। जैसे ही कोई देता है, ज्ञान, देते ही झूठा हो जाता है।

एक युवक समुद्र के किनारे घूमने गया था। बहुत सुन्दर, बहुत शीतल, बहुत ताजगी देने वाली हवाएं उसे वहां मिली। वह एक युवती को प्रेम करता था, जो दूर किसी अस्पताल में बीमार थी। उसने सोचा इतनी सुन्दर हवाएं, इतनी ताजी हवाएं—क्यों न मैं अपनी प्रेयसी को भेज दूं।

उसने एक बहुमूल्य पेटी में उन हवाओं को बन्द किया और पार्सल से अपनी प्रेयसी के लिये भिजवा दिया। साथ में एक प्यारा पत्र लिखा कि बहुत शीतल, बहुत सुगन्धित, बहुत ताजी हवाएं तुम्हें भेज रहा हूं, तुम बहुत आनन्दित होगी।

पत्र तो मिल गया, लेकिन हवाएं नहीं मिलीं। पेटी खोली, वहां तो कुछ भी न था। वह युवती बहुत हैरान हुई। इतनी बहुमूल्य पेटी में भेजा था उसने उन हवाओं को, इतने प्रेम से। पत्र तो मिल गया, पेटी भी मिल गई, लेकिन हवाएं—हवाएं वहां नहीं थीं।

समुद्र की हवाओं को पेटियों में भरकर नहीं भेजा जा सकता। चांद की चांदनी को भी पेटियों में भरकर नहीं भेजा जा सकता। प्रेम को भी पेटियों में भरकर नहीं भेजा जा सकता। लेकिन परमात्मा को हम पेटियों में भरकर हजारों साल से एक दूसरे को भेजते रहे हैं। पेटियां मिल जाती हैं—बड़ी खूबसूरत पेटियां हैं, साथ में लिखे पत्र भी मिल जाते हैं—गीता के, कुरान के, बाइबिल के लेकिन पेटी खोलने पर सत्य नहीं मिलता है। जो ताजी हवाएं उन लोगों ने जानी होंगी, जिन्होंने प्रेम में ये पत्र भेजे, वे हम तक नहीं पहुंच पाते हैं।

समुद्र की ताजी हवाओं को जानना हो तो समुद्र के किनारे ही जाना पड़ेगा और कोई रास्ता नहीं है। कोई दूसरा उन हवाओं को आपके पास नहीं पहुंचा सकता है। आपको खुद ही समुद्र तक की यात्रा करनी होगी। सत्य की ताजी हवाएं भी कोई नहीं पहुंचा सकता। सत्य तक भी हमें स्वयं ही यात्रा करनी होगी।

इस पहली बात को बहुत स्मरण-पूर्वक ध्यान में ले लेना जरूरी है। इस पहली बात को ध्यान में लेते ही शास्त्र व्यर्थ हो जाएंगे। परम्पराओं से भेजी गई खबरें हंसने की बातें हो जाएंगी। और आपका चित्त नए होने के लिए तैयार हो सकेगा। आलस्य है, जो इस सत्य को नहीं देखने देता।

दूसरी बात। परम्परागत ज्ञान के साथ जीने में एक तरह की सुरक्षा, एक तरह की सिक्योरिटी है। सभी लोग जिस बात को मानते हैं, उसे मान लेने में एक तरह की सुरक्षा है। राजपथ पर चलने जैसी सुरक्षा है। एक बड़ा राजपथ है, हाईवे है, उस पर हम सब चलते हैं सुरक्षित...कोई भय नहीं, बहुत लोग चल रहे हैं। लेकिन पगडंडियां हैं, अकेले रास्ते हैं, जिन पर

यात्री मिले या न मिले। कोई साथी सहयोगी हो या न हो। अकेले जंगलों में भटक जाने का डर है। अंधेरे रास्ते हो सकते हैं...अनजान अपरिचित, अननोन...उन पर जाने में भय लगता है।

इसलिए हम सब सुरक्षित बंधे हुए रास्तों पर चलते हैं...वहां सभी लोग चलते हैं, वहां कोई भय नहीं, रास्ते पर और भी यात्री हैं, आगे भी यात्री हैं, पीछे भी। इससे यह विश्वास मन में प्रबल होता है कि जब आगे लोग जा रहे हैं, तो ठीक ही जा रहे होंगे। मैं ठीक ही जा रहा हूं, क्योंकि बहुत लोग जा रहे हैं। और हर आदमी को यही ख्याल है कि बहुत लोग जा रहे हैं। यह एक म्युचुअल फैलसी है, यह एक पारस्परिक भ्रांति है। बहुत लोग एक तरफ जा रहे हैं, तो प्रत्येक यह सोचता है, इतने लोग जा रहे हैं, तो जरूर ठीक जा रहे होंगे। सभी लोग गलत नहीं हो सकते। और हरएक यही सोचता है!

भीड़ एक भ्रम पैदा कर देती है। तो हजारों वर्षों की एक भीड़ चलती है एक रास्ते पर। एक नया बच्चा पैदा होता है, वह इतना अकेला, इस भीड़ से अलग हटकर कैसे जाय? उसे विश्वास नहीं आता है कि मैं ठीक हो सकता हूं, उसे विश्वास आता है इतने लोग ठीक होंगे। ज्ञान की दिशा में यह डेमोक्रेटिक ख्याल सबसे बड़ी भूल साबित हुई है। ज्ञान कोई लोकतन्त्र नहीं है। यहां कोई हाथ उठाने और भीड़ के साथ होने का सवाल नहीं है।

अक्सर तो उलटा हुआ है, भीड़ गलत साबित हुई है। इकहरे, इक्के-दुक्के व्यक्ति सही साबित हुए हैं। अगर भीड़ ही सही होती तो दुनिया दूसरी होनी चाहिए थी। दुनिया एकदम गलत है ..भीड़ गलत होगी। कभी इक्का-दुक्का आदमी तो सही हुआ है, लेकिन भीड़ सही नहीं हुई। लेकिन भीड़ को एक सुविधा है...यह भ्रम पाल लेने की, पोस लेने की, कि सभी लोग साथ हैं। जहां बहुत लोग साथ हैं, वहां सत्य होगा ही।

सत्य के लिए ऐसी कोई गारन्टी और कसौटी नहीं है। बल्कि सचाई तो यह है कि सत्य की शुरूआत ही नहीं हो पाती इस विश्वास के कारण की दूसरे लोग बहुत होने की वजह से सही होंगे और मैं अकेला होने की वजह से कहीं गलत न हो जाऊं।

ज्ञान मुझे खोजना है, सत्य मुझे पाना है, जीवन मुझे जीना है, और मुझे स्वयं पर कोई विश्वास नहीं है। भीड़ पर, अन्यों पर विश्वास है! तो फिर यह यात्रा कैसे हो सकती है? मुझे होना चाहिए स्वयं पर विश्वास। है मुझे अन्य पर, भीड़ पर विश्वास। भीड़ जो कह देती है, उसी को मैं मान लेता हूं। भीड़ अगर हिन्दुओं की है, तो मैं एक बात मान लेता हूं। भीड़ जैनियों की है, दूसरी बात मान लेता हूं। भीड़ कम्युनिस्टों की है, तीसरी बात मान लेता हूं, भीड़ आस्तिकों की है...चौथी...नास्तिकों की है.. पाँचवी...! भीड़ जो कहती है, वह मैं मान लेता हूं। भीड़ मेरे प्राणों को जकड़े हुये है!

यह जो कलेक्टिव माइंड है, यह जो समूह का मन है, यह व्यक्ति के मन को सत्य तक नहीं पहुंचने देता है। कलेक्टिव माइन्ड, समूह का जो मन है, हजारों—हजारों साल में जो निर्मित होता है, यह जो बासा मन है, यह हमें जकड़े हुये है। और आप जबतक इस कलेक्टिव माइन्ड, इस सामूहिक मन के घेरे में बंद हैं, तब तक आप भूल में हैं कि आप एक व्यक्ति हैं, आप एक इन्डीवीजुअल हैं। अभी आपके भीतर इन्डीवीजुअल का जन्म नहीं हुआ है। अभी आप व्यक्ति कहने के हकदार नहीं हैं अपने को। व्यक्ति तो वही कह सकता है अपने को, जिसने भीड़ से अपने स्वयं के मन को मुक्त कर लिया। जिसने राजपथ छोड़ दिया और सत्य की अनजानी पगडंडियों की यात्रा शुरू की है। और जो व्यक्ति ही नहीं बन सकता, वह आत्मा को जान सकेगा? इन्डीवीजुअल होना व्यक्ति होना, आत्मा की खोज का पहला सोपान है। आत्मा को आप कभी नहीं पहुंच सकते हैं, जब तक आप व्यक्ति ही नहीं है। अभी तो आप भीड़ के

एक के हिस्से हैं। अभी तो आप भीड़ के एक अंश हैं। अभी आपका अपना होना, आपका बीइंग, अभी नहीं है। अभी आप एक बड़ी मशीन के कल-पुर्जे हैं। वह बड़ी मशीन जैसी चलती है, वैसे आप चलते हैं। अभी आपकी कोई निजी सत्ता नहीं है। तो जीवन और ताजगी कहां से सम्भव हो सकती है? अभी हम एक यंत्र के हिस्से हैं, हम यांत्रिक हैं। अभी हम मनुष्य भी अपने को नहीं कह सकते हैं।

मनुष्य होने की पहली शुरूआत भीड़ से मुक्ति है।

बचपन से भीड़ पकड़ना शुरू कर देती है। बच्चा पैदा होता है और भीड़ उसे पकड़नी शुरु कर देती है। वह जो क्राउड है हमारे चारों तरफ, वह डरती है कि बच्चा कहीं छिटक न जाय, उसके फोल्ड से, उसके घेरे से। वह उसको शिक्षा देनी शुरू कर देती है, धर्म, शिक्षा और जमाने भर की शिक्षाएं! और उसे अपने घेरे में बांध लेने के सब प्रयास करती है। इसके पहले कि उस बच्चे में सोच-विचार पैदा हो, भीड़ उसके चित्त को सब तरफ से जकड़ लेती है। फिर जीवन भर उसी भीड़ के शब्दों में वह बच्चा सोचता है, और जीता अर्थात् वह कभी भी नहीं सोचता और कभी नहीं जीता। उसके भीतर स्वयं का चिन्तन, स्वयं का विचार, स्वयं का अनुभव, जैसा कुछ भी नहीं रह जाता।

क्या यह हम सोचेंगे नहीं कि हम भीड़ के एक हिस्से हैं?

जब आप कहते हैं मैं जैन हूं...तो आप क्या कहते हैं? जब आप कहते हैं, मैं मुसलमान हूं...तो आप क्या कहते हैं? जब आप कहते हैं मैं कम्यूनिस्ट हूं...तो आप क्या कहते हैं? आप यह कहते हैं, मैं नहीं हूं, एक भीड़ है, जिसका मैं हिस्सा हूं। और क्या कहते हैं आप? आप इन्कार करते हैं अपने होने को और भीड़ के होने को स्वीकार करते हैं। कहते हैं, मैं हिन्दू हूं, ईसाई हूं, पारसी हूं। आप क्या कह रहे हैं? इससे ज्यादा अपमान की कोई और बात हो सकती है कि आप पारसी हैं, हिन्दू हैं, ईसाई हैं। आदमी नहीं हैं—आप,

आप नहीं हैं। आप एक भीड़ के हिस्से हैं। और बड़े गौरव से इस बात को कहते हैं कि मैं वह भीड़ हूं। और वह भीड़ जितनी पुरानी होती है आप और गौरव से चिल्लाते हैं कि मेरी भीड़ बड़ी प्राचीन है; मेरी संस्कृति, मेरा धर्म बड़ा पुराना है। मेरी भीड़ की संख्या बहुत ज्यादा है। और आपको पता भी नहीं चलता कि आप अपना आत्मघात कर रहे हैं, आप स्वीसाइड कर रहे हैं।

जो आदमी भीड़ का हिस्सा है, वह आत्मघाती है।

आपको स्मरण होना चाहिए—आप, आप हैं। आप एक व्यक्ति हैं। आप एक चेतना हैं, और चेतना किसी का हिस्सा नहीं होती, और न हो सकती है। यन्त्र, जड़ का हिस्सा होता है। चेतना किसी का हिस्सा नहीं होती। चेतना एक स्वतन्त्रता है। लेकिन सुरक्षा के पीछे स्वतन्त्रता को खो देते हैं।

तो दूसरी चीज जो हमें बांधे हुए है, हमारे चित्त को नया नहीं होने देती, ताजा नहीं होने देती—वह है सुरक्षा का अतिभाव, साहस की अति कमी।

एक ईसाई धर्म-गुरु, कुछ छोटे से बच्चों के स्कूल में उन्हें नैतिक साहस की शिक्षा देता था, मॉरल करेज के बाबत कुछ बातें सिखाता था। तीस बच्चे थे। उस धर्म-गुरु ने कहा—कि नैतिक साहस होना चाहिए। एक बच्चे ने पूछा, हम समझते नहीं नैतिक साहस क्या है, आप हमें समझाएं?

तो उसने कहा, समझ लो, तुम तीस ही बच्चे एक रात एक जंगल में पिकनिक के लिए गए हो। फिर दिन भर की भाग-दौड़ के बाद, घूमने-फिरने के बाद रात में सराय में रुके हो। थक गए हो। उन्तीस बच्चे—सर्द रात है, अपने कम्बलों को ओढ़कर सो जाते हैं। लेकिन उनमें से एक बच्चा एक कोने में बैठकर रात की प्रार्थना करता है। तीस बच्चे—सर्दी है कड़कड़ाती हुई, दिन भर के थके हुए; उन्तीस बच्चे जाकर अपने कमरे में कम्बल ओढ़ लेते हैं, सो जाते हैं बिना प्रार्थना किए रात्रि की, लेकिन एक बच्चा उस सर्द रात में थका

हुआ भी, घुटने टेककर परमात्मा से रात की प्रार्थना करता है। उस बच्चे में मॉरल करेज है, उस बच्चे में नैतिक साहस है। उस वक्त कितना तीव्र टेम्पटेशन है उसे—सब सोने जा रहे हैं, सर्द रात है, लेकिन वह अकेला होने की हिम्मत करता है।

महीने भर बाद वह पादरी फिर वापस लौटा। उसने उन बच्चों से कहा, मैंने नैतिक साहस के सम्बन्ध में तुम्हें समझाया था, क्या तुम मुझे बता सकोगे कि नैतिक साहस क्या है?

एक बच्चे ने कहा, समझ लें, आप जैसे तीस पादरी एक रात एक ही सराय में ठहरते हैं। उन्तीस पादरी प्रार्थना कर रहे हैं, एक पादरी कम्बल ओढ़कर शान से सो जाता है। उसको हम मॉरल करेज, उसको हम नैतिक साहस कहते हैं।

मुझे पता नहीं इन दोनों में से कौन सा नैतिक साहस है। लेकिन एक बात जरूर पता है, भीड़ से पृथक होने की हिम्मत जरूर नैतिक साहस है। हमेशा भीड़ के समक्ष झुक जाना...नैतिक कमजोरी है, नैतिक अशक्ति है, बलहीनता है, पुरुषार्थ का अभाव है। हमेशा-हमेशा भीड़ के समक्ष झुक जाना, हर बात में भीड़ के समक्ष झुक जाना, चित्त के आन्तरिक तलों पर!

बाहर के तलों की बातें नहीं कह रहा हूं कि सारा मुल्क बाएं चलता है, तो आप दाएं चलने लगें। कि सारा मुल्क सड़क के किनारे चलता है, तो बीच में चलने लगें... यह मैं नहीं कह रहा हूं। जीवन के बाहर के जो औपचारिक नियम हैं, उनमें तो सिर्फ नासमझ लोग साहस करते हैं।

सोवियत रूस में क्रांति हुई, उन्नीस सौ सत्तरह में। मास्को मुक्त हो गया, जार के हाथों से। तो एक बूढ़ी औरत बीच सड़क पर खड़ी होकर गपशप करने लगी। एक ट्रैफिक के पुलिस मैन ने उसको कहा कि यह सड़क का चौराहा है, यहां यह गप-शप करने की जगह नहीं, तुम भीड़ को बाधा दे रही हो। उसने कहा, छोड़ो, अब

हम स्वतंत्र हैं। अब जहां हमको खड़ा होना होगा, वहां हम खड़े होंगे; जहां हमें बात करनी होगी, हम बात करेंगे। अब कोई बन्धन नहीं।

यह औरत न समझ है। जीवन का, बाहर का जो जगत है बाहर का जगत भीड़ का जगत है। वहां आप एक इंच भी चलते हैं, तो चारों तरफ भीड़ के नियम ही होंगे, व्यक्ति के नियम नहीं हो सकते।

लेकिन भीतर के जगत में कोई भीड़ नहीं है। वहां कोई आपके सिवाय मौजूद नहीं है। वहाँ के जो नियम होंगे, उनके नियमों का, भीड़ का होना कतई जरूरी नहीं है। भीतर के जगत में आप व्यक्ति हो सकते हैं। बाहर के जगत में तो आपको समाज का सदस्य होना पड़ेगा। लेकिन भीतर के जगत में समाज के सदस्य होने की कोई अनिवार्यता नहीं है। बाहर कानून होगा, सड़क के नियम होंगे, समाज के नियम होंगे, वे ठीक हैं। बाहर आप समाज के एक सदस्य हैं। लेकिन भीतर—भीतर आपको अगर परमात्मा का एक साथी होना है, तो समाज का सदस्य आपको नहीं रह जाना पड़ेगा। भीतर के जगत में आपको भीड़ से मुक्त हो ही जाना चाहिए, तो ही आपका मन ताजा हो सकता है।

तो मेरी बात को आप गलत नहीं लेंगे। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप उच्छृंखल हो जाएं। और आपको जहां से चलना हो, वहां से चलने लगें। नहीं मैं आपसे यह कह रहा हूं कि एक तल है चेतना का भीतर, वहां किसी समाज के नियम की कोई भी जरूरत नहीं। वहां आपको हिन्दू और मुसलमान, ईसाई और जैन होने की कोई भी जरूरत नहीं। और वहां आप जब तक हिन्दू, जैन, मुसलमान, ईसाई बने रहेंगे, तब तक—तब तक आप जो हैं, उसे कभी नहीं जान सकते। भीड़ ने आपके भीतर अपने पंजे फैला दिए हैं, और आपकी आत्मा को पकड़ लिया है। और आप राजी हैं, इसलिए यह बंधन पैदा हुआ है। आप गैर-राजी हो जाएं, यह बंधन

इसी क्षण गिर जाता है।

आपके सहयोग के बिना कोई आपको मानसिक रूप से गुलाम नहीं बना सकता। शारीरिक रूप से बना सकता है। शारीरिक रूप से आप गुलाम बनाए जा सकते हैं, आपके बिना सहयोग के। लेकिन मानसिक, वह जो मेन्टल स्लेवरि है, वह जो मानसिक दासता है, वह आपके सहयोग के बिना कोई कभी खड़ी नहीं कर सकता। क्योंकि आपके सिवाय आपके मन में किसी की कोई गति नहीं है। जब आप राजी होते हैं, तो आपका चित्त गुलाम होता है, अन्यथा गुलाम नहीं होता है।

क्या आप उस तल पर गैर-राजी होने को तैयार हैं? क्या उस तल पर आप इंकार करने की हिम्मत रखते हैं? क्या वहां आप "नो" कह सकते हैं? हम सब हमेशा "हां" कहने वाले लोग हैं। हममें से कोई भी नहीं है, जो कह सकें "नहीं"। और जो आदमी भीतर के तल पर "नहीं", नहीं कह सकता, वह कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता। हम हमेशा "हां" कहने को तैयार हैं। हमारे इस "हां" कहने ने हमारे मन को बासा; दास, पुराना और जीर्ण-जर्जर बना दिया है।

तो पहला सूत्र आज ही सुबह आपसे कहना चाहता हूं ..आप इन्कार करने में समर्थ होने चाहिए। तो ही आपके भीतर धार्मिक आदमी पैदा हो सकेगा। धार्मिक आदमी परिपूर्ण स्वतंत्र है। धार्मिक आदमी से ज्यादा स्वतंत्र कोई मनुष्य नहीं होता। लेकिन हम देखते हैं कि धार्मिक आदमी से ज्यादा गुलाम आदमी दिखाई नहीं पड़ता दुनिया में! होना उल्टा था। धार्मिक आदमी स्वतंत्रता की एक प्रतिमा होता, धार्मिक आदमी स्वतंत्रता की एक गरिमा लिए होता धार्मिक आदमी के जीवन से स्वतंत्रता की किरणें फूटती होतीं, वह एक मुक्त पुरुष होता, उसके चित्त पर कोई गुलामी न होती। लेकिन धार्मिक आदमी सबसे ज्यादा गुलाम है! इसलिए धर्म सब झूठा सिद्ध हो गया है।

इस सच्चाई को मेरे कहने से आप स्वीकार कर लें, तो आप "यस-सेअर" हो गए, आप "हां" कहने वाले हो गये। फिर मैं आपको गुलाम करने का एक कारण हो जाऊंगा। मेरे कहने से आप स्वीकार कर लेंगे, तो इससे गुलामी तो बदलेगी, लेकिन गुलामी समाप्त नहीं होगी। क्योंकि तब कोई दूसरे बंधन हटेंगे, मेरे बंधन आपको पकड़ ले सकते हैं।

मेरे कहने से आपको स्वीकार नहीं करना है। सोचना है, देखना है। मैंने जो कहा उसे अपने भीतर खोजना है कि क्या मेरी कही बात आपके भीतर तथ्यों से मेल खाती है, क्या वह फेक्ट्स से मेल खाती है? क्या आप भीतर के तल पर एक गुलाम आदमी हैं? क्या भीतर के तल पर आप भीड़ के एक सदस्य हैं? क्या भीतर के तल पर आपकी कोई निजी हैसियत, आपका कोई अपना होना है या नहीं है?

मैं जो बातें कह रहा हूं, मेरे साथ ही साथ अगर आप भीतर उनकी तौल करते चलें और देखते चलें, क्या यह सच है और अगर आपको अपने भीतर के तथ्यों से मेल दिखाई पड़ जाय, तो फिर मेरे कहने से आपने नहीं माना, आपने खोजा और पाया। तब फिर... आप अपनी गुलामी को खुद देखने के कारण अगर उससे मुक्त होते हैं, तो वह मुक्ति नई गुलामी की शुरूआत नहीं होगी। नहीं तो हमेशा यह हुआ है एक से लोग छूटते हैं तो दूसरे से बंध जाते हैं...कुए से बचते हैं तो खाई में गिर जाते हैं! एक गुरु से बचते हैं तो दूसरा गुरु मिल जाता है! एक बाबा से बचते हैं, दूसरा बाबा मिल जाता है! एक मन्दिर से बचते हैं, दूसरे मन्दिर में आ जाते हैं! लेकिन बचना नहीं हो पाता। बीमारियां बदल जाती हैं, लेकिन बीमारियां रहती हैं। थोड़ी देर को राहत मिलती है, क्योंकि गुलामी थोड़ी देर को स्वतंत्रता का ख्याल देती है। क्योंकि पुरानी गुलामी का बोझ हट जाता है, नई गुलामी का नया बोझ तुरन्त पता नहीं लगता।

लोगों को मरघट पर अर्थी ले जाते मैं देखता हूं । तो कंधे बदलते रहते हैं रास्ते में । इस कंधे पर रखी थी अर्थी फिर उस कंधे पर रख लेते हैं । कंधा बदलने से थोड़ी राहत मिलती होगी .. इस कंधे पर वजन कम हो जाता है, यह थक जाता है, तो फिर दूसरा कंधा । थोड़ी देर बाद फिर उनको मैं कंधे बदलते देखता हूं, फिर इस कंधे पर ले जाते हैं । कंधे बदल जाते हैं, लेकिन आदमी के ऊपर वह अर्थी का बोझ तो तैयार ही रहता है...इससे क्या फर्क पड़ता है कि कंधे बदल लिए । थोड़ी देर राहत मिलती है, दूसरा कंधा फिर तैयार हो जाता है ।

इसी तरह दुनिया में इतने धर्म पैदा हो गए हैं.. कंधे बदलने के लिए । नहीं तो कोई और कारण नहीं था कि ईसाई हिन्दू हो जाता, हिन्दू ईसाई हो जाता । एक पागलपन हमेशा तैयार है। दुनिया में तीन सौ धर्म पैदा हो गए, कंधे बदलने की सुविधा के लिए ! और कोई उपयोग नहीं है । जरा भी उपयोग नहीं है । और भ्रांति यह पैदा होती है कि मैं एक गुलामी से छूटा, मैं एक आजादी की तरफ जा रहा हूं । एक हिन्दू ईसाई होता है, तो सोचता है मैं आजादी की तरफ जा रहा हूं । सिर्फ अपरिचित गुलामी उसको आजादी मालूम पड़ गई ! थोड़े दिनों बाद पाएगा कि फिर एक नई गुलामी में खड़ा हो गया । पुराना मन्दिर छूट गया, नया चर्च खड़ा हो गया। लेकिन वह नया देखने-भर को ही था । वह सब्स्टीट्यूट सिद्ध होता है...पुराने मन्दिर की जगह फिर एक दूसरा मन्दिर उपलब्ध हो जाता है । एक गुलामी बदलती है, दूसरी गुलामी शुरू हो जाती है ।

मैं आपको कोई नयी गुलामी का संदेश देने को नहीं हूं। गुलामी से गुलामी की तरफ नहीं, गुलामी से स्वतंत्रता की तरफ यात्रा करनो है । वह मेरी बात मानकर नहीं हो सकता है । इसलिए मेरी बात मानने की जरा भी जरूरत नहीं है । मैं कहीं भी आपके रास्ता में खड़ा नहीं होना चाहता हूं । मैंने निवेदन कर दी अपनी

बात—वह सोचने समझने को है । अगर वह फिजूल मालूम पड़े तो उसे एकदम फेंक देना । क्योंकि जानकर आपने फेंकने में संकोच किया, कि वह आपको पकड़ लेगी । जरा ही आप डरे कि इसको न फेंकें, वह आपकी गुलामी बन जाएगी । फिर वह आपके भीतर जड़ें फैलाना शुरू कर देगी । कल आप एक नई गुलामी में फिर से आबद्ध हो जाएंगे । एक नया कारागृह फिर खड़ा हो जाएगा । अबतक के सभी गुरू, सभी शास्ता मनुष्य के लिए कारा-गृह इसी तरह बन गए ।

मैं आपके लिए कोई कारागृह, कोई इमप्रिजनमेंट नहीं बनना चाहता हूं । इसलिए मेरी बात मानने का जरा भी मोह करने की जरूरत नहीं है । मैं कह रहा हूं...आप तथ्यों को विचार कर लें, सोच लें, और अगर तथ्य दिखाई पड़ते हों, तो क्या मैं आपसे यह कहूं कि आपको फिर एक्ट करना पड़ेगा, आपको कुछ करना पड़ेगा ? तथ्य दिखाई पड़ेंगे तो आप कुछ करेंगे ही । तथ्य दिखाई नहीं पड़ते, इसलिए कुछ नहीं करते ।

रास्ते पर सांप जाता आपको मिल जाए, दिखाई पड़ जाय, तो क्या आप पूछेंगे अब मैं क्या करूं ? आप छलांग लगा जाएंगे, पूछेंगे नहीं । पूछने की सुविधा और फुर्सत वहां आप नहीं पाएंगे । घर में आग लग जाए तो आप क्या पूछेंगे कि अब मैं क्या करूं ? आप बाहर निकल जायेंगे ।

जिस दिन आपको यह दिखाई पड़ जाय कि आपका मन हजारों साल से गुलामी में बंधा हुआ है, उस दिन क्या आप किसी से पूछेंगे, मैं क्या करूं ? नहीं आप गुलामी के बाहर कूद जायेंगे ।

देखते ही क्रिया होनी शुरू हो जाती है । आपने देखा नहीं, इसलिए क्रिया नहीं होती । आपको पता चल जाए कि आपको केन्सर को गया है . आप फिर पूछेंगे क्या करूं ? आप फौरन

चिकित्सा के लिए दौड़-धूप में लग जायेंगे। आप केन्सर के बाहर होना चाहेंगे।

केन्सर बहुत बड़ी बीमारी नहीं है। गुलामी उससे बहुत बड़ी बीमारी है। क्योंकि केन्सर केवल शरीर को नष्ट करता है, गुलामी आत्मा को नष्ट कर देती है। और हम सब गुलाम हैं, इसलिए हमारी आत्मायें नष्ट हो गईं। इसलिए नहीं आत्मायें नष्ट हो गईं कि आप मन्दिर नहीं जाते हो। क्या बेवकूफी की बातें हैं। कोई मन्दिर नहीं जाएगा.. इससे आत्मा नष्ट हो जाएगी? इससे आत्मा नष्ट नहीं हो गई कि आप रोज सुबह धर्म-ग्रंथ नहीं पढ़ते हो। धर्म-ग्रंथ से आत्माएं बचती होतीं तो बहुत सरल नुस्खा था। इस लिए भी आत्मा नष्ट नहीं हो गई कि आप यज्ञोपवीत नहीं पहनते, टीका नहीं लगाते, चोटी नहीं रखते। अगर इतना सस्ता मामला होता आत्मा को बचाने का, तब तो हमने दुनिया की आत्मा कभी की बचा ली होती।

आत्मा इसलिए नष्ट हो गई कि आप एक गुलाम हो। और गुलामी में आत्मा के फूल नहीं खिलते हैं। आत्मा के फूल खिलते हैं स्वतंत्रता में, स्वतंत्रता की भूमि में। गुलाम आदमी के भीतर आत्मा नहीं विकसित हो सकती। और हम सब गुलाम हैं। क्या इस गुलामी को आप देखेंगे? मन होगा कि इसको देखें ना। कुछ तरकीबें, कुछ तर्क सुझाकर इसको देखने से बच जाएं। क्योंकि देखने के बाद फिर आपको परिवर्तन से गुजरना अनिवार्य हो जाएगा। तो आप अपने मन को पच्चीस जस्टीफिकेशन खोजकर, न-देखने के लिए राजी करने की कोशिश करेंगे कि न देखें। हमेशा आदमी उन चीजों से आंख बंद कर लेना चाहता है, जिनको देखने से परिवर्तन का डर होता है। शुतुरमुर्ग अपने सिर को छिपा लेता है रेत में शत्रु को देखकर। जब शत्रु दिखाई नहीं पड़ता तो वह सोचता है, जो दिखाई नहीं पड़ता वह है ही नहीं। लेकिन दिखाई न पड़ने से शत्रु नष्ट नहीं होते।

तो आप छिपा लेना चाहेंगे पच्चीस तरह के तर्क जाल में कि नहीं, मैं गुलाम कहां हूं। कौन कहता है कि मैं गुलाम हूं? लेकिन इतनी जल्दी छिपाने की कोशिश आप न करें। छिपाते रहे हैं गुलामी को अच्छे—अच्छे शब्दों में, इसलिए गुलामी आज तक शेष है। यह कभी की समाप्त हो जानी चाहिए थी। उसके बचे रहने का कोई कारण नहीं है। लेकिन हम छिपाते हैं! और हम बहुत होशियार लोग हैं। आदमी मर जाता है तो सुन्दर कपड़े से ढांक देते हैं, फूल रख देते हैं ऊपर। घर में कहीं गंदगी होती है, खूबसूरत पर्दा टांग देते हैं। शरीर सुन्दर नहीं होता, तो सुन्दर कपड़ों से ढांक लेते हैं। हम, जहां-जहां कुरूपता होती है, सुन्दर से ढांक देते हैं। जहां-जहां असत्य होता है, सत्य के शब्दों से ढांक देते हैं! सब तरह से ढांक देते हैं फिर वह चीज बची रह जाती है। फिर उससे छूटने को हम खुद ही भूल जाते हैं। हम खुद ही भूल जाते हैं कि हमने कुछ छिपा रखा है। हम अपनी गुलामी को छिपाए हुए हैं और हमने अच्छे-अच्छे शब्दों में उसे ढांक लिया है।

गुलामी को छिपायें न, अच्छे-अच्छे शब्दों में उसे ढांकें न, उसे देखें, ठीक से उसे देखें। देखने मात्र से वह न होना शुरू हो जाती है। वह वस्तुतः है नहीं, आप देखते नहीं हैं, आप अंधे हैं, इसलिए प्रतीत होती है। आप देखना शुरू करें, स्वतंत्रता अनुभूत होगी। स्वतंत्रता के साथ-साथ सत्य भी आएगा, आनन्द भी आयेगा। सत्य और आनन्द स्वतंत्रता के ही परिणाम हैं।

आज इतना ही। अब हम ध्यान के लिए बैठें।

☐

साधना शिविर माथेरान दिनांक १९-१०-६९ सुबह

३. जीवन का आविर्भाव

सुबह हमने चित्त की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में थोड़ी बातें कीं। एक मित्र ने पूछा है कि चित्त स्वतंत्र होगा, तो स्वच्छंद तो नहीं हो जाएगा ?

हमें स्वतंत्रता का कोई भी पता नहीं है। हम केवल चित्त की दो ही स्थितियां जानते हैं। एक तो परतंत्रता की, और एक स्वच्छंदता की। या तो हम गुलाम होना जानते हैं, और या फिर उच्छृंखल होना जानते हैं। स्वतंत्रता का हमें कोई अनुभव नहीं है। स्वतंत्रता, स्वच्छंदता से उतनी ही भिन्न बात है, जितनी परतंत्रता।

सच्चाई तो यह है कि स्वतंत्रता का स्वच्छंदता से कोई संबंध नहीं। स्वच्छंदता का परतंत्रता से जरूर सम्बन्ध है। परतंत्र चित्त की जो प्रतिक्रिया है, वही स्वछंदता है। परतंत्र चित्त का जो विद्रोह है, वही स्वछंदता है। परतंत्र चित्त का जो विद्रोह है, वही स्वच्छंदता है। लेकिन स्वतंत्रता तो बहुत अनूठी दिशा है। उसका इन दोनों बातों से कोई भी सम्बन्ध नहीं। न तो स्वतंत्र व्यक्ति परतंत्र होता है और न स्वच्छंद होता है।

तो पहले हम परतन्त्रता को समझें। उसका अर्थ है : चित्त के ऊपर लोगों के द्वारा तंत्र, समाज के द्वारा तंत्र। वह जो कलेक्टिव माइंड है, वह जो समूह चित्त है, उसके द्वारा व्यक्ति को जहां-जहां बांधा गया है। यह जो बंधन है, निश्चित ही यह बंधन किसी को भी प्रीतिकर नहीं है। बंधन कभी प्रीतिकर नहीं हो सकते हैं। उन बंधनों के प्रति सहज ही भीतर एक विरोध है। उन बंधनों को तोड़ देने की भीतर एक तीव्र बलवती आकांक्षा है। और जब भी व्यक्ति मौका पाता है, उन बंधनों को तोड़ता है। ऐसी परतंत्रता को तोड़ने से—परतंत्रता के विरोध में, वह जो विद्रोही चित्त है, उससे स्वछंदता पैदा होती है।

आज तक जमीन पर आदमी का मन परतंत्र रहा है। अब उसके विद्रोह में एक रिबेलियन, उसके विरोध में एक प्रतिक्रिया सारे जगत में पैदा हो रही है। नया युवक उस प्रतिक्रिया का फल है। वह स्वच्छंद है। आप जो-जो कहते हैं, वह उसे केवल इसलिए करने को तैयार नहीं है, क्योंकि आप कहते हैं। कल तक का आदमी तैयार था, क्योंकि आप कहते थे। आज का युवक तैयार नहीं है, क्योंकि आप कहते हैं। लेकिन दोनों ही आपके कहने से बन्धे हुये हैं। दोनों ही स्वतंत्र नहीं हैं। एक आपके पक्ष में बंधा हुआ था, एक आपके विपक्ष में बंध गया है।

लेकिन विपक्ष में जो बन्ध जाता है—वह भी बन्धा हुआ है।

अगर एक व्यक्ति मन्दिर जाता है, इसलिए कि लोग कहते हैं। और एक व्यक्ति मन्दिर नहीं जाता है, केवल इसलिए क्योंकि लोग कहते हैं जाओ। ये दोनों ही मंदिर से बंधे हुए हैं। इन दोनों का चित्त एक ही परतंत्रता के दो पहलू हैं। स्वयं का इन दोनों के भीतर कुछ भी नहीं है।

स्वतंत्रता "पर" से मुक्ति है। पक्ष से भी, विपक्ष से भी। "पर" के ऊपर ध्यान न रह जाय, स्वयं पर ध्यान हो। लेकिन मुश्किल से ही हमारा ध्यान स्वयं पर होता है।

दस भिक्षु सत्य की खोज में एक बार निकले थे। उन्होंने बहुत पर्वतों-पहाड़ों, आश्रमों की यात्रा की। लेकिन उन्हें कोई सत्य का अनुभव न हो सका। क्योंकि सारी यात्रा बाहर हो रही थी। किन्हीं पहाड़ों पर, किन्हीं आश्रमों में, किन्हीं गुरुओं के पास खोज चल रही थी। जब तक खोज किसी और की तरफ चलती है, तब तक उसे पाया भी कैसे जा सकता है, जो स्वयं में है।

आखिर में थक गए और अपने गांव वापस लौटने लगे। वर्षा के दिन थे, नदी बहुत पूर पर थी। उन्होंने नदी पार की। पार करने के बाद सोचा कि गिन लें, कोई खो तो नहीं गया। गिनती की, एक आदमी प्रतीत हुआ खो गया है, एक भिक्षु डूब गया है। गिनती नौ

होती थी। दस थे वे। दस ने नदी पार की थी। लौटकर बाहर आकर गिना तो नौ मालूम होते थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने को गिनना छोड़ जाता था, शेष सबको गिन लेता था। वे रोने बैठ गए। सत्य की खोज का एक साथी खो गया था।

एक यात्री उस राह से निकलता था, दूसरे गांव तक जाने को। उसने उनकी पीड़ा पूछी, उनके गिरते आंसू देखे। उसने पूछा, क्या कठिनाई है? उन्होंने कहा, हम दस नदी में उतरे थे, एक साथी खो गया, उसके लिए हम रोते हैं। कैसे खोजें? उसने देखा वे दस ही थे। वह हंसा, और उसने कहा, तुम दस ही हो, व्यर्थ की खोज मत करो और अपने रास्ते चला गया।

उन्होंने फिर से गिनती की, कि हो सकता है, उनकी गिनती में भूल हो। लेकिन उस यात्री को पता भी न था। उनकी गिनती में भूल न थी, वे गिनती तो ठीक ही जानते थे। भूल यहां थी कि कोई भी अपनी गिनती नहीं करता था। उन्होंने बहुत बार गिना, फिर भी वे नौ ही थे। और तब उनमें से एक भिक्षु नदी के किनारे गया। उसने नदी में झांककर देखा। एक चट्टान के पास पानी थिर था। उसको अपनी ही परछाईं नीचे पानी में दिखाई पड़ी। वह चिल्लाया, उसने अपने मित्रों को कहा; आओ, जिसे हम खोजते थे, वह मौजूद है। दसवां साथी मिल गया है। लेकिन पानी बहुत गहरा है और उसे हम शायद निकाल न सकेंगे। लेकिन उसका अन्तिम दर्शन तो कर लें। एक-एक व्यक्ति ने उस चट्टान के पास झांककर देखा, नीचे एक भिक्षु मौजूद था। सबकी परछाईं नीचे बनती उन्हें दिखाई पड़ी। तब इतना तो तय हो गया कि इतने डूबे पानी में, वह मर गया है।

वे उसका अन्तिम संस्कार कर रहे थे। तब वह यात्री फिर वापस लौटा, उसने पूछा कि यह चिता किसके लिए जलाई हुई है? यह क्या कर रहे हो? उन नौ ही रोते हुए भिक्षुओं ने कहा, मित्र हमारा मर गया है। देख लिया हमने गहरे पानी में डूबी है उसकी

लाश। निकालना तो सम्भव नहीं है। फिर वह मर भी गया होगा, हम उसका अन्तिम दाह-संस्कार कर रहे हैं।

उस यात्री ने फिर से गिनती की और उनसे कहा, पागलो। एक अर्थ में तुम सबने अपना ही दाह-संस्कार कर लिया है। तुमने जिसे देखा है पानी में, वह तुम्हीं हो। लेकिन पानी में देख सके तुम, लेकिन स्वयं में न देख सके। प्रतिबिम्ब को पकड़ सके जल में, लेकिन खुद पर तुम्हारी दृष्टि न जा सकी। तुमने अपना ही दाह-संस्कार कर लिया। और दसों ने मिलकर उस दसवें को दफना दिया है, जो खोया ही नहीं था!

उसकी इस बात के कहते ही उन्हें स्मरण आया कि दसवां तो मैं ही हूं। हर आदमी को ख्याल आया, कि वह दसवां आदमी तो मैं ही हूं। और जिस सत्य की खोज वे पहाड़ों पर नहीं कर सकते थे, अपने ही गांव लौटकर वह खोज पूरी हो गई। वे दसों ही जागृत होकर, जानकर, गांव वापस लौट आए थे।

उन दस भिक्षुओं की कथा ही हम सभी की कथा है। एक को भर हम छोड़ जाते हैं—स्वयं को। और सब तरफ हमारी दृष्टि जाती है—शास्त्रों में खोजते हैं, शब्दों में खोजते हैं, शास्ताओं के वचनों में खोजते हैं, पहाड़ों पर, पर्वतों पर खोजते हैं; सेवा में, समाज सेवा में; प्रार्थना में, पूजा में खोजते हैं। सिर्फ एक व्यक्ति भर इस खोज से वंचित रह जाता है—वह दसवां आदमी वंचित रह जाता है, जो कि हम स्वयं हैं।

स्वतंत्रता का अर्थ है—इस स्वयं को जानने से जो जीवन उपलब्ध होता है, उसका नाम स्वतंत्रता है। स्वतंत्र होना इस जगत में सबसे दुर्लभ बात है। स्वतंत्र वही हो सकता है, जो स्वयं को जानता हो। अन्यथा वह परतंत्र हो सकता है या स्वच्छन्द हो सकता है, लेकिन स्वतंत्र नहीं।

तो जिस स्वतंत्रता की सुबह मैंने बात की है, वह स्वयं को जाने बिना पूरी तरह फलित नहीं हो सकती। लेकिन उस तरफ चलने

के लिए परतंत्रता को तोड़ देना जरूरी है। और स्मरण रखें, जिसके चित्त से परतंत्रता पूरी तरह विलीन हो जाती है, उसके चित्त से स्वच्छन्दता भी अपने आप विलीन हो जाती है। क्योंकि स्वच्छन्दता परतंत्रता की छाया, शेडो से ज्यादा नहीं है।

यह सारे जगत में जो स्वच्छंदता दिखाई पड़ रही है, यह हजारों वर्षों की परतंत्रता का फल है। आपके तथाकथित ऋषियों-मुनियों, साधु-संतों, महात्माओं का इसमें हाथ है। जिनने भी मनुष्य के चित्त को परतंत्र बनाया है, उनने ही मनुष्य को अब मजबूर कर दिया स्वच्छंद होने को। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और मनुष्य को आज तक स्वतंत्र बनाने का कोई प्रयास नहीं हुआ है। तो भय हमारे मन में होता है कि अगर हम स्वतंत्र हुए तो कहीं स्वच्छंद न हो जाएं। स्वतंत्र मनुष्य कभी स्वच्छंद हुआ ही नहीं है। आज तक जमीन पर यह घटना घटी ही नहीं है कि स्वतंत्र चित्त व्यक्ति कभी स्वच्छंद हुआ हो। स्वच्छंद होता है परतंत्र चित्त ही। परतंत्र चित्त जब क्रोध से भर जाता है, तो स्वच्छंद हो जाता है।

हमारे, सभी नयी पीढ़ियों के युवक आज क्रोध से भरे हैं। और इसलिये स्वच्छंद होते जा रहे हैं। इसमें आपका हाथ है—उनकी स्वच्छंदता में। यह हजारों वर्ष की मनुष्य के मन पर लादी गई दासता का हाथ है उसमें। जब तक हम इस सत्य को न समझेंगे, तब तक न तो हम मनुष्य को परतंत्रता से बचा सकते और न स्वच्छंदता से।

एक व्हिसियस सर्किल शुरु होता है। परतंत्र चित्त स्वच्छंद होना चाहता है। स्वच्छंद चित्त को देखकर हम घबड़ाते हैं और परतंत्रता को थोपने को कोशिश करते हैं। जितनी हम परतंत्रता थोपते हैं, उतनी स्वच्छंदता प्रतिक्रिया में पैदा होती है। जितनी स्वच्छंदता पैदा होती है, उतने हम भयभीत हो जाते हैं और परतंत्रता के नए आयोजन करते हैं। ऐसा एक दुष्ट-चक्र हजारों वर्ष से मनुष्य के ऊपर चल रहा है। अब यह शायद अंतिम घड़ी में पहुंच गया है। शायद

परतंत्रता इतनी गहरी हो गई है कि उसके परिणाम में आदमी अब सब भांति स्वच्छंद हो जाना चाहता है।

चित्त को हम जितना दबाते हैं, उतनी उसकी प्रतिक्रियाएं, उसके रिएक्शंस होने शुरु होते हैं।

एक फकीर था नसरुद्दीन। एक सांझ अपने घर से निकलता था। किन्हीं दो-तीन मित्रों के घर उसे मिलने जाना था। निकला ही था घर से कि उसका एक मित्र जलाल, दूर गांव से द्वार पर आकर उपस्थित हो गया। नसरुद्दीन ने कहा, तुम घर में ठहरो, मैं जरूरी काम से दो-तीन मित्रों को मिलने जाता हूं, लौटकर फिर तुम्हारी सेवा सत्कार कर सकूंगा। और तुम चाहो, थके न हो, तो मेरे साथ तुम भी चल सकते हो।

जलाल ने कहा, मेरे कपड़े सब धूल-धूसरित हो गए रास्ते में। पसीने से मैं लथपथ हूं। अगर तुम कपड़े मुझे दूसरे दे दो, तो मैं तुम्हारे साथ चलूं। यहाँ बैठकर मैं क्या करुंगा? अच्छा होगा, तुम्हारे मित्रों से मिलना हो सकेगा।

नसरुद्दीन ने अपने बहुमूल्य जो कपड़े उसके पास श्रेष्ठतम थे, उसे दिये और वे दोनों मित्र गए। पहले घर में पहुंचे। नसरुद्दीन ने वहां कहा, ये हैं मेरे मित्र जलाल, इनसे आपका परिचय करा दूं। रहे कपड़े, कपड़े मेरे हैं। मित्र बहुत हैरान हुआ। इस सत्य को कहने की कोई भी जरूरत न थी। और यह क्या बेहूदी बात थी कि उसने कहा कि ये हैं मेरे मित्र जलाल और रहे कपड़े, कपड़े मेरे हैं। बाहर निकलते ही जलाल ने कहा, पागल तो नहीं हो तुम? कपड़ों की बात उठाने की क्या जरुरत थी? अब देखो, दूसरे घर में कपड़ों की कोई बात मत उठाना।

दूसरे घर में वे पहुंचे। नसरुद्दीन ने कहा, इनसे परिचय करा दूं। ये हैं मेरे पुराने मित्र जलाल, रही कपड़ों की बात, सो इनके ही हैं, मेरे नहीं हैं। जलाल हैरान हुआ। बाहर निकलकर उसने कहा,

तुम्हें हो क्या गया है ? इस बात को उठाने की कोई भी जरुरत क्या थी ?

नसरुद्दीन ने कहा, मैं मुश्किल में पड़ गया। वह पहली बात मेरे मन में गूंजती रह गई, उसका रिएक्शन हो गया, उसकी प्रतिक्रिया हो गई। सोचा कि गलती हो गई—मैंने कहा कि कपड़े मेरे हैं, तो मैंने कहा, सुधार कर लूं, कह दूं कि कपड़े इन्हीं के हैं। उसके मित्र ने कहा, अब इसकी बात ही न उठे। यह बात खतम हो जानी चाहिए।

वे तीसरे मित्र के घर में पहुंचे। नसरुद्दीन ने कहा, ये हैं मैं मरे मित्र जलाल। रही कपड़ों की बात, सो उठाना उचित नहीं है। अपने मित्र से पूछा ठीक है न, कपड़ों की बात उठानी बिल्कुल उचित नहीं है। कपड़े किसी के भी हों—क्या लेना-देना—मेरे हों, कि इनके हों। कपड़ों की बात उठानी उचित ही नहीं है। बाहर निकलकर उसके मित्र ने कहा, अब मैं तुम्हारे साथ और नहीं जा सकूंगा। मैं हैरान हूं, तुम्हें हो क्या रहा है !

उस नसरुद्दीन ने कहा, मैं अपने ही जाल में फंस गया हूं। मेरे भीतर—जो मैं कर बैठा, उसकी प्रतिक्रियाएं हुई चली जा रही हैं। मैंने सोचा कि ये दोनों बातें भूल हो गईं, कि मैंने अपना कहा और तुम्हारा कहा। तो फिर मैंने कहा, अब मुझे कुछ भी नहीं कहना चाहिए, यही सोचकर भीतर गया था। लेकिन बार-बार यह होने लगा कि यह कपड़ों की चर्चा उठानी बिल्कुल नहीं है। और उन दोनों की प्रतिक्रिया यह हुई कि मेरे मुंह से यह निकल गया और जब निकल गया, तो समझना जरूरी हो गया कि कपड़े किसी के भी हों, क्या लेना-देना।

यह जो नसरुद्दीन जिस मुसीबत में फंस गया होगा बेचारा-पूरी मनुष्य जाति ऐसी मुसीबत में फंसी है। एक सिलसिला, एक गलत सिलसिला शुरू हो गया है। और उस सिलसिले के हर कदम पर और गलती बढ़ती चली जाती है। जितना हम उसे सुधारने की कोशिश करते हैं, वह बात उतनी ही उलझती चली जाती है।

स्वच्छंदता के भय से परतन्त्रता थोपते हैं। परतन्त्रता की प्रतिक्रिया में स्वच्छन्दता पैदा होती है। फिर और थोपते हैं, फिर और पैदा होती है। और एक जाल पैदा हो गया है, जिसे अगर हम तोड़ेंगे नहीं, तो मनुष्य जाति इस अपने ही हाथ से बनाए जाल में नष्ट हो सकती है। करीब-करीब नष्ट हो ही गई है। और मनुष्य जाति नष्ट न हुई हो, एक-एक मनुष्य तो जीवित नहीं रह गया है, इस जाल में करीब-करीब मृत हो गया है।

स्वच्छंदता और परतन्त्रता दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अगर यह समझ में आ जाए बात, तो ख्याल में आ सकता है कि स्वतन्त्रता बात ही और है। स्वतन्त्रता विद्रोह नहीं है। स्वतन्त्रता रिबेलियन नहीं है—स्वतन्त्रता एक रिव्यूलूशन है, एक क्रांति है। विद्रोह किसी के खिलाफ होता है। और जिसके खिलाफ हम खड़े होते हैं, उससे बंध जाते हैं। क्योंकि उसका विरोध करना होता है। उसके विरोध के कारण हमारा उससे एक सम्बन्ध हो जाता है, रिलेशनशिप हो जाती है। और उस विरोधी को देखकर हम निरन्तर कदम उठाते हैं।

हिन्दुस्तान में मुसलमान आए और उन्होंने मन्दिर तोड़ने शुरू कर दिए। मन्दिर तोड़ने की वजह से वे मन्दिरों से बन्ध गए—उतने ही जितने कि मन्दिरों को बनाने वाले बंधे हुए थे। वे मन्दिरों से मुक्त न रह सके। मन्दिर उनके प्राण लेने लगे, सपनों में उन्हें सताने लगे। उनका चित्त मन्दिरों पर घूम-घूम कर पहुंचने लगा ...उतना ही जितना कि उनका पहुंचता होगा जो कि मन्दिरों को बनाते हैं, शायद उनसे ज्यादा।

मूर्ति को बनाने वाला मूर्ति को तोड़ने वाला—दोनों मूर्ति के भक्त होते हैं। एक मित्र भक्त होता है, एक शत्रु भक्त होता है। लेकिन दोनों का चित्त वहीं घूमता रहता है। जिससे हम विरोध करते हैं, हम उससे बन्ध जाते हैं। और बन्धने के कारण हम उस विरोधी के ही एक रूपान्तर होते हैं, एक माडीफिकेशन होते हैं।

स्वतन्त्रता विद्रोह नहीं है, क्रांति है।

क्रांति की बात ही अलग है। क्रांति का अर्थ है—दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है। हम किसी के विरोध में स्वतंत्र नहीं हो रहे हैं। क्योंकि विरोध में हम स्वतन्त्रत होंगे तो वह स्वच्छंदता हो जाएगी। हम दूसरे से मुक्त हो रहे हैं—न उससे हमें विरोध है, न हमें उसका अनुगमन है। न हम उसके शत्रु हैं, न हम उसके मित्र हैं—हम उससे मुक्त हो रहे हैं। और यह मुक्ति, "पर" से मुक्ति, जिस ऊर्जा को जन्म देती है, जिस डायमेन्शन को, जिस दिशा को खोल देती है, उसका नाम स्वतन्त्रता है। उस पर हम इधर तीनों रोजों में और अनेक—अनेक कोणों से उसे समझाने की कोशिश करेंगे।

लेकिन एक बात ख्याल में ले लें, स्वतन्त्रता किसी का विरोध नहीं। स्वतन्त्रता कोई प्रतिक्रिया नहीं है, कोई रिएक्शन नहीं है, बल्कि स्वयं के जीवन का अविर्भाव है।

आप मुझसे कहें कि मैं एक गीत गाऊं और मैं गीत गाऊं, तो मैं आपसे बन्धा हूं। आप मुझसे कहें एक गीत गाएं, इसलिए मैं न गाऊं, तो भी मैं आपसे बन्धा हूं। लेकिन गीत आपकी बिना फिक्र किये—आपके कहने की या न कहने की फिक्र किए, मेरे प्राणों से निकले और गूंज उठे, तो मैं स्वतन्त्र हूं।

स्वतन्त्रता मेरे भीतर से आने वाला तत्व है, आपसे आने वाला नहीं। और स्वतन्त्रता में ही हम आत्मा को जानने में समर्थ हो पाते हैं। क्योंकि स्वतन्त्रता सब बाहर के आरोपण, बाहर के आवरण, बाहर की जबरदस्तियां, बाहर की प्रतिक्रियाएं—इन सबके गिर जाने पर उपलब्ध होती है। और उस स्वतन्त्रता की भूमि में ही स्वयं का, निज का क्रमशः दर्शन उपलब्ध होता है।

स्वन्तत्रता के लिए इसलिए मैंने सुबह आपसे बात की है।

उसी सम्बन्ध में एक मित्र ने और पूछा है।

मैंने कहा कि हम सभी शास्त्रों से स्वतन्त्र हो जाएं?

शायद उन्हें लगा होगा कि मैं शास्त्रों का विरोधी हूं। शास्त्र तो इतने व्यर्थ हैं कि उनके विरोध करने की भी कोई जरूरत नहीं। विरोध करने से भी उनको बल मिलता है। विरोध भी हम उसका करते हैं, जिसमें कोई जीवन हो, जान हो। छायाओं का कौन विरोध करेगा, प्रतिध्वनियों का कौन विरोध करेगा?

शास्त्रों का मैं विरोधी नहीं हूं, क्योंकि अगर मैं विरोधी हो जाऊं, तो मैं शास्त्रों का किसी न किसी रूप में प्रचारक हो गया। क्योंकि विरोध भी प्रचार है। और सच्चाई तो यह है कि आज तक दुनिया में हमेशा विरोध ही प्रचार सिद्ध हुआ है।

क्राइस्ट को अगर कुछ नासमझ यहूदियों ने न मारा होता तो शायद क्रिश्चिनिटि कहीं भी न होती। वह विरोध प्रचार बन जाता है।

मैं कोई शास्त्र का विरोधी नहीं हूं। शास्त्र इतनी व्यर्थ चीजें हैं कि उनका विरोध मैं क्यों करूंगा। विरोध ही करना होगा तो और किसी चीज का कर सकता हूं। शास्त्र—बेजान, मुर्दा उनसे क्या विरोध करना है।

जो मैंने कहा, वह इसलिए नहीं कि मैं शास्त्र विरोधी हूं, बल्कि इसलिए कि मैं सत्य का प्रेमी हूं। और सत्य, शब्दों से न कभी मिला है, और न मिल सकता है। वे शब्द चाहे वेद के हों, चाहे गीता के, चाहे बाइबिल के, चाहे मेरे, चाहे किसी और के। शब्दों से कभी कोई सत्य उपलब्ध नहीं हो सकता है। सत्य तो वहां उपलब्ध होता है, जहां चित्त निःशब्द हो जाता है। जहां चित्त में कोई शब्द नहीं रह जाते।

तो सभी शास्त्र शब्द हैं। और शब्दों को अगर हम आग्रह से पकड़ेंगे, तो हम निःशब्द कभी भी न हो सकेंगे, हम मौन कभी भी न हो सकेंगे। हमारे भीतर से सारे शब्दों की गूंज, अनुगूंज कभी समाप्त न हो सकेगी। गीता गूंजती ही रहेगी, वेद गूंजते ही रहेंगे, उपनिषद् गूंजते ही रहेंगे। और ये जो प्रतिध्वनियां हैं, हमारे चित्त में, ये कभी

हमें उस शून्य को उपलब्ध न होने देंगी, जहां सत्य का साक्षात् हो सकता है।

शास्त्रों को पकड़ लेने वाला चित्त फोटोग्राफ की तरह है। कोई कैमरे से आपका चित्र उतार लेता है, तो भीतर जो फिल्म है, वह पकड़ लेती है उस चित्र को। पकड़ते ही से व्यर्थ हो जाती है, फिर उसका कोई और उपयोग नहीं रह जाता। दर्पण पर भी आपका चित्र बनता है, लेकिन दर्पण पकड़ता नहीं है। इसलिए आप हट जाते हैं, दर्पण फिर खाली और मौन हो जाता है। इसलिए दर्पण निरन्तर उपयोगी बना रहता है। दर्पण निरन्तर जीवित बना रहता है। फोटोग्राफ एक दफे में खतम हो जाता है। और अगर एक ही फोटोग्राफ पर हम कई चित्र ले लें, तब तो फिर समझना ही मुश्किल हो जाता है कि वहां क्या है।

हमारे चित्त ने बहुत से शास्त्रों को फोटोग्राफ की तरह पकड़ लिया है, इसलिए समझना मुश्किल हो गया है कि भीतर क्या है। सब पकड़ लिए गए हैं। और उनकी गूंज की वजह से भीतर जो छिपा है, उसका कोई अनुभव, उसकी कोई प्रतीति नहीं हो पाती है। मैंने यह नहीं कहा कि आप शास्त्र न पढ़ें। मैंने यह नहीं कहा कि आप शास्त्र न समझें। मैंने यह कहा कि आप दर्पण की तरह हों। उनकी कोई रेखा, उनके कोई शब्द, उनकी कोई गूंज आपके ऊपर न छूट जाएं। आप दर्पण की तरह, मिरर की तरफ हमेशा खाली हो जाएं। तो जीवन को जानने की क्षमता आपकी निरन्तर कायम रहेगी। अन्यथा आप शब्दों में जकड़ जाएंगे और जीवन को जानने से वंचित रह जायेंगे।

शब्द छाया से ज्यादा नहीं है। अगर मैं रास्ते पर चल रहा हूं, और अगर आप मेरी छाया में ही उलझ जाएं, तो निश्चित है कि आप फिर मुझे नहीं देख सकेंगे। मेरी छाया पर ही आपकी आंख होगी, तो मुझ पर कैसे आंख हो सकती है? मेरी छाया को आप छोड़ेंगे तो शायद मुझे आप देख सकेंगे। और मुझे देख सकेंगे,

उस दिन आप पायेंगे छाया तो थी ही नहीं, मैं था। छाया तो छाया ही थी, शेडो ही थी, उसमें कोई सबस्टेंस न था।

सभी शास्त्र-जिन लोगों को सत्य अनुभव हुआ, उनकी छाया से ज्यादा नहीं है। उन छायाओं को पकड़ लेंगे आप, तो वंचित रह जायेंगे हम सबस्टेंस से। वंचित रह जायेंगे उससे, जिसकी छाया बने। सत्य के अनुभव की छाया की शब्दों में गूंज रह जाती है। हम उन्हीं को पकड़कर बैठ जाते हैं। जो शास्त्र को पकड़ लेता है, वह सत्य का शत्रु हो जाता है। इसलिए मैंने कहा, शास्त्र से मुक्त हो जायें, छाया से मुक्त हो जायें।

कृष्ण ने जो जाना होगा, गीता शायद उसकी छाया है, शेडो है। वही तो नहीं है, जो कृष्ण ने जाना था। उसे तो प्राणों से निकालकर बाहर लाने का कोई उपाय नहीं है। जो जाना था, शब्दों में छाया की तरह गूंज गया। और फिर हजारों वर्षों में यह छाया भी खूब विकृत होती चली गई। क्योंकि इन हजारों वर्षों में, हजारों टीकाकार इस छाया के उपलब्ध हो गये।

टीकाकार शास्त्रों की हत्या करने में ऐसे कुशल लोग हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं है। छाया पर और टीकाकारों की छायायें सम्मिलित हो गई। टीकाकारों पर और भी उनके टीकाकार पैदा हुए। अब हमारे एक-एक हाथ में—एक छायाओं का स्वप्नजाल हाथ में रह गया। उसी को पकड़कर जो रुक जाएगा, वह सत्य तक नहीं पहुंच सकता। छाया छोड़नी पड़ेगी और उस दिशा में खोज करनी पड़ेगी, जहां से छाया आती है, जहां से छाया बनती है। अगर हम छाया को छोड़ते चले जाएं उस दिशा में, जहाँ से छाया का जन्म होता है—तो शायद हम सत्य पर पहुंच जाएं। शास्त्र को पकड़कर कोई सत्य पर नहीं पहुंचेगा। शास्त्र को जितना छोड़ेगा, उतना शास्त्र के पीछे हटेगा। जो शब्द को छोड़ेगा, निःशब्द की तरफ बढ़ेगा—किसी दिन उसे सत्य उपलब्ध हो सकता है।

शास्त्रों से ज्यादा सत्य के मार्ग में और कोई बाधा नहीं है। लेकिन हमें बड़ी चोट पहुंचती है। सुबह एक मित्र ने आकर कहा, वेद आप कहते हैं सत्य नहीं हैं? उन्हें पीड़ा पहुंची होगी। इसलिए नहीं कि वेद सत्य नहीं है। बल्कि इसलिए कि वेद उनका शास्त्र है।

एक मुसलमान को कोई चोट न पहुंचेगी इस बात से कि वेद में कुछ भी नहीं है। क्योंकि वेद उसका शास्त्र नहीं है। एक हिन्दू को कोई चोट न पहुंचेगी यदि कह दिया जाय कि कुरान में कोई सत्य नहीं है। वह प्रसन्न होगा बल्कि कि बहुत अच्छा हुआ कि कुरान में कोई सत्य नहीं, यह तो हम पहले से ही कहते थे। यह तो प्रसन्नता की बात है। लेकिन एक मुसलमान को चोट पहुंचेगी। क्यों? क्या इसलिए कि कुरान में सत्य नहीं है? बल्कि इसलिए कि कुरान उसका शास्त्र है।

शास्त्रों के साथ हमारे अहंकार जुड़ गए हैं, हमारे इगो जुड़ गए हैं। मेरा शास्त्र! शास्त्र की कोई फिक्र नहीं, मेरे को चोट पहुंचती हैं।

और बड़ा मजा यह है कि वेद आपका शास्त्र कैसे हो गया? क्योंकि आप एक समूह में पैदा हुए, जहां बचपन से एक प्रपोगंडा चल रहा है कि वेद आपका शास्त्र है। अगर आप दूसरे समूह में पैदा होते, और वहां प्रपोगंडा चलता होता कि कुरान आपका शास्त्र है, तो आप कुरान को शास्त्र मान लेते। आप किसी तरह के प्रचार के शिकार हैं। हम सभी किसी तरह के प्रचार के शिकार हैं। अगर हिन्दू घर में पैदा हुए हैं तो एक तरह के प्रपोगेंडिस्ट हवा में हमको बनाया गया है। जैन घर में पैदा हुए, दूसरी तरह की; ईसाई घर में तीसरी तरह की—रूस में पैदा हो जाएं तो एक चौथे तरह की हवा में आपका निर्माण होगा। और आप यही समझेंगे कि यह जो प्रचार ने आपको सिखा दिया, यह आपका है।

जब तक आप यह समझते रहेंगे कि प्रचार जो सिखाता है, वह आपका है, तब तक आप शास्त्रों से मुक्त नहीं हो सकते। और

जो आदमी प्रपोगंडा और प्रचार से मुक्त नहीं होता, वह कभी सत्य को उपलब्ध नहीं हो सकता है। और प्रचार के सूत्र एक जैसे हैं—चाहे लक्स टॉयलेट साबुन बेचनी हो, चाहे कुरान, दोनों में कोई फर्क नहीं है। एडवरटाइजमेंट का रास्ता एक ही है, प्रपोगंडा का रास्ता और सूत्र एक ही है।

धर्मगुरु बहुत चालाक लोग थे, उन्हें ये सूत्र पहले पता चल गए, व्यापारियों को बहुत बाद में पता चले। रेडियो पर रोज दोहराया जाता है, कि सुन्दर चेहरा बनाना हो, तो फलां-फलां अभिनेत्री लक्स टॉयलेट का उपयोग करती है। अभिनेत्री के चेहरे में, और लक्स टॉयलेट में एक सम्बन्ध जोड़ने की कोशिश की जाती है।

अगर सत्य को पाना हो तो फलां-फलां ऋषि रामायण को पढ़कर सत्य पा गए। ऋषि में और रामायण में सत्य जोड़ने की कोशिश की जाती है। यह वही कोशिश है, जो अभिनेत्री और लक्स टॉयलेट में की जाती है। अगर सुन्दर होना हो तो लक्स टॉयलेट खरीद लीजिए। और अगर सत्य पाना हो तो फलां-फलां ऋषि ने, फलां-फलां किताब से पाया—आप भी उस किताब को खरीद लीजिए! उसके भक्त हो जाइये!

फिर रोज-रोज दोहराने से—आदमी का चित्त इतना कमजोर है कि रिपिटीशन को वह भूल जाता है कि यह क्या हो रहा है, रोज-रोज दोहराया जाता है। आपको पता भी नहीं है। रास्ते पर निकलते हैं लक्स टॉयलेट सबसे अच्छा साबुन है, दरवाजे पर लिखा हुआ है। अखबार खोलते हैं, लक्स टॉयलेट सबसे अच्छा साबुन है। रेडियो चलाते हैं, लक्स टॉयलेट सबसे अच्छा साबुन है। रोज-रोज सुनते, जब एक दिन आप बाजार में जाते हैं दुकान पर साबुन खरीदने को, आप कहते हैं मुझे लक्स टॉयलेट साबुन चाहिए। और आपको पता नहीं कि यह आप नहीं कह रहे हैं, आपसे कहलवाया जा रहा है। आपको लक्स टॉयलेट का पता भी नहीं था।

एक प्रपोगंडा आपके चारों तरफ हो रहा है और आपके मुंह में, आपके कान में आवाज डाली जा रही है बार-बार, जो कि एक दिन आपके मुंह से निकलनी शुरू हो जाएगी और आप इस भ्रम में होंगे कि मैंने लक्स टॉयलेट साबुन खरीदा। आपसे खरीदवा लिया गया है।

और जो लक्स टॉयलेट के सम्बन्ध में सही है वही कुरान, बाइबिल, वेद, उपनिषद के सम्बन्ध में भी सही है। हम अद्भुत रूप से प्रचार के शिकार हैं। सारी मनुष्य जाति शिकार है। और इस प्रचार में जितना आदमी बंध जाता है, उतना परतन्त्र हो जाता है।

तो मैं शास्त्रों का विरोधी नहीं हूं, लेकिन यह आपको कह देना चाहता हूं कि आपको भी शास्त्रों से कोई मतलब नहीं है। आप सिर्फ प्रचार के शिकार हो गए हैं, और कुछ भी नहीं है।

आपके घर में, हिन्दू घर में एक बच्चा पैदा हो, उसको मुसलमान के घर में रख दीजिए। वह बड़े होने पर वेद को ईश्वरीय वाणी नहीं कहेगा, हालांकि हिन्दू घर में पैदा था, खून हिन्दू था। सच तो यह है कि ये पागलपन की बातें हैं। खून भी कहीं हिन्दू होता है; कि हड्डियां हिन्दू होती हैं, मुसलमान होती हैं? हिन्दू होना भी एक प्रचार है। वह मुसलमान घर में रखा गया, मुसलमान हो जाएगा। ईसाई घर में रखा गया, ईसाई हो जाएगा।

इसलिए सभी धर्मगुरु बच्चों में बहुत उत्सुक होते हैं। स्कूल खोलते हैं, धर्म-स्कूल खोलते हैं, क्योंकि बच्चे मौका हैं, जहां प्रचार को दिमाग में डाला जा सकता है, और जीवन भर के लिए उन्हें गुलाम बनाया जा सकता है। जब तक जमीन पर एक भी ऐसा स्कूल है, जो धर्म की शिक्षा देता है, तब तक जमीन पर बहुत बड़े पाप चलते रहेंगे क्योंकि बच्चों को जकड़ने की, गुलाम बनाने की वहां सारी योजना की जा रही है।

तो मैंने जो कहा, इसलिए नहीं कहा कि किन्हीं किताबों से मुझे कोई दुश्मनी है, मुझे किताबों से क्या लेना-देना। लेकिन

सच्चाईयां तो समझ लेनी जरूरी हैं।

उन्हीं मित्र ने, एक और मित्र ने पूछा है, कि हमारे संत-महात्मा, ऋषि-मुनि जो कहते हैं, क्या वह सब गलत है?

मैंने तो नहीं कहा कि वह सब गलत है। मैंने तो इतना ही कहा कि आप उसे पकड़ लें, तो यह पकड़ लेना गलत है। ऋषि-मुनियों से मुझे कोई वास्ता नहीं। क्योंकि ऋषि-मुनि बड़े खतरनाक होते हैं, उनसे वास्ता रखना खतरनाक है। अभी हिन्दुस्तान में ऋषि-मुनि और शंकराचार्य हाईकोर्टों में मुकदमा लड़ते हैं। उनसे दोस्ती रखना, उनकी बात ही करना खतरनाक है।

लेकिन आप किसको ऋषि कहने लगते हैं, किसको मुनि कहने लगते हैं, और कैसे? और कैसे आप पता लगा लेते हैं? आपके पास जांच क्या है? आपके पास माप-दंड क्या है? आपके पास कसौटी क्या है कि फलां आदमी ऋषि है और मुनि है? सिवाय प्रपोगंडा के और तो कोई कसौटी नहीं मालूम पड़ती।

रामकृष्ण को हिन्दू तो कहेंगे कि परमहंस हैं। लेकिन किसी जैन से पूछें? वे कहेंगे, कैसे परमहंस, मछली खाते हैं! उसकी कसौटी में बिल्कुल न उतरेंगे। वे कहेंगे, इनसे तो एक साधारण जैनी अच्छा, कम से कम मछली तो नहीं खाता, मांसाहार तो नहीं करता। ये कैसे संत! ये किस प्रकार के संत हैं?

अगर एक दिगम्बर जैन से पूछो कि क्राइस्ट ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं। वे कहेंगे कैसे उपलब्ध हो गए हैं? महावीर तो नग्न खड़े हुए हैं, यह आदमी तो कपड़े पहने हुए है! तो कपड़े पहने हुए आदमी भी कहीं ज्ञान को उपलब्ध हो सकता है। झूठी है यह बात। यह नहीं हो सकता।

कसौटियां भी हमारे हजारों साल के प्रचार से निर्मित हो गई हैं। और जिसको बचपन से जो कसौटी पकड़ गई है, वह उसी पर

८

तौल रहा है कि कौन ऋषि है, कौन मुनि है ! अपना हमें पता नहीं कि हम क्या हैं ! और हम यह भी तय कर लेते हैं कि कौन ऋषि है, कौन मुनि है, कौन परमहंस है, कौन ज्ञानी है ! और झगड़ते भी हैं इस बात पर कि फलां आदमी तीर्थंकर है, और फलां आदमी भगवान का अवतार है, फलां आदमी ईश्वर का पुत्र है ! और अगर कोई इन्कार कर दे, तो यह झगड़े की बात है ! कैसे आप पता लगा लेते हैं, किसने आपको बताया ?

मेरे एक मित्र थे। एक छोटे-मोटे महात्मा थे वे भी। ऐसे महात्मा हमारे यहां होते ही हैं। वे एक गांव में चंदा मांगने गए थे। मैं भी उस गांव में था। उन्होंने चंदा दिन भर मांगा, वे कोई पन्द्रह-बीस रुपये मुश्किल से इकट्ठा कर पाए। वे मुझसे बोले कि इससे ज्यादा तो कुछ होता नहीं। मैंने कहा, आप बिलकुल गलत ढंग से चंदा वसूल करते हैं—आपको कौन चंदा देगा ? पहले ऋषि-मुनि हो जाइए, फिर चंदा मिल सकता है।

मैंने उनसे कहा, दस-पन्द्रह लोगों को पहले कहिये कि एक महात्मा जी आए हुए हैं। सारे गांव में खबर करिए कि महात्मा जी आए हैं। फिर दस-पच्चीस लोग आपके साथ जाएं कि महात्मा जी आए हैं, फिर चन्दा हो सकता है।

उनको बात समझ में आ गई। उनके दस-पन्द्रह लोगों ने गांव में प्रचार किया कि एक बहुत बड़े महात्मा आए हुए हैं। जिन दुकानों पर उनको चार आने बामुश्किल से दुकानदार ने दिए थे, इसलिए ताकि वे यहां से हटें, उसी दुकान पर उनको बहुत रुपये भी मिले, उनके पैर भी छुए, उनके गले में माला भी डाली ! वे तो...उन्होंने दो-चार-आठ दिन में वहां सैकड़ों रुपये इकट्ठे किए।

तो मैंने उनसे कहा, आदमी को रुपये नहीं मिलते, ऋषि-मुनि को मिलते हैं। और वह प्रपोगंडा के बिना तैयार नहीं होता, उसको तैयार करना पड़ता है। उसकी हवा फैलानी पड़ती है, उसका प्रचार करना

पड़ता है कि ये महात्मा हैं, परम-ज्ञानी हैं; यह हैं, वह हैं। और जैसे लक्स टॉय लेट को बताना पड़ता है, वैसे उसको बताना पड़ता है।

प्रचार के इस खेल को, इस जाल को—समझदार आदमी को अपने चित्त से तोड़ देना चाहिए।

मार्क ट्वेन ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं एक बहुत बड़े नगर में बोलने गया। कुछ मित्रों से गपशप करने में सांझ हो गई, बोलने का वक्त करीब आ गया और मैं उस दिन भूल ही गया दाढ़ी बनाना। तो मैं एक नाईबाड़े में गया। नाई दुकान बंद ही कर रहा था। मैंने उससे कहा कि भाई एक-दो क्षण रुक जाओ, मेरी दाढ़ी बना दो। उसने कहा, क्षमा करिए, मैं मार्क ट्वेन का भाषण सुनने जा रहा हूं। और मेरे मन में इतना आदर है उस व्यक्ति के लिए कि अब मैं एक क्षण भी नहीं रुक सकता। अगर वहाँ देर से पहुंचा तो शायद हाल के बाहर ही खड़ा रहना पड़े, या भीतर भी घुस जाऊं तो खड़ा रहना पड़े। मैं जल्दी ही जाना चाहता हूं। आप क्षमा करें, आप कहीं और बाल बनवा लें।

मार्क ट्वेन ने कहा, ठीक ही कहते हो, यह "मार्क ट्वेन का बच्चा" जहां भी भाषण करता है, वहां जो लोग देर से पहुंचते हैं, उनको तो खड़ा रहना ही पड़ता है, लेकिन मुझे हमेशा ही खड़ा रहना पड़ता है। "मार्क ट्वेन का बच्चा", मार्क ट्वेन ने कहा तो उस नाई को गुस्सा आ गया। उसने कालर पकड़ लिया और कहा सम्हलकर बोलो, मार्क ट्वेन का मैं बहुत आदर करता हूं, इस तरह नहीं बोल सकते हो।

मार्क ट्वेन ने लिखा है—कि मैं खुद ही मार्क ट्वेन हूं, वह मेरा गला पकड़ लिया। लेकिन मार्क ट्वेन और ही बात है उसके मन में। वह एक प्रपोगंडा और है, उससे इस आदमी का क्या संबंध ?

जिन ऋषि-मुनियों की आप रोज पूजा करते हैं—आरती, वे अगर सड़क पर मिल जाएं, तो दो पैसा भी, शायद ही आप उनको दें। बल्कि हो सकता है, पुलिस में रिपोर्ट करवा दें कि यह आदमी धोखा

दे रहा है। जिसकी हम पूजा करते हैं, वह आदमी कहीं सड़क पर भीख मांग सकता है। यह धोखेबाज है कोई। एक प्रपोगंडा होता है, एक हवा होती है।

चर्चिल ने लिखा है कि मैं एक दफा रेडियो से बोलने को था। एक स्टेशन पर उतरा। एक टैक्सी-ड्राइवर को कहा कि जल्दी मुझे रेडियो स्टेशन पर पहुंचा दो। उसने कहा, माफ करिये, मेरा प्यारा नेता चर्चिल आज रेडियो से बोलने को है। मैं अपने घर जा रहा हूं, रेडियो पर उसका भाषण सुनूंगा, आप कहीं और कोई टैक्सी कर लें।

चर्चिल बहुत खुश हुआ। इतना आदर एक टैक्सी-ड्राइवर भी इसका करता है। उसने खीसे में हाथ डाला, पांच पौंड के नोट निकालकर टैक्सी ड्राइवर के हाथ में दिये—इनाम के तौर, कि यह मेरा इतना आदर करता है। टैक्सी ड्राइवर ने कहा, भाड़ में जाय चर्चिल! मालिक तुम पीछे बैठो और जहां चलना हो चलो।

चर्चिल को ख्याल भी न था कि पांच पौंड देने का यह फल होगा। चर्चिल से क्या लेना-देना है? चर्चिल का इमेज बना हुआ है, वह अलग ही है। इस आदमी से क्या मतलब?

प्रचार प्रतिमायें खड़ी कर देते हैं और फिर हम उनको हजारों साल तक पूजते रहते हैं। और जितना प्रचार लम्बा होता जाता है, उतनी ही वे प्रतिमाएं दुर्गम हो जाती हैं, आकाश पर उठने लगती हैं। फिर वह आदमी नहीं रह जाते, धीरे-धीरे परमात्मा हो जाते हैं; भगवान अवतार हो जाते हैं, और न मालूम क्या। और उनके इतने पागल भक्त पीछे होते हैं कि कोई शक करे, तो जिन्दगी खतरे में डाले। तो कौन कहे?

लेकिन बड़ी हैरानी है कि कभी हम सोचते भी नहीं कि हम निर्णायक कैसे हो जाते हैं कि कौन संत, कौन साधु। और फिर एक सरकुलर रीजनिंग शुरू होती है। मैं कुछ कहूंगा तो आप कहेंगे, यह तो हमारे साधुओं ने नहीं कहा, तो यह ठीक नहीं हो सकता। और अगर मैं पूछूं कि इनको आप साधु क्यों कहते हैं, तो आप कहेंगे, जो

उन्होंने कहा, वह बिल्कुल ठीक है, इसलिए हम उनको साधु कहते हैं। साधु उनको इसलिए कहते हैं कि जो उन्होंने कहा, वह बिल्कुल ठीक है? और जो उन्होंने कहा, वह बिल्कुल ठीक होना ही चाहिए, क्योंकि वह साधु है? इस सारे चक्कर में आदमी का मन अत्यन्त मूढ़तापूर्ण हो गया है।

मैंने जो सुबह आपसे कहा, वह इसलिए कहा कि चित्त की इस पूरी स्थिति पर सोचिए, विचार करिये कि हमारा चित्त क्या कर रहा है। हम कहीं प्रचार के शिकार तो नहीं हैं। हजारों वर्ष से चलने वाली, बार-बार दोहराई जाने वाली बातों के हम केवल गुलाम तो नहीं हैं। हमने भी कभी कुछ सोचा है, खोजा है, विचारा है—कोई कण भी हमारे अपने चिन्तन का फल है, या कि हम केवल दोहराने वाले लोग हैं?

जब तक हम इस भांति दोहराने वाले लोग रहेंगे, तब तक कुछ कनिंग माइंड्स, कुछ चालाक लोग हमारा शोषण करते ही रहेंगे। उन्होंने तरकीब पा ली है—वे दोहराने का उपाय जानते हैं। वे दोहराते हैं तरकीब से, प्रचार करते हैं और हम उसमें जकड़ जाते हैं। आदमी को इस चुकता प्रचार के बाहर हो जाना चाहिए, तो ही वह आदमी धार्मिक हो सकता है। क्योंकि धार्मिक आदमी चिन्तन करता है, सोचता है, अनुभव करता है—अन्धे होकर मान नहीं लेता है। और हम सब अन्धे हैं। हमने अन्धे होकर सब बातें मान ली हैं।

इस निरन्तर मानने का यह फल हुआ है कि हमारे भीतर जानने की, जिज्ञासा की हत्या हो गई। क्योंकि जानना तो तभी शुरू हो सकता है, जब हम मानने पर थोड़ा शक करें, संदेह करें, मानने को इन्कार करें। कह दें अपने मन से कि हम नहीं मानेंगे—हम जानना चाहते हैं, हम खोजना चाहते हैं। अगर इतना बल और हिम्मत दिखाएं तो शायद किसी दिन आप भी जान सकें, अन्यथा नहीं जान सकते। और एक आदमी इस जाल में होता तो कोई कठिनाई भी न थी। पूरे मनुष्य का मन इस जाल में ग्रसित है और यह

जाल हटता नहीं, क्योंकि जाल के ठेकेदार और दावेदार बड़े फायदे में हैं। इस जाल की वजह से, उनका बड़ा हित है, बड़ी उन्हें सुविधा है और उन्होंने हजारों वर्ष की जो दुकान लगा ली, उसकी बड़ी क्रेडिट है, उसका वे पूरा फायदा ले रहे हैं। तो कौन इसे तोड़ेगा ?

और नहीं यह टूटेगा, तो आदमी जैसा अब तक जिया है गुलाम, आगे भी उसे गुलाम ही जीना पड़ेगा। अब तक बहुत खतरा न था इस गुलामी से। अब खतरे बहुत बढ़ गये हैं, क्योंकि व्यापारियों को भी पता चल गया, राजनीतिज्ञों को भी पता चल गया कि आदमी को फंसाने के बड़े आसान रास्ते हैं। अब वे सब यही उपयोग कर रहे हैं।

हिटलर ने अपनी आत्मकथा में स्पष्ट ही लिखा है कि मैंने बहुत दिनों के अनुभव से यह जाना कि सत्य और असत्य में एक ही फर्क है। जो असत्य बहुत बार जनता के सामने दोहराया जाता है, वह सत्य हो जाता है। बस बार-बार दोहराने का सवाल है। फिक्र न करो, दोहराए चले जाओ। धीरे-धीरे मन भूल जाएगा कि यह बात सच थी। बार-बार सुनने से, परिचित होने से, खुद ही भूल जाएगा। यहां तक होता है कि जो आदमी खुद प्रचार करता है, जब बात बहुत प्रचारित हो जाती है तो वह खुद शक में आ जाता है कि कहीं यह सच तो नहीं है।

ऐसा मैंने सुना है, एक दफे ऐसी घटना हो गई।

एक आदमी जो कि एक बहुत बड़ा विज्ञापन सलाहकार था। एक्सर्ट था एडवरटाइजमेंट का, वह मरा। वह स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा। ईसाइयों का स्वर्ग रहा होगा। सेंट पीटर वहां दरवाजे पर होते हैं। तो सेंट पीटर ने कहा, महाशय तुम हो कौन ? उसने कहा, मैं एक विज्ञापन का विशेषज्ञ हूं। सेंट पीटर ने कहा, विज्ञापन वालों का कोटा स्वर्ग का पूरा हो गया, पच्चीस आदमियों से ज्यादा हम नहीं लेते। तो आपको दूसरी जगह जाना पड़ेगा। वह दूसरी जगह यानी नरक। पच्चीस हो गए।

उस विज्ञापनदाता ने कहा कि सेंट पीटर, तुम्हारे हम अखबारों में फोटो छपवा देंगे, कोई रास्ता नहीं हो सकता, कोई उपाय नहीं हो सकता कि मैं इसी जगह आ जाऊं ? सेंट पीटर ने कहा कि फोटो बड़े छपवाने पड़ेंगे, ठीक से। रास्ता बन सकता है। चौबीस घंटे का मैं तुम्हें मौका देता हूं। तुम पच्चीस विज्ञापनदाताओं में से किसी एक को राजी कर लो कि तुम्हारी जगह वहां चला जाय, तुम यहां आ जाओ।

उसने कहा, चौबीस घंटे। चौबीस घंटे बहुत है। वह आदमी भीतर गया। उसने जाकर पूरे स्वर्ग में अफवाह उड़ानी शुरू की कि नरक में एक बहुत नया अखबार निकल रहा है, उसके लिए बहुत अच्छे विज्ञापन एक्सपर्ट्स की जरूरत है। शैतान ने एक बहुत ही बड़ी एजेन्सी खोली हुई है, विज्ञापन की। सब जगह उसने अफवाह उड़ा दी। दूसरे दिन चौबीस घंटे पूरे होने पर वह सेंटपीटर के पास गया। उसने कहा कि भाई कुछ हुआ ? उसने कहा, क्या आश्चर्य कर दिया ! तुमने तो हैरानी कर दी। पच्चीस ही चले गए।

वह आदमी बोला, पच्चीस ही चले गए। उसने कहा, माफ करो, मैं भी जाता हूं, क्योंकि अफवाहों का कोई भरोसा नहीं, सच भी हो सकती है बात। जब पच्चीस चले गए, तो मैं भी अब जाता हूं, मैं भी यहां नहीं रह सकता हूं।

कमजोर है हमारा मन। बार-बार दोहराने से—खुद भी आदमी झूठ को बार-बार दोहराये, कुछ दिनों में वह खुद ही भूल जाता है कि मैंने झूठ की तरह इसकी यात्रा शुरू की थी। वह सच हो जाता है। मनुष्य के सामने हजारों सत्य इसी भांति खड़े हुए हैं, जो असत्य हैं और प्रचार ने जिन्हें सत्य की गरिमा दे दी है !

सच तो यह है सत्य का कोई प्रचार ही नहीं हो सकता है। प्रचार मात्र असत्य का हो सकता है। सत्य का तो अनुभव करना होता है। प्रचार का कहां उपाय है ? सत्य को तो एक-एक व्यक्ति को स्वयं

ही जानना होता है, दूसरे के प्रचार से कोई सत्य को कभी नहीं जान सकता।

एक मित्र ने पूछा है कि अगर यह बात सच है तो फिर मैं क्यों बोल रहा हूं, क्यों बोलता हूं ?

मैं सत्य का प्रचार नहीं कर रहा हूं। केवल असत्य का प्रचार है, इस बात की आपको खबर दे रहा हूं। एक कांटा लग जाता है, दूसरे कांटे से उसे निकाल देते हैं। दूसरा कांटा खतरनाक तब होता है, जब पहले घाव में उस दूसरे को हम रख लें तब खतरनाक होता है, नहीं तो खतरनाक नहीं है। एक कांटा निकाला, दूसरा जिसने निकाला, वह भी निकालते ही से बेकार हो गया। उसको भी फेंक देंगे। ऐसा थोड़ी करेंगे कि यह बड़ा परोपकारी कांटा है, इसने एक कांटा निकाला, तो इसको पैर में लगा लें।

तो मेरी बात एक असत्य को निकालने की चेष्टा से ज्यादा नहीं है—वह एक कांटा भर है। दूसरा भी कांटा है, यह भी कांटा है। उस कांटे को निकालने के साथ ही यह कांटा भी बेकार हो जाता है। अगर इसको ले जाकर मंदिर बना लें...इस कांटे से ही, तो आप पागल हैं। उसमें मेरा कोई कसूर नहीं है। उस कांटे के निकलते ही यह कांटा भी बेकार हो जाता है। फिर जो स्थिति आपको उपलब्ध होगी, वह मुझसे उपलब्ध नहीं हो रही, न किसी और से। वह तो समस्त प्रपोगंडा, परतन्त्रता से मुक्त हो जाने पर चित्त अपनी सहज गति करता है सत्य की ओर।

असत्य से मुक्त हो जाएं—सत्य तो आपका स्वरूप है। असत्य से मुक्त हो जाएं—सत्य तो आपका निज घर है। असत्य से मुक्त हो जाएं। असत्य को देख लें असत्य की भांति, फिर सत्य तक पहुंचने में कोई भी कठिनाई नहीं है। आप पहुंचे ही हुए हैं। असत्य को, जो फाल्स है, उसको फाल्स की तरह देख लेना, असत्य की तरह देख

लेना, सत्य के खोजी के लिए बड़ी अनिवार्य भूमिका है। इसलिए मैंने सुबह ये बातें आपसे कहीं।

और भी कुछ प्रश्न पूछे हैं, उनकी रात आपसे चर्चा करूंगा। एक छोटे से प्रश्न का उत्तर और शाम की यह चर्चा पूरी होगी।

एक मित्र ने पूछा है कि आपने जो ध्यान की विधि कही, उसमें और एकाग्रता के हमेशा से चलने वाले मार्ग में क्या फर्क है ?

बहुत फर्क है। जितना फर्क हो सकता है, उतना फर्क है। एकाग्रता चित्त का श्रम है। एकाग्रता का मतलब है : कन्सनट्रेशन—किसी एक चीज पर चित्त को जबरदस्ती रोकना, शेष सारी चीजों पर चित्त को बन्द करना, केवल एक चीज पर खोलना। चाहे नाम पर, चाहे मूर्ति पर, चाहे शब्द पर, चाहे किसी और प्रतीक पर, कोई सिम्बल पर। एक पर मन को रोकना और शेष सबके प्रति मन को बन्द करना।

यह मन के स्वभाव के प्रतिकूल है। यह जबरदस्ती है। इस जबरदस्ती में चित्त पर तनाव पैदा होगा, श्रम होगा, स्ट्रैन होगा, परेशानी होगी। और परेशानी के दो फल हो सकते हैं। अगर चित्त बहुत परेशान हो जाएगा, तो बचने के दो उपाय हैं। या तो चित्त सो जाय, तो परेशानी से छुटकारा हो जाता है। और या चित्त पागल हो जाय, तो भी परेशानी से छुटकारा हो जाता है।

कन्सनट्रेशन या तो नींद में ले जा सकता है, या पागलपन में। और कहीं भी नहीं ले जा सकता। जो अनेक साधु पागल होते देखे जाते हैं, उसका कोई और कारण नहीं है। लेकिन हम तो अजीब ही लोग हैं। हम कहते हैं ईश्वर का उन्माद चढ़ गया है, ईश्वर के आनंद में मस्त हो गए हैं ! हो गए हैं पागल। और या चित्त सो जाता है। क्योंकि चित्त को ज्यादा हम परेशान करें, तो फिर चित्त परेशानी से

६

ऊब जाता है और नींद में चला जाता है, यह उसकी एस्केप है।

तो अनेक लोग जो माला-बाला जपते रहते हैं, अक्सर गहरी नींद में सोए रहते हैं। राम-राम जपते रहते हैं, उससे नींद अच्छी आती है। उतनी देर नींद अगर आ जाती है, तो उन्हें अच्छा लगता है। क्योंकि उतनी देर सब भूल जाते हैं। जहां सब भूल जाते हैं, वहां दुख, चिन्ताएं भी भूल जाती हैं। दुख चिन्ताओं का भूल जाना—परमात्मा को, आनन्द को, या सत्य को पा लेना नहीं है। वह तो शराब पीने वाला भी यही कर रहा है, दुख चिन्ताओं को भूल रहा है। तो कन्सनट्रेशन, एकाग्रता, चित्त की जबरदस्ती, चित्त को या तो निद्रा में और या असंतुलन में ले जाने का उपाय है। इस पर हम कल सुबह जब ध्यान के लिए बात करेंगे, तो और विचार कर सकेंगे।

लेकिन जिसे मैं ध्यान कह रहा हूं, वह कन्सनट्रेशन नहीं है, वह एकाग्रता नहीं है, वह केवल सहज जागरूकता है। जागरूकता का अर्थ एक चीज के प्रति नहीं, समस्त के प्रति केवल जागे हुए होना है। और जागरूकता का कोई भी उपाय नींद में ले जाने वाला नहीं हो सकता है। क्योंकि जागरूकता नींद से बिल्कुल विपरीत दिशा है। और चूंकि जागरूकता में कोई तनाव, कोई टेन्सन का कोई कारण नहीं है। क्योंकि तनाव तब पैदा होता है, जब हम चुनाव करते हैं। जब हम चुनाव ही नहीं करते और सब चीजों के प्रति सरलता से जागते हैं; कोई दबाव नहीं डालते मन पर, तो मन के विक्षिप्त होने का भी कोई कारण नहीं है।

मन स्वस्थ होता है जागरूकता से।

और जो जागरूकता को उपलब्ध हो जाता है, उसके चित्त में चंचलता नहीं रह जाती है। और चंचलता न रह जाने के कारण एकाग्र करने की कोई जरूरत भी नहीं रह जाती। उसका चित्त तो सहज ही किसी भी चीज पर पूरे रूप से जाग जाता है।

एकाग्रता की जरूरत ही इसलिए पड़ती है कि हमारा चित्त

एक चीज पर जाग नहीं पाता, इसलिए हम सब तरफ से सुलाकर एक तरफ जगाने की कोशिश करते हैं।

इस पर हम कल सुबह और विचार कर सकेंगे। आपके और जो प्रश्न हों, वे आप पहुंचा देंगे, रात हम उनकी बात करेंगे। और रात्रि उस चर्चा के बाद, हम रात्रि के ध्यान के लिये बैठेंगे।

दोपहर की यह बैठक समाप्त हुई।

○

साधना-शिविर माथेरान, दिनांक १६।१०।६६ दोपहर

४. ध्यान की आंख

एक मित्र ने पुछा है, कि क्या मैं संन्यास के पक्ष में नहीं हूं ?

मैं संन्यास के तो पक्ष में हूं, लेकिन संन्यासियों के पक्ष में नहीं हूं। संन्यास बड़ी और बात है और संन्यासी हो जाना बड़ी और। संन्यासी होकर शायद हम संन्यास का धोखा देना चाहते हैं और कुछ भी नहीं। संन्यास तो अन्तःकरण की बात है, अन्तस् की। और संन्यासी हो जाना बिल्कुल बाह्य अभिनय है। और बाह्य अभिनेताओं के कारण इस देश में संन्यास को, धर्म को जितनी हानि उठानी पड़ी है, उसका हिसाब लगाना भी कठिन है।

संन्यास जीवन-विरोधी बात नहीं है। लेकिन तथाकथित संन्यासी जीवन-विरोधी होता हुआ दिखाई पड़ता है। संन्यासी तो जीवन को परिपूर्ण रूप से भोगने का उपाय है। संन्यास त्याग भी नहीं है। वस्तुतः तो जीवन के आनन्द को हम कैसे पूरा प्राप्त कर सकें—इसकी प्रक्रिया, इसकी वैज्ञानिक प्रक्रिया ही संन्यास है। संन्यास दुख उठाने का नाम नहीं। और न जानकर अपने ऊपर दुःख ओढ़ने का, न जानकर अपने को पीड़ा, तकलीफ कष्ट देने का।

सच्चाई तो यह है कि जो लोग थोड़े आत्घाती वृत्ति के होते है, थोड़े स्वीसाइडल होते हैं, वे लोग संन्यास के नाम से स्वयं को सताने का, खुद को टार्चर करने का रास्ता खोज लेते हैं। दुनिया में जिनकी दुष्ट प्रकृति है, जिनका मस्तिष्क और मन वायलेन्ट, हिंसक है, वे दो तरह के काम कर सकते हैं। एक तो यह कि वे दूसरों को सताएं। और दूसरा यह कि अगर वे दूसरों को न सताएं तो खुद को सतायें। ये दोनों ही हिंसा के रूप हैं। जो आदमी दूसरों को सताने से अपने को रोकता है, जबरदस्ती, वह अनिवार्य रूप से खुद को सताने में लग जाता है। फिर चाहे वह उसे तपश्चर्या कहता हो,

त्याग कहता हो, या कोई और अच्छे नाम चुन लेता हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

और स्मरण रखें, जो आदमी अपने को सताता है, वह आदमी कभी भी अहिंसक नहीं हो सकता है। जो अपने को ही प्रेम नहीं करता, वह इस पृथ्वी पर किसी दूसरे को कभी नहीं प्रेम कर सकता है। दूसरों के प्रति दिखाया जाने वाला प्रेम धोखा और पाखंड है। क्योंकि जो खुद को ही प्रेम करने में समर्थ नहीं हो सका, वह और किसको प्रेम कर सकेगा ?

मेरी दृष्टि में संन्यासी वह है, जो स्वयं को इतना प्रेम करता है कि इस स्वयं को प्रेम करने के कारण ही उसका जीवन परिवर्तित हो जाता है। स्वयं के प्रति इस गहरे प्रेम में ही उसके भीतर सबके प्रति प्रेम का जन्म होता है।

संन्यास ऐसी चित्त दशा का नाम है, जहां भीतर व्यक्ति ऐसे जीने लगता है, जैसे कि हो ही नहीं। जैसे उसकी अस्मिता, उसका अहंकार, उसका इगो खो गया हो, शून्य हो गया हो। वह हवा, पानी की भांति जीने लगता है। बाहर, इसका यह अर्थ नहीं होता है कि वह निष्क्रिय हो जाएगा, बल्कि उल्टे इसका यह अर्थ होता है कि वही सबसे ज्यादा सक्रिय हो जाएगा। जिसके चित्त के तल पर शून्य है, उसके परिधि पर, उसके जीवन की परिधि पर बड़ी सृजनात्मक क्रियाओं का अविर्भाव होता।

एक गाड़ी को आप चलते देखते हैं। चके घूमते चले जाते हैं, लेकिन चाक के बीच में जो कील है, वह थिर बनी रहती है। वह कील की थिरता के कारण ही चका घूम पाता है। अगर कील भी घूम जाय, तो फिर चका नहीं घूम पाएगा। कील ठहरी रहती है और जितनी थिर होती है, उतना ही चाक घूम सकता है, सहजता से, सरलता से।

संन्यासी ऐसा व्यक्ति है, जिसका चित्त तो थिर है, लेकिन जिसके जीवन का चाक बड़ी गति से घूमता है।

जिसके जीवन का चाक ही रुक गया हो, वह आदमी मर गया; वह आदमी संन्यासी नहीं है। ऐसे ही मरे लोगों को हमने हजारों साल तक पूजा है। और ऐसे मरे लोगों की पूजा के कारण हमारी पूरे कौम की आत्मा धीरे-धीरे जड़ हो गई है, मर गई है।

इस देश में संन्यास के नाम पर पलायनवादी, एस्केपिस्ट प्रवृत्तियों को अद्भुत रूप से पूजा मिली है। जो लोग जीवन को छोड़ दें, जीवन से भाग जाएं, जीवन के शत्रु हो जाएं, उन सबको हम आदर देते हैं। तो फिर अगर जीवन उजड़ जाता हो, तो कसूर किसका है? फिर अगर जीवन बेरौनक हो जाता हो, अगर जीवन दुख से भर जाता हो और जीवन में आनन्द की कोई वर्षा न हो, तो कौन जिम्मेदार है? फिर इसमें आश्चर्य क्या है?

एक संन्यासी अपने भक्तों में के बीच बोलता था। उसने एक प्रश्न किया। अपने-अपने भक्तों से कहा, तुम में से कितने लोग स्वर्ग जाना चाहते हैं? सभी हाथ उठ गए, सिर्फ एक हाथ को छोड़कर। संन्यासी बहुत हैरान हुआ। हाथ नीचे गिरवाकर उसने कहा, अब वे लोग हाथ उठायें, जो नरक जाना चाहते हैं। एक भी हाथ नहीं उठा। उस आदमी ने भी हाथ नहीं उठाया, जिसने स्वर्ग जाने के लिए हाथ नहीं उठाया था!

संन्यासी हैरान हुआ, उसने कहा, महानुभाव, आप कहां जाना चाहते हैं?

उस आदमी ने कहा, न तो मैं स्वर्ग जाना चाहता हूं, न नरक। मैं इस जमीन पर रहना चाहता हूं। और इस जमीन को, और इस जमीन के जीवन को आनन्दित देखना चाहता हूं। ये तुम्हारे स्वर्ग जाने वाले लोग इस जमीन को नरक बनाने के कारण बने हैं।

और नरक तो जाने को कोई तैयार नहीं है, सारे लोग स्वर्ग जाने को तैयार हैं। इस कारण यह पृथ्वी नरक हो गई है। क्योंकि इस पृथ्वी को कौन स्वर्ग बनाए? इस जीवन को कौन सुन्दरता दे? इस जीवन की कुरुपता को कौन मिटाए?

जो लोग जीवन को छोड़ने की शिक्षा देते हैं, वे तो जीवन को सुन्दर न बनाना चाहेंगे, क्योंकि जीवन अगर सुन्दर हो जाए, उसकी सारी अग्लीनेस, उसकी कुरूपता मिट जाय, तो शायद कोई जीवन को छोड़ने की, भागने की कल्पना भी न करे।

इसलिए जो लोग जीवन से भागने की शिक्षा देते हैं, वे तो चाहते हैं कि जीवन जितना दुख और जितनी कुरुपता से भर जाय, उतना अच्छा। क्योंकि तब छोड़ने की प्रेरणा और तीव्रता से अर्थ और अपील पकड़ लेगी।

हमारे देश में, या पुराने हजारों वर्षों में ऐसे लोग बहुत कम रहे हैं, जिन्होंने इस पृथ्वी के प्रेम को प्रदर्शित किया हो।

मैं तो ऐसे ही व्यक्ति को धार्मिक कहता हूं, जो इस जीवन को सुन्दर बनाने की चेष्टा में संलग्न है। जो इस जीवन की कुरुपताओं को दूर करना चाहता है, जो इस मौजूदा जिन्दगी को, इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने के लिए चेष्ठारत है—वही आदमी धार्मिक है। और जिस आदमी ने अपने पूरे प्राणों को इस दिशा में संलग्न कर दिया है, वह संन्यस्त है। उसकी अपनी अब कोई आकांक्षा नहीं, इस जीवन को सुन्दर बनाने के अतिरिक्त। और यह भी आपसे कह दूं. जो थोड़े से लोग इस जीवन को सुन्दर बनाने के लिए श्रम करते हैं, वे यहां तो स्वर्ग को उपलब्ध हो ही जाते हैं। और अगर कहीं भी कोई स्वर्ग होगा, तो वे उससे वंचित नहीं रह सकते। उन्होंने वह दूसरा स्वर्ग भी कमा लिया, इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने में।

लेकिन जो लोग इस जीवन को उजाड़ते हैं—और तथाकथित साधुओं और सन्यासियों के ऊपर ही यह सारा जिम्मा है, कि उन्होंने भागने की, छोड़ने की ऐसी हवा पैदा की, ऐसी वृत्ति पैदा की कि इस जीवन को बसाने का और बनाने का तो ख्याल ही खो गया।

यह हैरानी होगी जानकर कि हमारे जीवन में जितना अकल्याण-अमंगल दिखाई पड़ता है; जितना दुख, उसमें तथाकथित साधु और सन्यासियों का हाथ है। और तथ्य को जब तक हम न देखेंगे, तब तक

न तो जीवन को बदलने के लिए, हमारी दृष्टि स्पष्ट हो सकती है और न ही संन्यास का, धर्म का सही अर्थ। और न संन्यस्त जीवन की सही प्रक्रिया का ही हमें बोध हो सकता है।

हम तो एक पलायनवादी दृष्टि में, एक एस्केपिस्ट दृष्टि के अंतर्गत बड़े हुए हैं। और हमने भागते हुए आदमी को आदर दिया है। इस आदर से जितना अमंगल हुआ है, उसकी कल्पना करनी भी कठिन है।

मैं ऐसे संन्यास, ऐसे संन्यासी के पक्ष में नहीं हूं। मेरी तो समझ यही है कि जीवन के अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं। यह जो विराट जीवन है, सब तरफ अनन्त तक छाया और फैला हुआ, यह जो हम में और आप में, और पत्तों में, और पक्षियों में, और पत्थरों में और आकाश के तारों में—यह जो विराट् जीवन सब तरफ प्रगट होता है, इसी जीवन की समग्रता का नाम परमात्मा है।

इस जीवन की समग्रता में जो अपने को इस भांति खो देता है, अपने अहंकार को—कि उसे इसमें कोई पृथकता की दीवाल नहीं रह जाती, उसके बीच और जीवन के बीच कोई फासला, कोई डिस्टेंस नहीं रह जाता। क्योंकि एक ही फासला है—अहंकार का और कोई फासला है भी नहीं। एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य के बीच भी अहंकार का फासला है। एक जीवन और समस्त जीवन के बीच भी अहंकार का फासला है।

सामान्यतः संन्यासी मैं उसे कहना चाहूंगा, जिसने इस फासले को पार कर लिया। जिसके और जीवन के बीच अब कोई फासला नहीं है। लेकिन ऐसा आदमी जीवन से भागेगा नहीं, ऐसा आदमी तो परिपूर्ण रूप से जीवन में सम्मिलित हो जाएगा। जीवन का सब कुछ उसे स्वीकार हो जाएगा। अब वह है ही नहीं—अस्वीकार कौन करे, भागे कौन? और भागे तो कहां भागे? अब तो वह जीवन से एक है। जीवन से एकता की अनुभूति धार्मिक चित्त की आधारशिला है। जो उस अनुभूति को उपलब्ध होता है, उसे मैं संन्यासी कहूंगा।

लेकिन संन्यासी के नाम से जो सब चलता रहा है—तो चूंकि हम उसके आदी हो गए हैं देखने के, इसलिए हमें ख्याल नहीं आता कि संन्यासी के नाम से कैसा पाखंड, कैसी एक्टिंग, कैसा अभिनय चल रहा है।

अगर हमारी आंखें गहरी होंगी देखने को, तो हम यह देख पाएंगे कि फिल्मों के अभिनेता भी इतने कुशल अभिनेता नहीं हैं। क्योंकि बेचारे वे कम से कम इतना तो जानते ही हैं कि अभिनय कर रहे हैं। लेकिन वस्त्रों को बदल लेने वाले संन्यासी, उनको यह भी पता नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं। वस्त्रों को बदल लेना, घर-द्वार को बदल लेना, जीवन के बाह्य आवरण में परिवर्तन कर लेने से कोई संन्यास नहीं उपलब्ध हो जाता है। कपड़े बदल लेने से आत्मा बदलने का क्या कोई संबन्ध है? कपड़े रंग लेने से क्या आत्मा के बदल जाने का कोई भी नाता है? और जिसको यह दिखाई पड़ता हो कि कपड़े बदल लेने का इतना मूल्य है, वह बहुत चाइल्डिश है, बहुत बचकाना है। अभी उसकी समझ जरा भी मेच्योरिटी को उपलब्ध नहीं हुई, वह प्रौढ़ नहीं हुआ है। लेकिन यह चलता रहा है, चल रहा है और हम सब इसके चलने में सहयोगी हैं।

मैं निवेदन करना चाहूंगा ऐसे किसी संन्यास का मेरे मन में कोई आदर—ऐसे संन्यास के प्रति कोई सद्भाव, कोई सहयोग मेरे मन में नहीं है और आप भी सोचेंगे तो बहुत कठिन नहीं है कि आपके मन में भी रह जाय। लेकिन हम देखते नहीं जीवन को उघाड़कर। हम तो स्वीकार कर लेते हैं, जो चलता है उसे चुपचाप।

अगर मनुष्य के भीतर थोड़ी सी भी अस्वीकार की हिम्मत आ जाय, तो जीवन के हजारों तरह के पाखंड इसी क्षण छूट जाएं—इसी क्षण टूट जाएं। उनके टिकने की कोई जगह न रह जाय। लेकिन हम अपनी शिथिलता में, हम अपने आलस्य में, हम अपनी नींद में आंख खोलकर देखते भी नहीं। जो चल रहा है—हम भी उसमें सहयोगी और साथी हो जाते हैं।

जीवन का इतना जो कुरूप रूप उपस्थित हो गया है, इसमें किन लोगों का हाथ है ?

उन्हीं लोगों का जिन्होंने किसी न किसी रूप में भी जीवन से भागने की, पलायन की, मोक्ष की, किन्हीं दूर की कल्पनाओं के लिए, इस जीवन को कुर्बान कर देने की बातें की हैं; लोगों को समझाया है और लोगों में जीवन-विरोधी, लाइफ निगेटिव दृष्टि को जन्म दिया है।

मैं तो लाइफ-अफरमेशन को, जीवन के स्वीकार को, जीवन के प्रति आदर को, जीवन के प्रति परिपूर्ण प्रेम को, जीवन जैसा है—उस जीवन की समग्रता को, उसकी स्वीकृति को ही संन्यास कहता हूं। जीवन को पूरे ढंग से जीना ही संन्यास है। भाग जाना नहीं, आंख बंद कर लेना नहीं।

लेकिन ऐसा संन्यासी अभी पैदा होने को है, जो जीवन का शत्रु न हो, मित्र हो। और जिस दिन भी हम ऐसे संन्यासी को जन्म दे सकेंगे, उसी दिन धर्म और जीवन के बीच जो आज खाई खुदी है, समाप्त हो जाएगी। जीवन और धर्म एक हो सकेगा। तब मन्दिर और दुकान को अलग रखने की जरूरत न रहेगी। तब दुकान मन्दिर हो सकती है।

वैसे मन्दिर तो बहुत दिनों से दुकान हो ही चुका है। लेकिन दुकान मन्दिर नहीं हो पाई है। तब बाजार, जीवन की सघनता से पहाड़ की चोटियों पर भागने का कोई सवाल नहीं है। कपड़े बदलने का, घर-द्वार छोड़ देने का भी कोई सवाल नहीं है। तब सवाल है स्वयं को बदल लेने का। और जो लोग स्वयं को नहीं बदलना चाहते, वे छोटी-मोटी बदलाहट करके स्वयं को कान्सोलेशन्स दे लेते हैं, सान्त्वना दे लेते हैं—कि हमने अपने को बदल लिया। यह धोखा बहुत चल चुका। ऐसे संन्यास को अब कोई जगह, आने वाली मनुष्य की चेतना में नहीं होनी चाहिए। और हमने बहुत अहित भी भोग लिया। हमने बहुत अमंगल भी भोग लिया। हमने जीवन को बहुत रूप से

उपेक्षित करके; दुखी, परेशान; बेचैन भी, अशांत भी बना लिया। लेकिन अब तक भी जीवन की परिपूर्ण स्वीकृति कर लेने वाले धर्म को, विचार को हम जन्म नहीं दे सके। कहीं आसमान से वह पैदा होगा भी नहीं। हम ही उसे मार्ग देंगे तो वह पैदा हो सकता है।

तो मैं संन्यास के तो पक्ष में हूं, लेकिन संन्यासी के नहीं। क्योंकि संन्यास एक और ही क्रान्ति है, जिससे व्यक्ति गुजर जाता है। और संन्यासी हो जाना एक ढोंग है। जो लोग क्रान्ति से बिना गुजरे, क्रान्ति से गुजर जाने का वहम् पाल लेना चाहते हैं, उनके लिए बड़ा सुगम उपाय है। और कभी तो हैरानी होती है कि तथाकथित बड़े-बड़े नाम भी बच्चे मालूम पड़ते हैं। उनके आग्रह इतनी छोटी-छोटी बातों के होते हैं कि हैरानी होती है। और इतनी क्षुद्र बातों में जिनका चित्त लीन होता हो, इतनी क्षुद्र बातों में जो निरन्तर ग्रस्त रहते हों, वे भी विराट् की तरफ उड़ान भर पाते होंगे, इसकी कल्पना भी नहीं हो सकती।

एक और मित्र ने पूछा है—कि मैंने कहा कि शास्त्रों में सत्य नहीं है, तो फिर मेरी किताबें क्यों हैं ? क्यों बेची जाती हैं ? क्यों लोगों को दी जाती हैं ?

वे शास्त्र और किताब के फर्क को नहीं समझ पाये। किताबों के विरोध में नहीं हूं। गीता एक किताब हो तो ठीक, कुरान एक किताब हो तो ठीक। जिस दिन कोई किताब शास्त्र बनती है, उसी दिन से खतरा शुरू होता है।

शास्त्र और किताब में फर्क क्या है ?

जब कोई किताब अथारिटी बन जाती है, आप्त बन जाती है—जब कोई किताब यह दावा करती है कि ईश्वरीय है, होली है, पवित्र है—जब कोई किताब यह दावा करती है कि इसमें जो लिखा है, वह त्रिकाल में सत्य है—जब कोई किताब यह दावा करती है कि इससे अन्यथा जो है, वह सब गलत है—जब कोई किताब यह कहती

है कि मेरी पूजा करो--जब कोई किताब पूजा पाने लगती है, आप्त बन जाती है, दावे करने लगती है, कि जो कुछ है "मैं" हूं, यही सत्य है, इस पर श्रद्धा लाने से ही ज्ञान उपलब्ध होगा – तब किताब, किताब नहीं रह जाती, शास्त्र बन जाती है। और शास्त्र खतरनाक सिद्ध होते हैं। किताबें—किताबें तो बहुत निर्दोष हैं। उनमें कोई खतरा नहीं है।

तो ये जो मेरी किताबें हैं, जब तक किताबें हैं, तब तक कोई खतरा नहीं है। लेकिन अगर कुछ नासमझ यहां इकट्ठे हो गए, और इनमें से किसी किताब को उन्होंने शास्त्र कह दिया तो खतरा शुरू हो जाएगा। उस दिन इनको जला देना, इनको एक क्षण बचने मत देना—जिस दिन भी कोई इनको शास्त्र कहे। क्योंकि तब तक यह मनुष्य को बांधने वाली हो जाती हैं।

एक खलीफा सिकन्दरिया पहुंचा था। और सिकन्दरिया के बहुत बड़े विराट पुस्तकालय में उसने आग लगवा दी थी। उस पुस्तकालय में, कहा जाता है सम्भवतः दुनिया की सर्वाधिक किताबें संग्रहीत थीं। एक बड़ी सम्पदा थी वह। इतनी पुस्तकें थीं वहां कि आग लगाने पर छः महीने तक आग बुझ नहीं सकी। छः महीने तक पुस्तकालय जलता रहा।

जिस खलीफा ने वहां आग लगाई थी, वह अपने हाथ में एक शास्त्र लेकर पहुंचा था, वह कुरान लेकर पहुंचा था। अगर कुरान भी एक किताब होती, तो उस लायब्रेरी में आग लगाने की कोई जरूरत न थी, वहां और किताबें थीं, कुरान भी एक किताब थी। यह भी उन किताबों में सम्मिलित हो सकती थी। लेकिन कुरान था एक शास्त्र। लायब्रेरी में कोई शास्त्र नहीं था। क्योंकि एक शास्त्र, दूसरे शास्त्र को नहीं मानता; दूसरे शास्त्र के प्रति बड़ा ईर्ष्यालु होता है, क्योंकि शास्त्र हो सकता है एक, पच्चीस दावे सही नहीं हो सकते। एक ही दावा सही हो सकता है।

उस खलीफा ने जाकर उस पुस्तकालय के अध्यक्ष को कहा

था—एक हाथ में कुरान लेकर और एक हाथ में मशाल लेकर। उससे कहा था कि मैं यह पूछने आया हूं कि कुरान में जो कुछ लिखा है—तुम्हारे इस पुस्तकालय में जो किताबें हैं क्या उनमें भी वही लिखा है, जो कुरान में लिखा है? अगर वही लिखा है, तो इतनी किताबों की कोई जरूरत नहीं, कुरान काफी है, कुरान पर्याप्त है। अगर वही बातें लिखी हैं, तो इतना यहां उपद्रव मचाने की क्या जरूरत है? और अगर तुम्हारी इन किताबों में ऐसी बातें भी लिखी हैं, जो कुरान में नहीं हैं, तब तो इस पुस्तकालय को एक क्षण बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। क्योंकि कुरान के अतिरिक्त जो कुछ भी है, सब गलत है। सत्य तो कुरान है।

तो उस खलीफा ने कहा, दोनों हालत में—तुम्हारा उत्तर चाहे कुछ भी हो, मैं आग लगाने आया हूं। चाहे तुम कहो कि इनमें भी वही बातें लिखी हैं, जो कुरान में हैं, तब मैं कहूंगा कि फिजूल हैं ये किताबें। और अगर तुम कहो कि इनमें ऐसी बातें हैं भी हैं, जो कुरान में नहीं, तो मैं कहूंगा खतरनाक हैं ये किताबें। इनको इसी वक्त जला देना जरूरी है।

उसने एक हाथ में···कुरान को नमस्कार करके उस पुस्तकालय में आग लगा दी।

यह कुरान शास्त्र था, अगर किताब होती, तो इस पुस्तकालय में आग नहीं लग सकती थी।

मैंने किताबों के विरोध में कुछ भी नहीं कहा है। जो कहा है शास्त्र के विरोध में कहा है। शास्त्र किताब नहीं है—पागल हो गई किताब है।

एक साधारण आदमी, एक आदमी है। और फिर एक आदमी पागल हो जाय और कहने लगे मैं ईश्वर हूं, परमेश्वर हूं, तीर्थंकर हूं, अवतार हूं, ईश्वर का पुत्र हूं। यह आदमी पागल हो गया है। यह आदमी जितना ज्ञान से भरता है, उतना भूल जाता कि मैं हूं। इसके तो दावे और बड़े हो गए कि मैं मनुष्य ही नहीं, मैं ईश्वर हूं! वह तो

ईश्वर के जितने निकट पहुंचता, उतना विलीन हो जाता। इससे कोई पूछता कि तुम हो? तो शायद यह कहता कि मैं तो बहुत खोजता हूं, लेकिन पाता नहीं कि कहां हूं। लेकिन वह तो कहने लगा मैं ईश्वर हूं! और इतना ही कहे तो ठीक। यह, यह भी कहता है कि और अगर कोई कहता हो कि मैं ईश्वर हूं, तो झूठ कहता है।

एक मुसलमान राजधानी में, एक आदमी ने आकर घोषणा कर दी कि पैगम्बर हूं। उसे पकड़ लिया गया। उस बदशाह ने उसे कैद में बन्द करवा दिया। चौबीस घन्टे बाद उसके पास गया। और उससे कहा स्मरण रखो, मोहम्मद के बाद अब कोई पैगम्बर नहीं। इस तरह की बातें करोगे तो मौत के सिवाय और कोई सजा नहीं होगी। चौबीस घन्टे में कुछ अक्ल आई? उसे बहुत कोड़े मारे गए थे, पीटा गया था, भूखा रखा गया था, लहुलुहान कर दिया था, चमड़ी कट गई थी, वह बन्धा था एक खंभे से। होश आया हो, तो मांफी मांग लो, तो छूट सकते हो?

वह पैगम्बर हंसा। और उसने कहा कि तुम्हें पता नहीं, जब परमात्मा ने मुझसे कहा था मैं तुम्हें पैगम्बर बनाकर भेज रहा हूं। तो उसने मुझे यह भी कहा था कि पैगम्बरों पर मुसीबतें आती हैं। सो मुसीबतें आनी शुरू हो गई। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मैं पैगम्बर नहीं हूं। इससे तो यह बिल्कुल सिद्ध होता है कि मैं पैगम्बर हूं। क्योंकि हमेशा पैगम्बरों पर मुसीबतें आती हैं, पत्थर मारे जाते हैं, चोटें की जाती हैं। यह बात वह कह ही रहा था कि पीछे सींखचों में बन्द एक आदमी चिल्लाया कि यह बिल्कुल झूठ बोल रहा है। इस आदमी को एक महिने पहले बन्द किया गया था। तो सुल्तान ने पूछा कि कैसे तुम कहते हो, यह झूठ बोल रहा है? उस आदमी ने कहा, आप भूल गए। मैं खुद परमात्मा हूं। मोहम्मद के बाद मैंने किसी को भेजा ही नहीं, यह आदमी बिल्कुल झूठ बोल रहा है।

वे परमात्मा के जुर्म में गिरफ्तार किए गए थे। एक महीने पहले। उसने कहा, यह बिल्कुल सरासर झूठ बोल रहा है कि यह

पैगम्बर है, मैंने इसको कभी पैगम्बर बनाया ही नहीं। मोहम्मद के बाद मैंने किसी को बनाया ही नहीं।

अब इनको हम जानते हैं, इनका इलाज होना चाहिए। ये आदमी पागल हो गए। इनके अहंकार ने अंतिम घोषणा कर दी। इनका अहंकार फूलकर अंतिम गुब्बारा बन गया। अब यह बिक्षिप्त स्थिति की अंतिम सीमा पर हैं। जब आदमी पागल होते हैं, तो वे दावे शुरू कर देते हैं। और जब किताबें पागल हो जाती हैं, भक्तों के कारण, तो वे शास्त्र बन जाती हैं।

शास्त्र के खिलाफ तो मैंने जो कहा, जरूर कहा। लेकिन किताब के खिलाफ मैंने कुछ भी नहीं कहा है। गीता किताब रहे, कुरान किताब रहे, वेद किताब रहें—बड़ा स्वागत है उनका पुस्तकालय में, और सब किताबों के साथ उनकी भी रेक पर जगह होगी। लेकिन शास्त्र अब दुनिया में नहीं चल सकते। क्योंकि शास्त्रों ने एक तरह का पागलपन पैदा किया है। और शास्त्र सत्य की खोज में बाधा बन गए अपने दावों के कारण। और शास्त्रों पर विश्वास की शिक्षा ने मनुष्य को जड़ता सिखा दी है। विचार नहीं, चिन्तन नहीं—आस्था, अंधी आस्था, अंधविश्वास।

इसलिए मैंने कहा। तो मैं फिर से कह दूं, ये किताबें जरूर हैं, यहां. जब तक ये किताबें हैं, ठीक हैं, जिस दिन ये किताबें न हों, इनके साथ वही करना, जो शास्त्रों के साथ करना उचित होता है।

एक साधु का अन्तिम क्षण आ गया था मृत्यु का। जीवन भर के उसके भक्त, उसे पूजने वाले, उसकी तरफ आंख उठाकर देखने वाले—उसके शिष्यों ने बार-बार उससे कहा था कि तुम अपने जीवन के अनुभव एक किताब में लिख दो। वह साधु हमेशा टालता रहा था। अन्तिम दिन, लाखों लोग इकट्ठे हुए थे। उसने घोषणा कर दी थी कि आज सूरज के डूबने के साथ मैं समाप्त हो जाऊंगा। हजारों लोग उसके दर्शन को आए थे।

सुबह ही सुबह उठकर उसने कहा कि मुझसे बहुत बार कहा गया था कि मैं कोई किताब लिख दूं। मैंने वह किताब अन्ततः लिख दी। और जो उसका सबसे प्यारा निकटतम मित्र था, उससे उसने कहा कि यह तुम किताब सम्हालो, इसे सम्हाल कर रखना। यह बहुत बहुमूल्य है। इसमें मैंने सब कुछ लिख दिया है, जो सत्य है। यह हजारों वर्षों तक मनुष्य के लिए बड़ी ऊंची संपदा सिद्ध होगी। यह कहकर उसने अपने मित्र और शिष्य के हाथ में वह किताब दी। लोगों ने जय-जयकार किया, तालियां पीटीं, उनकी वर्षों की आकांक्षा पूरी हो गई थी।

लेकिन, उस शिष्य ने, जिसे किताब दी गई थी, किताब हाथ में लेकर पास में जलती अंगीठी में डाल दी। झट से किताब जल गई। सारे लोग हैरान रह गए, लोग परेशान हो गए कि यह क्या किया। इतने वर्षों की प्रार्थना के बाद किताब लिखी गई थी और खुद गुरु ने कहा; सम्हाल कर रखना और इसने आग में डाल दी!

लेकिन गुरु के आंखों में खुशी के आंसू आ गए। उसने उस युवक को अपनी छाती से लगा लिया। और उसने कहा कि मैं खुश हूं। कम से कम एक आदमी मुझे समझ सका है। मैंने जीवन भर यही कहा कि किताबों से सत्य नहीं मिल सकता है। अगर तुम किताब को सम्भाल कर रख लेते, तो मैं दुखी मरता। मैं सोचता एक भी आदमी मुझे नहीं समझा। तुमने आग में डाल दी बात, तुमने आग में फेंक दी, मैं बहुत आनन्दित हूं इस अन्तिम क्षण में और आखिर में तुम्हें बताए देता हूं कि उस किताब में मैंने कुछ भी नहीं लिखा था। क्योंकि सत्य लिखा नहीं जा सकता है। वह किताब कोरी थी। अगर तुम बचा भी लेते तो कोई खतरा नहीं हो सकता था, वह किताब शास्त्र नहीं बन सकती थी।

लेकिन मैं आपसे कह सकता हूं कि वह गुरु गलती में भी हो सकता था। क्योंकि भक्त ऐसे हैं कि किताब खोलकर कभी देखते नहीं कि उसमें लिखा क्या है। वह गुरु गलती में भी हो सकता था।

हो सकता था वह किताब भी शास्त्र बन जाती। उसकी भी पूजा चलती और घोषणाएं चलतीं कि हमारी किताब में सबसे बड़ा सत्य है। झगड़े चलते, हत्याएं हो जातीं। और यह भी हो सकता था कोई खोलकर देखता ही नहीं कि वहां कोरे पन्ने हैं, वहां कुछ भी नहीं है। और अगर आप कोई भी शास्त्र खोलकर देखेंगे, तो पाएंगे वहां भी कोरे पन्ने हैं, वहां भी कुछ नहीं है। कोई सत्य वहां नहीं है। स्याही के धब्बों से थोड़े ही सत्य मिल सकता है। सत्य तो जीवन्त अनुभूति है जो अपने हृदय के द्वार खोलता है, उसे उपलब्ध होता है। कागजों पर आंखें गड़ा लेने से नहीं, बल्कि जीवन में आंखे खोलने से।

अगर पूछते ही हों कि क्या कोई भी शास्त्र नहीं है—एक भी? क्या सभी किताबें हैं?

तो अन्त में इतना आपको जरूर कहूंगा, एक शास्त्र है। लेकिन वह कोई किताब नहीं है। जितनी किताबें हैं, उनमें कोई भी शास्त्र नहीं है। एक शास्त्र है, लेकिन वह कोई किताब नहीं है। और वह शास्त्र किसी आदमी का बनाया हुआ नहीं है। वह यह जो सब तरफ फैला हुआ जीवन है, यह जरूर परमात्मा का शास्त्र है। जो इसे पढ़ने में समर्थ हो जाते हैं, वे जरूर सत्य को उपलब्ध होते हैं।

लेकिन इस शास्त्र को पढ़ने के रास्ते बड़े अलग हैं, उन रास्तों से, जो स्कूल में पढ़ने के सिखाए जाते हैं। स्कूल में तो किताब ही पढ़ने का रास्ता सिखाया जा सकता है, शास्त्र पढ़ने का नहीं। शास्त्र पढ़ने का, इस शास्त्र को जो परमात्मा का है, चारों तरफ मौजूद इसको पढ़ने का कोई और ही रास्ता है। उसी रास्ते के सम्बन्ध में कोई झलक हमें ख्याल में आ जाय, उसी तरफ कोई इशारा हमें दिखाई पड़ जाय, उसी तरफ कोई ध्वनि हमें सुनाई पड़ जाए। इसलिए हम यहां इकट्ठे भी हुए हैं।

ऐसे मैं शास्त्रों के विरोध में बोलता हूं, बोल रहा हूं। लेकिन अगर आप मुझे समझेंगे, तो मैं परमात्मा के शास्त्र के बहुत पक्ष में हूं, इसलिए आदमियों की किसी भी किताब को शास्त्र का ओहदा नहीं

देना चाहता हूं। आदमी की कोई भी किताब जब शास्त्र बनती है, तो परमात्मा के शास्त्र की खोज बन्द हो जाती है। फिर उस तरफ हमारी आंखें नहीं उठती हैं। फिर यही किताब दीवाल बन जाती है। हम इसको ही शास्त्र समझ लेते हैं और रुक जाते हैं।

अगर शास्त्र ही पढ़ना हो प्रभु का, तो आदमी के सब शास्त्र बीच में बाधा हैं, यह जान लेना जरूरी है। और आंखें उनसे मुक्त हो जानी चाहिए, तो ही आंखें उस विराट शास्त्र की तरफ, उस सत्य की तरफ उठ सकती हैं। और वह शास्त्र बड़ा अजीब है। वह पत्ते पर भी लिखा है, हवाओं में भी, बादलों में भी, चांद-तारों में भी, आदमी की आंखों में भी। लेकिन आदमी की आंखें बहुत झूठी हो गई हैं, शायद वहां न पढ़ा जा सके।

मैंने सुना है, एक बहुत बड़ा राजनीतिज्ञ अपने सेक्रेटरी के लिए चुनाव कर रहा था। उसने अनेक लोगों को बुलाया हुआ था, उनका इन्टरव्यू ले रहा था। एक बहुत योग्य युवक उसे दिखाई पड़ा। पच्चीसों युवक आए थे, एक युवक बहुत योग्य मालूम पड़ता था। सोचा उसने इसको चुन लें। लेकिन चुनने के पहिले उसने एक परीक्षा लेनी चाही।

उसने उस युवक से कहा कि मैं तुम्हें नौकरी पर रख लूंगा। इन पच्चीस युवकों में तुम्हीं मुझे सबसे ज्यादा योग्य मालूम पड़े हो। लेकिन एक शर्त, एक परीक्षा पहले। और वह परीक्षा यह कि मेरी दो आंखों में एक आंख नकली है और एक असली। क्या तुम पहचान के बता सकते हो कौन सी नकली है और कौन सी असली है?

उस युवक ने आंखों को थोड़ी देर गौर से देखा और फिर कहा, आपकी बाईं आंख असली है। वह राजनीतिज्ञ हैरान हुआ। उसने कहा, तुमने पहचाना कैसे। उसने कहा, आपकी बाईं आंख असली है। राजनीतिज्ञ ने पूछा, तुमने पहचाना कैसे?

उसने कहा, आपकी दायीं आंख जो कि नकली है, उसमें थोड़ी सहानुभूति दिखाई पड़ती है। असली आंख में तो आपके सहानुभूति

हो ही नहीं सकती, इतना मैं भी समझता हूं। तो जिस आंख में सहानुभूति दिखाई पड़ती है, उसको मैंने नकली समझ लिया। और जिसमें कोई सहानुभूति नहीं दिखाई पड़ती, उसको मैंने असली समझ लिया। ऐसे ही नाप-जोख करके मैंने बताया कि आपकी बांयी आंख असली है। बांयी आंख असली थी।

आदमी तो, हो सकता है कि उसकी आंख में न भी दिखाई पड़े। फिर जितना पंडित हो, जितने बड़े पद पर हो, जितना बड़ा ज्ञानी हो, जितना बड़ा संन्यासी हो, उतना ही उसकी आंख में दिखाई पड़ना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन हो सकता है सीधे-सीधे, सरल लोग, विनम्र लोग, जो कुछ भी नहीं हैं, जो नो-बडी हैं, उनकी आंखों में शायद परमात्मा की किताब का अभी भी कोई अंश आपको दिखाई पड़ जाय। लेकिन उतना सवाल किसी की आंख में दिखाई पड़ने का नहीं, पहले तो आपकी आंख देखने वाली होनी चाहिए। नहीं तो आपको कहीं भी दिखाई नहीं पड़ेगा।

जिनके पास देखने की आँख होती है, उन्हें तो न मालूम कैसी चीजों में क्या दिखाई पड़ जाता है, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते! एक वृक्ष से सूखा पत्ता गिरता हो और उनका जीवन बदल जाता है। एक मटकी फूट जाए और उनका जीवन बदल जाता है।

मैंने सुना है, एक युवा सत्य की खोज में था। और न मालुम कहां-कहां भटका। और एक दिन पतझड़ होती थी और वृक्ष से सूखे पत्ते गिर रहे थे और हवाएं उन पत्तों को जगह-जगह नचा रही थीं—पूर्व और पश्चिम। और वह युवक खड़ा देख रहा था—और वह नाच उठा, और उसे मिल गया, जिसकी वह खोज में था।

और बाद में जब लोग उससे पूछे, तुम्हें—मिला क्या उन सूखे पत्तों को हवा में उड़ते देखकर? उसने कहा, सूखे पत्तों को हवा में उड़ते देखकर मुझे मेरे सम्बन्ध में सारी बात समझ आ गई। मुझे दिखाई पड़ा—मैं भी एक पत्ते से ज्यादा कहां हूं। जिसे हवाएं पूरब

ले जाती हैं, तो पूरब जाता है; पश्चिम ले जाती हैं, तो पश्चिम जाता है। और तब से मैं एक सूखा पत्ता ही हो गया हूं। अब मेरा कोई रेजिस्टेंस नहीं है, अब जीवन के प्रति मेरा कोई विरोध नहीं। जीवन जहां ले जाता है, मैं चला जाता हूं।

और जिस दिन से मैंने अपना विरोध छोड़ दिया है जीवन से, उसी दिन से मेरे जीवन का सारा दुख विलीन हो गया। अब मैं जानता हूं कि मैं दुखी था, अपने कारण—चूंकि, मैं था। अब मैं सूखे पत्ते की तरह हूं—हवाएं जहां ले जाती हैं, चला जाता हूं। हवाएं नहीं ले जातीं, तो वहीं पड़ा रह जाता हूं। हवायें आकाश में उठा लेती हैं, तो अकाश में उठ जाता हूं। हवाएं नीचे गिरा देती हैं, तो नीचे गिर जाता हूं। अब मेरा अपना कोई होना नहीं है। अब मैं नहीं हूं। अब हवायें हैं और मैं एक सूखा पत्ता हूं। लेकिन यह मुझे एक सूखे पत्ते से ही दिखाई पड़ा था।

देखने वाली आंख होगी—तो दिखाई पड़ गया। नहीं तो सूखे पत्ते इस माथेरान में कितने नहीं हैं? और आपके पैरों के नीचे कितने नहीं आकर कुचला जाते होंगे? और आपकी आंखों के सामने कितने नहीं वृक्षों से गिर जाते होंगे?

लेकिन सूखे पत्ते क्या करेंगे। अगर सूखे पत्ते कुछ करते होते, तो बड़ी आसान बात थी। हम हर गांव में एक वृक्ष लगा लेते और उसमें से सूखे पत्ते टपकाते रहते, और गाँव में जो भी निकलता ज्ञान को उपलब्ध हो जाता। नहीं, लेकिन सूखे पत्ते में हम तभी देख पायेंगे, जब हम देखने में समर्थ हों।

एक युवक सत्य की खोज पर था। बहुत घूमा, बहुत भटका था। एक दिन कुए से पानी भर कर आ रहा था। दोनों कंधे पर लकड़ी डालकर दो मटकियां बांधी हुई थीं। लकडी छूट गई, मटकी फूट गई, पानी बह गया। वह नाच उठा, लोगों ने उससे पीछे पूछा, तुम्हें क्या हो गया? उसने कहा, मटकी क्या फूटी, मैं ही फूट गया। मटकी

के फूटने के क्षण में मुझे दिखाई पड़ा, अरे! मटकी में जो पानी था, वह भी सागर का था, लेकिन मटकी राके थी। मटकी फूट गई, पानी बह गया और एक हो गया उससे, जिससे वह एक था। केवल बीच में एक मिट्टी की दीवाल थी। उसी दिन मेरे मन की मटकी फूट गई और अब तो मेरे भीतर जो है, वह उस सागर से मिल गया, जो सबका सागर है। अब मैं नहीं हूं, परमात्मा ही है।

लेकिन मटकी फूटने से! घर में रोज मटकी फूट जाती है, घर-घर में मटकी फूटती रहती है। लेकिन किसी को यह नहीं दिखाई पड़ता! देखने वाली आंख चाहिए, तो कहीं भी दिखाई पड़ जाता है।

एक वृद्ध, एक घर के द्वार से निकलता था। सुबह घूमने निकला था। उस वृद्ध, का बचपन का नाम ही बुढ़ापे तक चलता आया था। उसे सभी लोग—बूढ़ा हो गया था, तो भी राजा बाबू ही कहते थे। घूमने निकला था, एक झोपड़े के भीतर—सूरज ऊग रहा था बाहर, कोई मां अपने बेटे को, या अपने देवर को, या किसी को उठाती होगी। और भीतर कह रही थी कि राजा बाबू उठो, कब तक सोए रहोगे? और यह राजा बाबू जो बाहर घमने निकले थे, एकदम ठिठक कर खड़े हो गए। उन्हें सुनाई पड़ा—राजा बाबू उठो, कब तक सोए रहोगे। वे वापस लौट पड़े।

घर आकर उन्होंने कहा, मैं दूसरा आदमी हो गया। अब राजा बाबू सोए नहीं रह सकते। मैं उठ गया। मुझे एक जगह बात सुनाई पड़ी और मैं बदल गया।

उस स्त्री को पता भी नहीं होगा कि बाहर भी कोई मौजूद था। उसे ख्याल भी नहीं होगा कि उसने जो कहा था...उसके राजा बाबू तो सोए ही रहे होंगे, क्योंकि राजा बाबू जिनको हम कहते हैं, वे जल्दी नहीं उठते। लेकिन बाहर एक आदमी जाग गया होगा, इसकी कल्पना भी नहीं थी। हम भी उस घर के सामने से निकल सकते हैं। घर-घर में औरतें राजा बाबूओं को उठाती रहती हैं, लेकिन हमको शायद ही वह बात सुनाई पड़े।

जीवन में तो सब कुछ है। आंख हमारे पास होनी चाहिए। वह आंख ध्यान से उपलब्ध होती है। ध्यान ही उस आंख का दूसरा नाम है। शांत क्षणों में, मौन क्षणों में, सायलेन्स में वह आंख उपलब्ध होती है।

थोड़ी सी बातें उस आंख, यानी ध्यान के सम्बन्ध में और फिर उसके बाद हम ध्यान के लिए बैठेंगे।

ध्यान के सम्बन्ध में दो-तीन छोटी सी बातें समझ लेनी बहुत जरूरी हैं।

एक तो···क्योंकि ध्यान ही आंख है। और उस ध्यान से ही परमात्मा का शास्त्र पढ़ा जा सकता है। और उस ध्यान से ही जीवन के जो छिपे हुए रहस्य हैं, वे अनुभव में आ सकते हैं।

तो ध्यान को ठीक से समझ लेना जरूरी है कि ध्यान क्या है?

ध्यान को समझने में जो सबसे बड़ी बाधा है, वह ध्यान के सम्बंध में हमारी बहुत सी धारणाएं हैं। वे धारणाएं रोक देती हैं—समझ हम नहीं पाते कि ध्यान क्या है।

ध्यान के सम्बंध में, एक तो, निरन्तर हजारों वर्षों से यह ख्याल पैदा हुआ है कि ध्यान कोई एफर्ट है, कोई प्रयत्न है, कोई चेष्टा है। कोई बहुत चेष्टा करनी है ध्यान के लिए। ध्यान चेष्टा नहीं है। बल्कि ध्यान चित्त की बड़ी निश्चेष्ट, बड़ी एफर्टलेस, बड़ी प्रयन्तरहित अवस्था और दशा है। जितनी आप ज्यादा चेष्टा करेंगे, उतना ही ध्यान मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि चेष्टा में आपका चित्त तन जाएगा, खिंच जाएगा—तनाव से बेचैन हो जाएगा और जो चित्त बेचैन है, वह ध्यान में नहीं जा सकता है।

तो ध्यान के सम्बंध में पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि ध्यान है एफर्टलेसनेस, समस्त प्रयास रहितता। कोई प्रयास नहीं है ध्यान।

क्या आप बैठे हैं आंख बन्द करके, प्राणायाम करके—दबा रहे हैं खुद के चित्त को, खींच रहे हैं; ला रहे हैं—यहां से वहां, इस

पर लगा रहे हैं, उस पर लगा रहे हैं? यह सब ध्यान नहीं है। यह होगा व्यायाम। इससे ध्यान का कोई सम्बन्ध नहीं। कोई कसरत करनी हो तो बात अलग है। यह कसरत है—इस तरह का जो ध्यान है।

मेरी दृष्टि में ध्यान तो एक विश्राम है, टोटल रिलेक्सेशन है। चित्त इतना निष्क्रिय, इतना अक्रिय, इतना निश्चेष्ट कि जैसे कुछ भी नहीं कर रहा है। जैसे कोई झील चुपचाप सोई है। और उस चुपचाप सोई झील में चांद का प्रतिबिम्ब बन रहा है, रिफ्लेक्शन बन रहा है। ऐसा ही चित्त जब एक झील की तरह शांत चुपचाप सोया है, चुपचाप मौन पड़ा है—तब, तब चित्त एक दर्पण बन जाता है। और उसमें जीवन का जो शास्त्र है, परमात्मा का जो शास्त्र है, वह प्रतिफलित होने लगता है, उसके प्रतिबिम्ब बनने लगते हैं।

तो ध्यान के लिए पहली तो बात है—कि हम प्रयास न करें। हमारा जीवन तो सब प्रयास है। हम जो भी करते हैं, प्रयास से ही करते हैं। अप्रयास का हमें कोई पता ही नहीं, कोई ख्याल ही नहीं। वह हमारे जीवन का अनुभव ही नहीं है।

लेकिन कुछ चीजें हैं, जो प्रयास से नहीं आतीं। अगर आप कोशिश करें नींद लाने की, तो आपकी कोशिश ही नींद नहीं आने देगी। करें, कोशिश करके देखें? किसी दिन नींद लाने की कोशिश करके देखें? करवट बदलें, जन्त्र-मन्त्र पढ़ें, कुछ और करें, कुछ देवी-देवताओं का स्मरण करें, और नीद लाने की कोशिश करें? उठें, बैठें, दौड़ें, नींद लाने की कोशिश करें? आप जितनी कोशिश करेंगे, नींद उतनी दूर हो जाएगी।

जिन लोगों को नींद न आने की बीमारी होती है, उनको असल में पता ही नहीं है, उनको नींद न आने की बीमारी नहीं है, उनको नींद लाने की बीमारी है। वह नींद लाने की जो कोशिश में पड़ गए हैं, तो एक चक्कर खड़ा कर लिया है, अब नींद उन्हें नहीं आ सकती। नींद न आने की बीमारी किसी को भी नहीं है। नींद लाने

की बीमारी जरूर कुछ लोगों को पैदा हो जाती है। और फिर, फिर नींद आनी बन्द हो जाती है। नींद लाने की कोशिश से नींद नहीं आ सकती, क्योंकि कोशिश नींद विरोधी है।

अमेरिका में कोई तीस प्रतिशत लोग बिना नींद की दवाओं के नहीं सो रहे हैं। और वहां के मनोचिकित्सकों का ख्याल है कि सौ वर्ष बाद अमेरिका में एक भी आदमी स्वाभाविक रूप से सोने में समर्थ नहीं रह जाएगा। एक ही शर्त ख्याल में रखकर—अगर अमरीका का आदमी बचा सौ साल बाद। तो ऐसा नहीं हो सकता कि कोई आदमी बिना ही दवा के सो जाय।

अगर सौ साल बाद अमेरिका के उन लोगों को कहा जाएगा कि एक जमाना ऐसा भी था कि लोग बस जाते थे, सिर रखा बिस्तर पर और सो जाते थे। तो क्या वे लोग विश्वास कर सकेंगे? क्या वे मान सकेंगे कि ऐसा भी कभी हो सकता है कि कोई आदमी जाय और बस सो जाय! हद हो गई। यह तो हो ही नहीं सकता।

अभी भी जिसको नींद नहीं आती है, उससे आप कहिये कि हम तो तकिए पर सिर रखते हैं और सो जाते हैं। तो वह कहेगा, आप क्या झूठी बातें कर रहे हैं, कोई तरकीब होगी जरूर आपकी, बताते नहीं हैं। क्योंकि मैं तो तकिए पर बहुत सिर रखता हूं, लेकिन नहीं सो पाता।

ध्यान भी इतनी ही सरल बात है, इतनी ही सरल। लेकिन प्रयास करिएगा तो बाधा पड़ जाएगी।

अभी हम, जब यहां अभी रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे, तो एक बात ख्याल में रखिए, कोई प्रयास नहीं करना है। ऐसा ढीले-ढाले चुपचाप रह जाना है, कोई चेष्टा नहीं करनी ध्यान लगाने की, लाने की कोई कोशिश नहीं करनी। फिर आप कहेंगे, हम क्या करेंगे? बस, आप एक ही कृपा करें, कुछ न करें। और ध्यान आना शुरू हो जाएगा।

लेकिन यह काम बड़ा कठिन है। अगर करने का होता तो आप कर देते, चाहे वह कितना ही कठिन होता। लेकिन न करने का काम बड़ा कठिन है। क्योंकि हमारी पकड़ में नहीं आता कि हम क्या करें? और न करने की हमारी कोई आदत नहीं है कि हम खाली बैठ जाएं और कुछ न करें। हम कहेंगे कुछ तो बताइये—राम-राम जपें, माला दे दीजिए, कुछ बताइए, हम कुछ करें?

मेरे पास रोज लोग आते हैं। वे कहते हैं, सब ठीक है। लेकिन आप कुछ तो बता दीजिए, कि हम करें। करने जैसा कुछ बता दीजिए तो फिर सब ठीक हो जाए। और कठिनाई यह है कि जैसे ही आपने करना शुरू किया, आप ध्यान के बाहर हो गए। करना याने ध्यान के बाहर हो जाना। न करना, नो-एक्शन, याने ध्यान में हो जाना। न-करने की सारी बात है। कुछ भी न करें।

लेकिन आप कुछ न भी करेंगे, तो भी भीतर तो विचार चलेंगे ही। उनकी तो आदत है निरन्तर की। वे भीतर गतिमान होते रहेंगे, उनका चक्कर भीतर चलता रहेगा। उनके साथ क्या करें? उनके साथ भी कुछ न करें। चुपचाप उन्हें देखते रहें। वे आपका बिगाड़ भी क्या रहे हैं? वे आपका क्या हर्ज कर रहे हैं? आपका कौन सा नुकसान हुआ जा रहा है? झींगुर बोल रहे हैं दरख्तों पर, आकाश में बादल चल रहे हैं, हवाएं बह रही हैं, ऐसे ही विचार चल रहे हैं—आप परेशान क्यों हैं उनसे?

लेकिन हमें सिखाया गया है, विचारों को रोको। विचारों को रोक लिया तो ध्यान हो जायगा। हो गई मुसीबत। विचार रोक नहीं सकेंगे आप और ध्यान कभी होगा नहीं।

विचार को रोकने की कोशिश ही विचार को निमन्त्रण है। विचार का सीधा सा सूत्र है। जिस चीज को हम रोकना चाहेंगे विचार के तल पर, वह चीज दुगने बल से आनी शुरू हो जाएगी। रोककर देखें कोई एकाध विचार। कोशिश कर लें कि इसको हम न आने देंगे।

सुनी होगी कथा आपने। तिब्बत के एक फकीर के पास एक युवक गया था। उससे चाहता था कोई मंत्र दे दे, कोई सिद्धि हो जाय। उस फकीर ने बहुत समझाया, कोई मंत्र मेरे पास नहीं, कोई सिद्धि मेरे पास नहीं, मैं बिल्कुल सीधा-साधा आदमी हूं। मैं कोई बाजीगर नहीं हूं, कोई मदारी नहीं हूं। किन्हीं मदारियों के पास जाओ। वैसे कई मदारी साधु-संन्यासी के वेश में उपलब्ध होते हैं, उन्हें खोज लो कहीं, वे शायद कोई तुम्हें मन्त्र दे दें।

लेकिन वह युवक माना नहीं। जितना उस साधु ने समझाया कि जाओ, उतना ही उसे लगा कि है कुछ इसके पास, रुको। पर उसे पता नहीं चला कि यही सीक्रेट था, इसी में वह उलझ गया। साधु धक्के देने लगा कि जाओ—दरवाजे बन्द करने लेगा।

हमारे मुल्क में...ऐसे साधु सारी दुनिया में होते हैं। पत्थर मारेंगे, गाली देंगे...जितना पत्थर मारेंगे, जितना गाली देंगे, उतने ही रसलीन भक्त उनके आसपास इकट्ठे होंगे ! क्योंकि यह आकर्षण बन गया कि जरूर कुछ होना चाहिये यहां। जहां कुछ होता है, वहां से भगाए जाते हैं। तो जरूर यहां कुछ होना चाहिए। कई होशियार लोगों को यह तरकीब पता चल गई। वे पत्थर फेंकने लगे, गाली देने लगे, गोबर फेंकने लगे, लोगों को चिल्लाने लगे, यहां मत आओ—और लोग वहां इकट्ठे होने लगे। इकट्ठा करने का यह एक ढंग हुआ।

उस साधु ने, विचारे को पता नहीं था, वह तो सहज ही उसे भगाता था, लेकिन वह युवक पीछे पड़ गया। वह आकर दरवाजे पर बैठा रहता, पैर पकड़ लेता। आखिर उसने देखा कि कोई रास्ता नहीं है, इसे मन्त्र देना ही पड़ेगा। और उसने मन्त्र दिया भी। लेकिन उसको मन्त्र मिल नहीं सका। एक कंडीशन, एक शर्त लगा दी और सब गड़बड़ हो गया।

सभी होशियार लोग कुछ न कुछ शर्त जरूर पीछे लगा देते हैं। ताकि जब मंत्र सिद्ध न हो तो कहने को रह जाय कि शर्त पूरी नहीं

हुई। नहीं तो मन्त्र तो बराबर सिद्ध होता। शर्त तुमने पूरी नहीं की, कसूर तुम्हारा है। और शर्त कुछ ऐसी होती है कि वे पूरी हो ही नहीं सकतीं।

उसने एक शर्त लगा दी। उसने कहा यह मन्त्र ले जाओ, पांच ही बार पढ़ना, सिद्ध हो जाएगा आज रात। लेकिन जैसे ही वह उतरने लगा, सीढ़ियों से मन्त्र लेकर। उसने कहा, ठहरो, मैं शर्त तो भूल ही गया बताना। उसके बिना तो कुछ होगा नहीं। कौन सी शर्त ? कहा, बन्दर का स्मरण न आए। बस पांच बार पढ़ लेना बिना बन्दर को स्मरण किए, सब ठीक हो जाएगा।

उस युवक ने कहा, क्या शर्त बताई है आपने भी फिजूल, जिन्दगी हो गई मुझे बन्दर का स्मरण नहीं आया। मैं कोई डार्विन का भक्त थोड़ी हूं कि मुझे बन्दर का स्मरण आता हो। मैं डार्विन को मानता ही नहीं। मैं यह विकासवाद, रेव्यूल्यूशन कुछ नहीं मानता। बन्दर से मेरा क्या नाता। बन्दर कोई मेरे मां-बाप थोड़ी हैं।

लेकिन उसे पता चला कि डार्विन को मानो या न मानो—बंदर पर रोक लगा दी गई थी, बन्दर आना शुरू हो गया। वह चला भी था, सीढ़ियां भी नहीं उतर पाया था कि उसने देखा भीतर बन्दर मौजूद हो गया। वह बहुत घबड़ाया। बाहर बन्दर हो तो भगा भी सकते हैं, भीतर हो तो क्या करें ? घर पहुंचते-पहुंचते उसने एक बन्दर को हटाने की कोशिश की, उसने पाया कि और बन्दर चले आ रहे हैं। घर पहुंचते-पहुंचते उसके मन में बन्दर ही बन्दर बैठ गए। सब तरफ से वे उसे चिढ़ा रहे हैं। सब तरफ से पूंछ हिला रहे हैं। अब बहुत मुश्किल हो गई।

वह तो बहुत घबराया कि अजीब बात है। आज तक जीवन में ये बन्दरों से कभी कोई सम्बन्ध नहीं रहा, कोई मैत्री नहीं रही ! कोई वास्ता नहीं रहा इन बन्दरों से, यह हो क्या गया है मुझे ! नहाया, धोया, सब उपाय किए, अगर-बत्ती जलाई, धूप-दीप जलाए—जैसे कि धार्मिक लोग करते हैं, जैसे इनसे कुछ हो जाएगा ! कमरा

बन्द किया, नहा-धोकर बैठा, लेकिन कितने ही नहाग्रो—धोग्रो, बन्दर कोई पानी से डरते नहीं हैं। ग्रौर कितने ही धूप-दीप जलाग्रो, बन्दरों को पता भी नहीं उनका। ग्रौर बन्दर बाहर होते तो कोई उपाय भी था। बन्दर थे भीतर। उनको निकालने का कोई रास्ता न था। वह जितनी ग्रांख बन्द करने लगा, रात जितनी बीतने लगी—मन्त्र हाथ में उठाता था, मन्त्र बाहर ही रह जाता था, बन्दर भीतर। सुबह तक वह घबड़ा गया। समझ गया कि यह मन्त्र इस जीवन में ग्रब सिद्ध नहीं हो सकता।

गया, साधु को मन्त्र वापस दिया ग्रौर कहा, ग्रगले जन्म में फिर मिलेंगे। लेकिन ख्याल रखना यह कंडीशन फिर से मत लगा देना। यह शर्त मत लगा देना दोबारा, मुश्किल हो जाएगा। यह बन्दर तो! हद हो गई! निकालना चाहा तो बन्दर मौजूद हो गए।

ग्राप भी कुछ निकालना चाहें, जिसे निकालना चाहें, वह मौजूद हो जाएगा। यह सीक्रेट ट्रिक है। यह तरकीब है भीतर कि ग्रापको समझाया जाता है विचारों को निकालो, फिर ग्राप ग्रांख बन्द करके बैठे हैं, वे निकलते नहीं हैं, वे ग्रौर चले ग्रा रहे हैं। ग्रब ग्राप परेशान हुए जा रहे हैं।

ग्रौर जिनने कहा है ग्रापसे, विचारों को निकालो, उन्हीं के पास पहुंच रहे हैं सलाह के लिए कि कैसे विचारों को निकालें! वे कहते हैं ग्रौर ताकत लगाग्रो। जितनी ग्राप ताकत लगाग्रोगे, उतना ही निकालना ग्रसम्भव होता चला जाएगा। ग्रौर तब ग्राप सिर पीट लोगे। ग्रौर उनसे पूछोगे कि एक्सप्लेनेशन क्या है इस बात का कि मैं निकालने की कोशिश करता हूं, विचार तो निकलते नहीं? वे कहेंगे, इसमें पिछले जन्मों का पापों का फल है! इसमें प्रारब्ध है! इसमें परमात्मा का हाथ है! इसमें ग्रौर न मालूम कितनी बातें वे ग्रापसे कहेंगे। ग्रौर ग्रापको वे भी मान लेनी पड़ेंगी, क्योंकि विचार ग्राप निकाल नहीं सकते। तो कोई एक्सप्लेनेशन तो चाहिए, कि ग्रापको समझ ग्रा जाए, कि विचार क्यों नहीं निकलते। ग्राप कमजोर हैं, पापी

हैं—वे पच्चीस बातें ग्रापको समझा दी जाएंगी। एक बात छोड़कर कि विचार इसलिए नहीं निकल रहे हैं, क्योंकि ग्राप उन्हें निकालना चाहते हैं। इतना सा सीक्रेट है, इतनी सी सच्चाई है बाकी सब बकवास है।

तो विचार को निकालने की कोशिश न करें।

फिर क्या करें?

तो चुपचाप देखते रहें। ग्राने दें, जाने दें—ग्राप देखते रहें। देखने में इतनी घबड़ाहट क्या है, इतना डर क्या है? लेकिन डर है, ग्रौर ग्रापको पता नहीं है। ग्रौर जब तक ग्रापको उस भय का, उस फिग्रर का पता न हो जाय, तब तक ग्राप देखने में भी समर्थ नहीं हो सकते। मैं लाख कहूं कि देखते रहें—ग्राप देख नहीं सकते। क्योंकि देखने के पीछे भी हजारों साल की परम्परा ने एक भय पैदा कर दिया। वह परम्परा यह कहती है कि बुरे विचार मन में नहीं होने चाहिए। सो सब बुरे विचार भीतर दबाकर उनके ऊपर बैठ गए हैं ग्राप। तो जब भी ग्राप शान्त होकर देखना शुरू करेंगे तो ग्रच्छे विचार तो कम ग्राएंगे, बुरे विचार ज्यादा ग्राएंगे। फिजूल विचार ज्यादा ग्रायेंगे, जिनको ग्राप दबाकर बैठे हुए हैं। ग्रौर उनसे डर लगता है, क्योंकि सिखाया गया है, बुरे विचार नहीं होने चाहिए। उस भय के कारण देख भी नहीं सकते। भय के कारण दबाना चाहते हैं। दबाते हैं, उपद्रव शुरू हो जाता है। मन में बन्दर इकट्ठे होने लगते हैं। फिर मन्त्र सिद्ध नहीं हो सकता है।

पहली बात। यह भय छोड़ दें कि बुरा विचार है या ग्रच्छा विचार है। सब विचार एक जैसे हैं। सब विचार एक जैसे हैं। विचार सिर्फ विचार हैं। उनको तो सिर्फ देखें। यह भय मन से निकाल दें कि बुरा विचार न उठ ग्राए कहीं। जो भी विचार चल रहे हैं, उनके चुपचाप साक्षी रह जाएं—उन्हें चलने दें, बुरा चले तो बुरे को, ग्रच्छा चले तो ग्रच्छे को। ग्राप कौन हैं बाधा देने वाले? ग्राप कौन हैं निर्णय करने वाले कि कौन बुरा है, कौन ग्रच्छा? ग्राप क्यों यह जजमेंट लेना चाहते हैं? यह क्यों ग्राप तय करना चाहते हैं कि यह

अच्छा है, यह बुरा ? आपको पता है क्या अच्छा है, और क्या बुरा है ?

काश ! यही पता होता तो सब बदल गया होता अब तक। यह बिल्कुल पता नहीं है। तो चुपचाप निकलने दें जो भी निकल रहा है। लाल मुंह के बन्दर अच्छे हैं और काले मुंह के बन्दर बुरे हैं— ऐसा मत सोचें। बन्दर, बन्दर हैं—चाहे लाल मुंह के, चाहे काले मुंह के।

वह अच्छे और बुरे का सवाल न रखें। अच्छे और बुरे के कारण ही आपका चित्त दुविधा से भर जाता है। डर जाते हैं आप कि कहीं बुरा विचार तो नहीं आ रहा है।

नहीं, विचार सब एक जैसे हैं। न कोई बुरा है और न कोई अच्छा है। विचार, विचार हैं। आप सिर्फ देख रहे हैं। एक रास्ते पर खड़े हैं, लोग जा रहे हैं। एक साधु जी जा रहे हैं, वे बहुत अच्छे हैं। एक चोर जा रहा है, वह बहुत बुरा है। आपको क्या लेना-देना है—वे रास्ते से जा रहे हैं ?

और किसको पता कौन अच्छा है, कौन बुरा है। हो सकता है साधुजी चोरी का विचार कर रहे हों और हो सकता है चोर साधु हो जाने की योजना बना रहा हो। कोई पक्का नहीं है। कोई हिसाब तय नहीं है कि कौन, कौन है।

तो भीतर क्या क्या है—इसका बहुत ज्यादा निर्णय आप करेंगे, तो आप जागरुक नहीं हो सकते। आप निर्णय में उलझ जाएंगे और निर्णय में उलझ गए तो आप विचार में उलझ जायेंगे। और विचार में आप उलझ गए तो—वह तो आप उलझे ही हुऐ हैं, उससे निकलने का कैसे रास्ता बन सकता है ?

ख्याल में लें यह बात कि विचार सिर्फ विचार हैं। और हम केवल तटस्थ साक्षी हैं। हम सिर्फ देख रहे हैं। न उन्हें निकालना है, न निकालने की कोई जरूरत है, न कोई सवाल है। सिर्फ देखना है। और जैसे-जैसे आपका देखना गहरा होगा, आप पाएंगे कि जिनको आप कभी नहीं निकाल पाए थे, वे नहीं आ रहे हैं। जैसे-जैसे देखना गहरा होगा, आप पायेंगे —न अच्छा, न बुरा, कोई भी नहीं आ रहा है।

जिस दिन देखना पूरा होता है, जिस दिन वह अन्तर्दृष्टि पूरी सजग होती है, उस दिन कोई विचार नहीं रह जाता। न अच्छा, न बुरा—विचार—मात्र नहीं रह जाता है।

तो लोग आपसे कहेंगे कि विचार अलग कर दें, तो ध्यान उपलब्ध हो जाएगा। मैं आपसे उल्टी बात कहना चाहता हूं, ध्यान को उपलब्ध हो जाएं, विचार विलीन हो जाएंगे।

और ध्यान का अर्थ है : दर्शन, देखना।

वह जो विचारों की धारा बह रही है, उसे देखना चुपचाप।

इस प्रयोग को अभी हम करेंगे।

○

साधना—शिविर माथेरान, दिनांक १६।१०।६६, रात्रि

५. क्रान्ति का क्षण

मेरे प्रिय आत्मन्

एक बहुत पुरानी कथा है। किसी पहाड़ की दुर्गम चोटियों में बसा हुआ एक छोटा सा गांव था। उस गांव का कोई सम्बन्ध, वृहत्तर मनुष्य जाति से नहीं था। उस गांव के लोगों को प्रकाश कैसे पैदा होता है, इसकी कोई खबर न थी।

लेकिन अंधकार दुखपूर्ण है, अंधकार भयपूर्ण है, अंधकार अप्रीतिकर है—इसका उस गांव के लोगों को भी बोध होता था। उस गांव के लोगों ने अंधकार को दूर करने की बहुत चेष्ठा की। इतनी कि वे अंधकार को दूर करने के प्रयास में करीब-करीब समाप्त ही हो गए। वे रात को टोकरियों में अंधकार को भरकर घाटियों में फेंक आते। लेकिन पाते कि टोकरियां भरकर फेंक भी आएं हैं, फिर भी अंधकार अपनी ही जगह बना रहता है। उन्होंने बहुत उपाय किए। वह पूरा गांव पागल हो गया अंधकार को दूर करने के उपायों में। अंधकार को धक्के देने की कोशिश करते, तलवारों, लाठियों से अंधकार को धमकाते। लेकिन अंधकार न उनकी सुनता, न उनसे हटता, न उनसे मिटता। और अंधकार को मिटाने की कोशिश में और बार-बार हार जाने के कारण वे इतने दीन-हीन, इतने दुखी, इतने पीड़ित हो गए कि उन्हें जीवन में कोई रस, जीवन में कोई आनन्द फिर दिखाई नहीं पड़ता था। एक ही बात दिखाई पड़ती थी कि शत्रु की तरह अंधकार खड़ा है। और उस पर वे विजय पाने में असफल हैं। आखिर वह गांव अंधकार को दूर करने की कोशिश में पागल हो गया।

उस गांव में एक यात्री भूला-भटका हुआ पहाड़ों पर किसी दूसरे गांव का पहुंचा, उस गांव से निकला। उसने उस गांव की हालत देखी। वह हैरान हो गया। उसे विश्वास न आया कि अंधकार को दूर करना भी इतनी कठिन बात है क्या। अंधकार से भी हारने की कोई वजह, कोई कारण है क्या?

उसने उस गांव के लोगों को कहा कि पागल हो तुम। अंधकार बहुत शक्तिशाली नहीं है। तुम इसलिए नहीं हारते हो कि अन्धकार शक्तिशाली है और तुम कमजोर हो। तुम हारते इसलिए हो कि तुम अंधकार को सीधा हटाने का उपाय करते हो। अंधकार सीधा नहीं हटाया जा सकता है। इसलिए नहीं हटाया जा सकता कि अंधकार की कोई सत्ता, कोई एक्जिस्टेन्स ही नहीं होता है। अंधकार केवल प्रकाश की अनुपस्थिति का नाम है। वह तो केवल प्रकाश की एबसेन्स है। उसका अपना कोई होना नहीं है कि तुम उसे हटा सको।

अंधकार को मत हटाओ, प्रकाश को जलाओ। और प्रकाश जल आता है, तो अन्धकार कहीं भी नहीं पाया जाता है। उसने दो पत्थरों से चोट की और प्रकाश को जलाकर उन्हें बताया। वे हैरान हो गए। वे अपनी आंखों पर विश्वास न कर सके कि जो बात इतनी कठिन थी, वह इतनी सरल निकलेगी। प्रकाश आया और अंधकार नहीं था।

पता नहीं यह कहानी कहां तक सच है। और सच हो या न हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन पूरी मनुष्य जाति अंधकार को दूर करने में लगी हुई है! और अंधकार को दूर करने की इस चेष्ठा में अंधकार तो दूर नहीं होता, प्रकाश भी उपलब्ध नहीं होता—लेकिन मनुष्य जरूर दीन-हीन फ्रस्ट्रेटेड, मनुष्य जरूर चिन्तातुर, मनुष्य जरूर तनाव से भर जाता है और इस सीमा तक यह बात पहुंच जाती है कि मनुष्य विक्षिप्त हो उठता है।

आज हम करीब-करीब रुग्ण और विक्षिप्त हैं। और इस सारी विक्षिप्तता के पीछे, इस पागलपन के पीछे, जिसमें मनुष्य जाति ग्रसित है—मनुष्य के इस चित्त की रुग्णता के पीछे एक ही, एक ही बात काम कर रही है—वही जो उस गांव में काम कर रही थी।

हम अंधकार को दूर करने के प्रयास में संलग्न हैं। प्रकाश को जलाने के प्रयास में नहीं—अंधकार को दूर हटाने के प्रयास में। हर मनुष्य अस्वस्थ, बीमार और रुग्ण है चित्त के तल पर, क्योंकि वह

अंधकार को दूर करने की कोशिश में लगा है। अंधकार दूर नहीं किया जा सकता। इसका यह अर्थ नहीं हैं कि अंधकार दूर नहीं हो सकता। अंधकार निश्चित ही दूर हो जाता है। लेकिन प्रकाश के जलने से। सीधे अंधकार के साथ कुछ भी करने का उपाय नहीं है। वह है ही नहीं, उसके साथ करने का उपाय होगा कैसा ?

हम सब एक निगेटिव, एक नकारात्मक जीवन—विधि से पीड़ित हैं। अंधकार को दूर करने की विधि से पीड़ित हैं। स्वभावतः हम अपने भीतर हिंसा दूर करना चाहते हैं, घृणा दूर करना चाहते हैं, क्रोध दूर करना चाहते हैं, द्वेष, लोभ, मोह दूर करना चाहते हैं, ईर्ष्या दूर करना चाहते हैं। ये सब अन्धकार हैं। इनको दूर नहीं किया जा सकता सीधा। इनकी अपनी कोई सत्ता नहीं है।

क्रोध, घृणा, द्वेष या ईर्ष्या किसी के अभाव हैं, किसी प्रकाश की अनुपस्थिति है। स्वयं किसी चीज की मौजूदगी नहीं है। घृणा-प्रेम की अनुपस्थिति है। जैसे अंधकार प्रकाश की अनुपस्थिति है। घृणा को दूर नहीं किया जा सकता सीधा। न द्वेष को, न ईर्ष्या को, न हिंसा को। और जब हम इनको सीधा दूर करने में लग जाते हैं, तो अगर हम पागल न हो जाएं तो और क्या होगा। क्योंकि वे दूर नहीं होते। उनको दूर करने की सारी कोशिश व्यर्थ सिद्ध हो जाती है और जब वे दूर नहीं होते तो, दो ही उपाय रह जाते हैं—या तो व्यक्ति पागल हो जाता है, या पाखंडी हो जाता है—जब वे दूर नहीं होते, तो उन्हें छिपा लेता है, ऊपर से जाहिर करने लगता है, वे दूर हो गए और भीतर, भीतर वे उबलते रहते हैं, भीतर वे मौजूद रहते हैं, भीतर वे चित्त की परतों पर सरकते रहते हैं। ऐसा दोहरा व्यक्तित्व पैदा हो जाता है। एक जो ऊपर से दिखाई पड़ने लगता है। और एक, एक जो भीतर होता है।

इस द्वैत में इतना तनाव है, इतनी अशान्ति है—इतनी कान्फ्लिक्ट होगी ही, क्योंकि जब एक आदमी दो हिस्सों में टूट जायगा—

एक जैसा वह है, और एक जैसा वह लोगों को दिखलाता है कि मैं हूं।

मैंने सुना है लंदन में एक बहुत बड़ा फोटोग्राफर था। उसने अपने स्टुडियो के सामने एक तख्ती लगा रखी थी। उस तख्ती पर उसने लिख रखा था अपनी फोटो उतारने के दाम की सूची लिख रखी थी। उस पर उसने लिख रखा था—जैसे आप हैं, अगर वैसा ही फोटो उतरवाना है, तो पांच रुपया जैसे आप दिखाई पड़ते हैं, अगर वैसी फोटो उतरवानी है, तो दस रुपया। जैसा आप चाहते हैं कि दिखाई पड़ें, अगर वैसी फोटो उतरवानी है, तो पन्द्रह रुपया।

एक गांव का ग्रामीण पहुंचा। वह भी चित्र उतरवाना चाहता था। वह हैरान हुआ कि चित्र भी क्या तीन प्रकार के हो सकते हैं। और उसने उस फोटोग्राफर से पूछा कि क्या पांच रुपये को छोड़कर कोई दस और पन्द्रह का फोटो भी उतरवाना होता है ?

उस फोटोग्राफर ने कहा, तुम पहले आदमी हो, जो पांच रुपये वाला फोटो उतरवाने का विचार कर रहे हो। अब तक तो यहां कोई पांच रुपये वाला फोटो उतरवाने नहीं आया। जिनके पास पैसे होते हैं, वे पन्द्रह रुपये वाला ही उतरवाते हैं। मजबूरी, पैसे कम हों, तो दस रुपये वाला उतरवाते हैं। लेकिन मन उनका पन्द्रह वाला ही रहता है, कि उतरे तो अच्छा। पांच रुपये वाला तो कोई मिलता नहीं। जो, जैसा है, वैसा कोई भी उतरवाना नहीं चाहता है।

हम अपने व्यक्तित्व को ऐसी पर्त-पर्त ढांके हुए हैं। इससे एक पाखंड पैदा हुआ है। इस पाखंड से सारा मनुष्य चित्त रुग्ण हो गया है। और अगर कोई बहुत जिद्दी हो और अगर कोई पाखंडी न होना चाहता हो और आग्रह करता रहे अंधकार को, घृणा को, क्रोध को हटाने का, तो उसके लिए विक्षिप्त हो जाने के सिवाय कोई उपाय नहीं। वह पागल हो जाएगा।

सभ्यता के बढ़ने के साथ-साथ पागलों की संख्या अकारण ही

नहीं बढ़ती गई है। जितना सभ्य मुल्क, उतनी ही पागलों की अधिक संख्या।

अमेरिका शायद सभ्यता में अग्रणी है, इसलिए सर्वाधिक पागल वहां होते हैं। और एक न एक दिन यह बात जब समझ में आ जाएगी कि सभ्यता और पागलों का कोई अनिवार्य सम्बन्ध है, तो आप पक्का समझ लें, जिस मुल्क को पूरा सभ्य होना हो, उसे पूरा पागल हो जाना पड़ेगा। या अगर कोई कौम बिल्कुल पागल हो जाय, तो समझ लेना कि वह सभ्यता के शिखर पर पहुंच गई है।

यह जो, अगर हम चित्त की बदलाहट की कोई गलत कीमिया, कोई गलत केमिस्ट्री पकड़ लेंगे, तो स्वभावतः चित्त विकृत हो जाएगा।

आज की सुबह मुझे स्वस्थ चित्त के सम्बन्ध में ही थोड़ी बात करनी है। कल मैंने युवा, ताजा, नया चित्त होना चाहिए इस सम्बन्ध में आपसे कुछ कहा था। दूसरे दिन की सुबह, आज, मैं स्वस्थ-चित्त होना चाहिए, इस सम्बन्ध में कुछ कहना चाहता हूं। क्योंकि स्वस्थ चित्त न हो, तो सत्य की कोई अनुभूति सम्भव नहीं है।

लेकिन स्वस्थ चित्त होना चाहिए, इसे समझने के लिए, यह समझ लेना जरूरी है कि यह चित्त अस्वस्थ कैसे हो गया है। यह अनहेल्दी माइन्ड पैदा कैसे हो गया है? यह आदमी का चित्त इतना ज्वर-ग्रस्त, इतना विकृत, इतना कुरूप कैसे हो गया है? इतना अग्ली कैसे हो गया? क्या बीमारी इस चित्त को लग गई है?

इस चित्त को अन्धकार को दूर करने की बीमारी लग गई है। एक बीमारी तो है अन्धकार को दूर करने की। और जब यह अन्धकार दूर नहीं होता—जिसे हम बुरा कहते हैं, जिसे हम पाप कहते हैं, जिसे हम अनीति कहते हैं—जब वह दूर नहीं होती, तो फिर क्या करे आदमी? फिर दो ही रास्ते हैं—या तो पागल हो जाय, या पाखंडी हो जाय।

फिर क्या करें?

तीसरा रास्ता भी है एक। और वह यह कि वह किन्हीं आदर्शों

की कल्पना में जो है, उसे भूल जाय, एक एस्केप ले ले, एक पलायन ले ले। हिंसक आदमी है. वह अहिंसा का आदर्श बना ले और अहिंसा की योजना और कल्पना में लीन हो जाय और हिंसा को भूल जाय। क्रोधी आदमी है, वह क्षमा का आदर्श बना ले, क्षमा की योजना में लग जाय कि कल मैं क्षमाशील हो जाऊंगा। और कल की इस योजना में आज जो क्रोध है, उसे भूल जाय।

यह तीसरा विकल्प भी मनुष्य के चित्त को अस्वस्थ करता है। क्योंकि तब उसके आज और कल में एक तनाव, एक टेन्शन पैदा हो जाता है। वह कल की कल्पना में जीने लगता है और असलियत में जीता है आज। जो आदमी कल अहिंसक होने का विचार कर रहा है कि मैं कोशिश करके कल अहिंसक हो जाऊंगा, प्रेमपूर्ण हो जाऊंगा, क्षमाशील हो जाऊंगा, वह आज क्रोधी है, हिंसक है। और हिंसक आदमी अहिंसक बनने की कोशिश भी करेगा, तो उस कोशिश में भी हिंसा मौजूद रहेगी।

इसलिए तथाकथित अहिंसक साधु-संन्यासी, साधक इतनी गहरी हिंसा में संलग्न होते हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं। यह जरूर बात सच है कि वे हिंसा दूसरे पर न करके अपने पर ही करते हैं। हिंसा की धारा वे अपने पर ही लौटा लेते हैं। वे खुद के ही विनाश में, खुद के ही डिस्ट्रक्शन में संलग्न हो जाते हैं। और किस-किस भांति वे अपने को पीड़ा देने लगते हैं, और उन्हें ख्याल भी नहीं होता कि यह सब हिंसा है। लेकिन वे अहिंसा की साधना के लिए यह सब कर रहे हैं।

हिंसक आदमी अहिंसक हो कैसे सकता है? वह जो कुछ भी करेगा, उसमें हिंसा होगी। अहिंसा की साधना भी करेगा, तो हिंसा होगी। उसका माइन्ड तो वायलेन्ट है, वह तो हिंसक है। इसलिए जो भी वह मन करेगा, उसमें हिंसा होगी। क्रोधी आदमी प्रेम की तैयारी करेगा, तो उसमें भी क्रोध होगा। बातें प्रेम की होंगी, पीछे क्रोध होगा।

मैंने सुना है। एक क्रोधी बाप का बेटा घर छोड़कर भाग गया था। उसने अखबार में विज्ञापन निकलवाया कि प्यारे बेटे तुम वापस आ जाओ। तुम्हारी मां तुम्हारे प्रेम में बहुत दुखी है और रात-दिन रो रही है। मैं खुद भी तुम्हारे प्रेम में पागल हुआ जा रहा हूं। शीघ्र वापस लौट आओ। और अंत की पंक्ति थी कि अगर वापस न लौटे तो चमड़ी उधेड़ दूंगा।

वह सारी प्रेम की बातचीत—और शायद क्रोध में उसे ख्याल ही न रहा कि अगर वापस न लौटे तो चमड़ी उधेड़ दूंगा। तो तुम चमड़ी उधेड़ोगे कहां, जब वह वापस ही नहीं लौटेगा?

लेकिन लड़का फिर वापस नहीं लौटा। क्योंकि लड़के ने समझ लिया होगा कि न लौटने पर तो चमड़ी नहीं उधेड़ी जा सकती, लेकिन लौटने पर उसका उधेड़ा जाना निश्चित है।

यह विचारे का प्रेम कितने दूर तक जाएगा—ऊपर-ऊपर होगा। पीछे? पीछे वह मौजूद है आदमी, जो वह है। हमारी सारी इन आदर्शों की बातचीत में—प्रेम की, अहिंसा की, दया की—भीतर हमारी हिंसा, हमारा क्रोध, हमारी क्रूरता सब मौजूद होती है।

मैंने सुना है एक सुबह एक पति अपना अखबार पढ़ रहा था। उसकी पत्नी ने उसे अखबार पढ़ते देखकर चिन्ता अनुभव की होगी। क्योंकि पत्नियां यह कभी पसन्द नहीं करतीं कि उनका पति उनके अतिरिक्त और किसी चीज में उत्सुक हो। अखबार में भी उत्सुक हो तो ईर्ष्या पैदा होती है। तो उस पत्नी ने कहा कि ऐसा मालूम होता है कि अब तुम मुझे प्रेम नहीं करते। मैं आधे घन्टे से बैठी हूं, लेकिन तुमने मेरी तरफ देखा नहीं, तुम अपना अखबार ही पढ़े जाते हो। उसके पति ने कहा, गलती में हो तुम। अब तो मैं तुम्हें और भी ज्यादा प्रेम करता हूं। अब तो तुम्हारे बिना एक भी क्षण नहीं जी सकता। तुम्हीं मेरी श्वांस, तुम्हीं मेरी प्राण हो। और आखीर में कहा कि अब बकवास बन्द करो, अब मुझे अखबार पढ़ने दो। अब बहुत हो गया, अब बकवास बन्द करो, अब मुझे अखबार पढ़ने दो!

एक ऊपर, एक आवरण जीवन में हम प्रेम का ओढ़े बैठे रहते हैं। और पीछे? पीछे वह हमारी सारी क्रूरता और सारी हिंसा मौजूद होती है। अगर आदमी को जरा खरोंच दो, उसका सारा झूठ व्यक्तित्व खतम और उसके भीतर से असली आदमी बाहर। जरा किसी के पैर पर चोट लगा दो, जरा किसी को धक्का दे दो—वह गई बात, वह जो ऊपर से आदमी था, विलीन हो गया, दूसरा आदमी मौजूद हो गया। इस आदमी का पता भी नहीं था कि यह इतनी सी ही दूरी पर, पास ही मौजूद है।

हम सब के भीतर वह आदमी मौजूद हो और उस आदमी की मौजूदगी और ऊपर से यह आवरण—झूठा—विरोधी। और हमेशा विरोध के भीतर हिंसा मालूम पड़ती है। तो जो अपोजिट है, जो विरोधी है—अहिंसा, उसका वस्त्र ओढ़ लिया। भीतर क्रोध है, तो हमने ऊपर क्षमा का वस्त्र ओढ़ लिया।

आदमी का चित्त विकृत है, इस अपोजिट के कारण। यह जो विरोधी ओढ़े हुए है, इसके कारण मनुष्य कभी स्वस्थ नहीं हो सकता। क्योंकि इस विरोधी के ओढ़ने से वह जो भीतर है, वह नष्ट नहीं होगा। बल्कि वह नष्ट हो सकता था, अगर यह विरोधी न ओढ़ा जाता। क्योंकि उसके साथ जीना बहुत कठिन था। उसके साथ एक क्षण जीना कठिन था। इस विरोधी को ओढ़ लेने के कारण उसके साथ जीना आसान हो गया है।

अगर किसी भिखमंगे को यह ख्याल हो जाए कि मैं सम्राट हूं—और ऐसा अक्सर भिखमंगों को ख्याल हो जाता है, तो फिर भिखमंगेपन के मिटने की कोई सम्भावना न रही। उसे तो ख्याल है कि मैं सम्राट हूं! तो अब उसके भिखमंगेपन के मिटने का क्या मार्ग रहा?

लेकिन इस ख्याल से वह सम्राट हो नहीं जाता है। रहता तो भिखमंगा ही है। एक सपना ओढ़ लेता है सम्राट के होने का। और इस सपने ओढ़ लेने के कारण भिखमंगा में रहने की सुविधा मिल

जाती है। अगर यह ख्याल न हो कि मैं सम्राट हूं और वह जाने कि मैं भिखारी हूं, तो भिखारी होने के साथ जीना कठिन है। उसे बदलना होगा, उसे भिखारीपन से छुटकारा और मुक्ति पानी होगी।

अगर एक बीमार आदमी को ख्याल हो जाए कि मैं स्वस्थ हूं, तो फिर ? फिर उसकी बीमारी के उपचार की क्या सम्भावना रही ? वह अपनी बीमारी को मिटाने के लिए क्या करेगा ?

वह कुछ भी नहीं करेगा। लेकिन इस ख्याल से कि मैं स्वस्थ हूं, वह स्वस्थ हो नहीं जाता है, रहता तो बीमार है। लेकिन इस ख्याल के कारण बीमारी को भीतर सरकने का, जीने का, मौका मिल जाता है। बीमारी की मिटने की सारी सम्भावना समाप्त हो जाती है।

बीमारी को मिटाने के लिए, बीमारी को पूरी को पूरी तरह जानना जरूरी है। बीमारी से मुक्त होने के लिए बीमारी को भुलाना सबसे घातक बात है। और हम सब अपनी बीमारियों को भुलाकर बैठ जाते हैं ! हम सब तरकीबें निकाल लेते हैं कि बीमारी भूल जाए ! और फिर बीमारी जीती है, भीतर सरकती है। अपरिचित और अनजान हो जाने के कारण, अनकान्शस हो जाने के कारण, अचेतन हो जाने के कारण, हमारा उससे ऊपर से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता, लेकिन प्राणों को भीतर-भीतर वह रौंद डालती है। मनुष्य इसलिए अस्वस्थ है। मनुष्य का चित्त इसलिए अस्वस्थ है।

इस पूरी बात को अगर हम संक्षिप्त में समझें, तो इसका यह अर्थ हुआ कि मनुष्य तथ्यों को छिपाने के लिए आदर्शों का उपयोग करता है। वह जो फैक्टस् हैं, उनको छिपाने के लिए फिक्शन खड़े करता है। जो तथ्य हैं जो सच्चाइयां हैं, उन्हें छिपाने के लिए झूठी कल्पनाएं और आदर्शों के कारण तथ्यों को भूल जाता है लेकिन तथ्य हैं, वे भूलने से मिटते नहीं हैं।

अगर कोई चीजें भूलने से मिटती होतीं, तब तो बहुत आसान बात थी। तब तो एक आदमी शराब पी लेता और और दुख मिट जाता। लेकिन शराब पीने से दुख मिटता नहीं, केवल भूलता है।

आदर्शों की शराब पीलेने से भी जीवन के तथ्य बदलते नहीं, मौजूद रहते हैं।

यह हमारा ही देश है—यह अहिंसा की शराब हजारों साल से पी रहा है। लेकिन एक भी आदमी अहिंसक नहीं हो पाया है। हिंसा मौजूद है। हमारे चित्त में सब तरफ हिंसा मौजूद है। लेकिन हम अहिंसा की बातें करके अपनी हिंसा को छिपाए रखते हैं ! जरा सी चोट और हमारे हिंसा के फव्वारे निकलने शुरू हो जाते हैं। हमारे कवि हिंसा के गीत गाने लगते हैं। हमारे नेता हिंसा की बात करने लगते हैं। हमारे साधु-संन्यासी भी कहने लगते हैं, अहिंसा की रक्षा के लिए अब हिंसा की बहुत जरूरत है। वह सारी अहिंसा एक क्षण में विलीन हो जाती है ! हम हजारों साल से प्रेम की बातें करते रहे हैं। लेकिन हमारे जीवन में कहां है प्रेम ? हम दया की, सेवा की बातें करते रहे हैं। कहां है दया और कहां है सेवा ? और हमारी सारी सेवा और हमारी सारी दया भी हमारे गहरे से गहरे स्वार्थों की अनुचर हो गई है।

एक आदमी को मोक्ष जाना है, इसलिए वह दया करता है, दान करता है ! यह दया और दान है या कि सौदा है ? एक आदमी को आत्मा को पाना है, इसलिए वह सेवा करता है गरीबों की ! यह सेवा है या अपने स्वार्थ के लिए गरीब को भी उपकरण बनाना है ?

एक चर्च में एक पादरी ने रविवार के दिन आने वाले बच्चों को समझाया कि जिन्हें भी स्वर्ग जाना है, उन्हें सेवा जरूर करनी चाहिए। उन बच्चों ने पूछा, हम कैसे सेवा करें, क्योंकि स्वर्ग तो हम सब जाना चाहते हैं ? उस पादरी ने कहा कई प्रकार हैं सेवा के। डूबता हुआ कोई हो, तो उसे बचाना चाहिए। किसी घर में आग लग गई हो, तो जाकर घर का सामान या व्यक्तियों को बाहर निकालना चाहिये। या बहुत सरल सी बात, कोई भी, किसी तरह की सहायता पहुंचानी हो, तो पहुंचानी चहिए।

अगले रविवार को जब वे बच्चे फिर आये, तो उस पादरी ने पूछा, तुमने कोई सेवा का कार्य किया ? तीन बच्चों ने हाथ उठाए। एक बच्चे से पूछा, उसने क्या किया ? उसने कहा, मैंने एक बूढ़ी औरत को सड़क पार करवाई । उसने धन्यवाद दिया कि खुश हूं मैं, तुमने बहुत अच्छा काम किया। दूसरे बच्चे से पूछा, तुमने क्या किया ? उसने कहा मैंने भी एक बूढ़ी औरत को सड़क पार करवाई। वह थोड़ा हैरान हुआ। लेकिन फिर उसको भी धन्यवाद दिया। और तीसरे से पूछा, तुमने क्या किया ? उसने कहा, मैंने भी एक बूढ़ी औरत को सड़क पार करवाई।

वह बहुत हैरान हुआ। उसने कहा, क्या तीन बूढ़ी औरतें तुम्हें पार करवाने को मिल गईं। उन तीनों ने कहा, तीन कहां, एक ही बूढ़ी औरत थी। तो वह बहुत हैरान हुआ कि तुमको, तीन को उसे पार करवाना पड़ा ! उन तीनों ने कहा, वह पार होना ही नहीं चाहती थी, बड़ी मुश्किल से पार करवाया। वह तो बिल्कुल भागती थी— पकड़कर, बिल्कुल जबरदस्ती हमने पार करवाई। क्योंकि स्वर्ग जाना तो जरूरी है, और सेवा करनी ही पड़ेगी।

उस पादरी ने कहा, अब कृपा करके ऐसी मत करना। अच्छा किया कि तुमने औरत को ही पार करवाया। कहीं मकान में आग लगवाकर लोगों को नहीं बचाया। या किसी को नदी में डुबाकर प्राण नहीं बचाए। यही बहुत है। अब तुम और सेवा मत करना।

सेवकों ने दुनिया में ऐसे बहुत से काम किए हैं। लेकिन उन्हें सेवा करनी जरूरी है, क्योंकि स्वर्ग जाना जरूरी है। यह सारी सेवा, ये सारे दान, ये सारी दया, ये सारी अहिंसा की बकवास—हमारे भीतर जो असली आदमी है, उसको छिपा लेती है। और वह जो असली आदमी है, वही है। जो कुछ भी होना है, उसके द्वारा होना है। जो भी जीवन में क्रांति या न—क्रांति, जीवन में कोई परिवर्तन या न—परिवर्तन, जो कुछ भी होना है, उस असली आदमी से होना है, उस फैक्चुअल आदमी से, जो मैं हूं, जो आप हैं।

यह आदर्शों से कुछ भी होना नहीं है। लेकिन आदर्शों में हम अपने को छिपा लेते हैं। एक बुरा आदमी अच्छे बनने की कोशिश में यह भूल जाता है कि मैं बुरा आदमी हूं। यही वह भूलना चाहता है। यही वह भूलना चाहता है कि मैं बुरा आदमी हूं।

इसलिए सब बुरे आदमी अच्छे आदर्शों को पकड़ लेते हैं। अच्छे आदर्श की जो बात करता हो—पहचान लेना, उसके भीतर बुरा आदमी मौजूद है। बुरा आदमी मौजूद न हो तो अच्छे आदर्श की बात हो ही नहीं सकती। क्योंकि तब आदमी अच्छा होगा। अच्छे आदर्श का सवाल कहां है। अच्छा आदर्श भीतर छिपे हुए बुरे आदमी की तरकीब है और बहुत गहरी तरकीब है, जिससे वह अपने को बचा लेता है।

अच्छे बनने की कोशिश में बुरा आदमी भूल जाता है। और बुरा आदमी जब तक मौजूद है भीतर, तब तक कोई अच्छा आदमी बन कैसे सकता है ? वह लाख उपाय करे, वह जो भी करेगा, उसमें बुरा आदमी भीतर से लौटकर फिर खड़ा हो जाएगा। रोज हम देखते हैं, लेकिन शायद देखने की क्षमता हमने खो दी। बुरा आदमी भीतर मौजूद है, वह हिंसा और घृणा से भरा हुआ चित्त—तो फिर आप कुछ भी करें, आप जो भी करेंगे, चाहे कितना ही पवित्र काम करें, आपके पवित्रतम काम के पीछे भी चूंकि बुरा आदमी मौजूद है, आपका पवित्रतम काम भी धोखा होगा। उसके पीछे भी असलियत कुछ और ही होगी।

लेकिन हो सकता है, ऊपर से वह दिखाई पड़नी बन्द हो जाय। शायद लोगों को दिखाई न पड़े। लेकिन आपको भली-भांति दिखाई पड़ सकती है। और आपको दिखाई पड़ जाय, तो आप स्वस्थ चित्त की दशा में, स्वस्थ चित्त के मार्ग पर अग्रसर हो जाते हैं।

पहली बात, स्वस्थ चित्त की दिशा में पहला कदम, पहला सूत्र इस सत्य को देखना कि तथ्य में मैं क्या हूं ? फैक्चुअलिटि क्या है ?

मेरी आयडियोलॉजी क्या है, यह नहीं। आप क्या मानते हैं, यह नहीं। आप क्या हैं? सच्चाई क्या है आपकी?

अगर हम इसको जानने के लिए राजी हो जाएं—और इसको हम जानने को तभी राजी हो सकते हैं, जब यह व्यर्थ ख्याल हमारा छूट जाय कि आदर्शों की कल्पना और आदर्शों की दौड़ में हम बदल सकते हैं, परर्वतित हो सकते हैं। कभी कोई आदर्शों के द्वारा परिवर्तित नहीं हुआ है। ऊपर से दिखाई भी पड़े कि यह आदमी बदल गया, भीतर वही आदमी मौजूद रहेगा।

एक गांव में एक बहुत क्रोधी आदमी था। इतना क्रोधी था कि उसने अपनी पत्नी को कुएं में फेंक दिया। उसकी पत्नी मर गई। पीछे उसे पश्चाताप हुआ होगा। सभी क्रोधी पीछे पश्चाताप जरूर कर लेते हैं। उस भांति उनका जो अपराध भाव है, समाप्त हो जाता है। वे फिर से क्रोध करने के लिए तत्पर और तैयार हो जाते हैं। पश्चाताप तरकीब है—किए गए बुरे से साफ कर लेने की स्वयं को।

उसने पश्चाताप किया। उसने मित्रों से कहा कि मैं बहुत दुखी हुआ हूं। अब इस क्रोध से मुझे किसी न किसी रूप में छुटकारा पाना है। हद हो गई। यह तो सीमा के बाहर चला गया। जिस पत्नी को प्रेम करता था, उसी की मैंने हत्या कर दी। यह वाक्य कितना ठीक लगता है कि जिस पत्नी को प्रेम करता था, उसी की मैंने हत्या कर दी। लेकिन यह वाक्य ठीक हो सकता है? क्योंकि जिसको हम प्रेम करते हैं, उसकी हत्या कर सकते हैं? लेकिन हम यह रोज कहते हैं कि जिस बच्चे को मैं प्रेम करता था, उसको मैंने चांटा मार दिया। जिस मित्र को मैं प्रेम करता था, उसको मैंने बुरे शब्द बोल दिए। जिस पत्नी को मैं प्रेम करता था, उससे मेरा झगड़ा हो गया। झगड़ा सच है, चांटा मारना सच है, हत्या करना सच है—प्रेम का ख्याल झूठा है।

लेकिन उसके मित्रों ने कहा कि तुम्हें पश्चाताप हो रहा है, यह बड़ी बात है। गांव में एक मुनि आए हुए हैं, तुम वहां चलो। शायद

उनसे तुम्हें कोई रास्ता मिल जाय। मुनि के पास उस क्रोधी व्यक्ति को ले गए। और मुनि जो हमेशा से रास्ता बताते रहे हैं, पेटेंट, वह उन्होंने उसे बता दिया—कि तुम संन्यासी हो जाओ, बिना संन्यासी हुए क्रोध इत्यादि से छुटकारा नहीं हो सकता। संसार में रहोगे तो—तो क्रोध और लोभ और मोह में फंसे ही रहोगे। यह तो संसार में स्वाभाविक है। संन्यासी हुए बिना क्रोध के बाहर तुम नहीं हो सकते हो।

वह आदमी तो दुख में था ही। उसने अपने वस्त्र फेंक दिए, वह नग्न खड़ा हो गया। उसने कहा कि मैं संन्यासी हो गया। वह मुनि भी नग्न थे। मुनि हैरान हुए और बहुत उन्होंने धन्यवाद किया उस व्यक्ति का कि ऐसा व्यक्ति नहीं देखा। इतना संकल्पवान! तत्क्षण इतनी शीघ्रता से परिवर्तित हो जाने वाला! एक तो वह बाल्या भील की कथा थी, एक दूसरी तुम्हारी है, उन्होंने कहा।

लेकिन मुनि धोखे में आ गए। और गांव ने भी प्रशंसा की। लेकिन उनको पता नहीं था, यह क्रोधी आदमी का सहज लक्षण था। क्रोधी आदमी शीघ्रता से कुछ भी कर सकता है। वह उसकी एंगर का ही, वह उसके क्रोधी होने का ही सबूत था। संकल्प वगैरह का नहीं था। और न ही उसके दृढ़ शक्ति और विल पावर होने का सबूत था। वह सिर्फ, उसके क्रोधी होने का सबूत था। जिस शीघ्रता से उसने पत्नी को कुएं में धक्का दिया था, उतनी ही शीघ्रता से खुद को संन्यासी में धक्का दे दिया। ये दोनों एक ही चित्त के लक्षण थे।

लेकिन गांव धोखे में आ गया। वह मुनि भी धोखे में आ गए। उन्होंने कई लोगों को संन्यास की शिक्षा दी थी। लेकिन अब तक वे लोग कहते थे, कि हां, कभी संन्यास लेंगे जरूर। लेकिन इस आदमी ने तत्क्षण कपड़े फेंक दिए। गुरु के मन में भी शिष्य का बड़ा आदर हो गया। और फिर उस शिष्य ने जो तपश्चर्या की, उसका तो पूरे देश में कोई मुकाबला न रहा। उसने कैसे-कैसे कष्टपूर्ण उपवास किए। वह एक-एक पैरों पर घन्टों खड़ा रहा। कैसे-कैसे कठिन उसने

शीर्षासन किए। जितने उपद्रव हो सकते थे, सब उसने अपने साथ किए। उसके तप की सब जगह प्रशंसा और हवा फैल गई। दूर-दूर से लोग उसके दर्शन को आने लगे कि वह महा तपस्वी, उसके तप का कोई ··कोई प्रतियोगी न रहा।

लोग फिर भी भूल में पड़ गए। उन्हें पता नहीं कि वही क्रोधी आदमी है। और यह क्रोध का ही रुपान्तरण है। यह क्रोध का ही रूप है कि वह आदमी आज धूप में खड़ा हुआ है, आज रेत में लेटा हुआ है, कल कांटों पर सोया हुआ है, महीनों भूखा है, सूखकर हड्डी हो गया है। यह क्रोध का ही रूप है। यह किसी को ख्याल न आया ! लोग कहने लगे महातपस्वी है ! ऐसा तपस्वी नहीं देखा गया था।

और जितनी उसको प्रशंसा मिलने लगी, उतना अहंकार उसका मजबूत होने लगा। उतना ही वह और तपस्या करने लगा। फिर तो उसकी ख्याति बहुत फैल गई। और जब किसी तपस्वी की ख्याति बहुत फैल जाय, तो वह राजधानी की तरफ यात्रा करता है। उसने भी यात्रा की। वह तपस्वी राजधानी की तरफ चला। सभी तपस्वी अंततः राजधानी पहुंच जाते हैं। चाहे तप का कोई रूप हो—धार्मिक कि राजनैतिक, कि समाज सेवा का। लेकिन तपस्वी अन्त में राजधानी जरूर पहुंचता है !

वह भी राजधानी की तरफ चला। क्योंकि अब छोटे-मोटे गांव काम नहीं कर सकते थे। अब इस तपस्वी के लिए, महातपस्वी के लिए महा-राजधानी चहिए थी। वहां राजधानी में उसके बचपन का एक मित्र, उसके साथ पढ़ा हुआ मित्र रहता था। उसने सुनी प्रशंसा अपने इस मित्र की। वह उसके दर्शन को गया। मन में उसके सन्देह जरूर था कि वैसा क्रोधी व्यक्ति—कहीं यह सब क्रोध का ही रुपांतरण न हो ? यह जो इतनी तीव्र तपश्चर्या चल रही है, यह कहीं क्रोध का ही रूप न हो ? कहीं क्रोध खुद पर ही न लौट आया हो ? यह कहीं क्रोध धार्मिक न बन गया हो ?

क्रोध धार्मिक बन गया था। उसके मन में शक तो था। वह

पहुंचा। सोचा था कि शायद अगर मित्र सचमुच में ही साधु हो गया होगा, तो कम से कम मुझे पहचान लेगा। बचपन में वर्षों वे साथ रहे थे। लेकिन जो लोग भी अहंकार की सीढ़ियां चढ़ जाते हैं, वे फिर किसी को भी पहचानते नहीं। सभी उनको पहचानें, यह वे चाहते हैं। लेकिन किसी को उन्हें पहचानना पड़े, ऐसा वे कभी नहीं चाहते हैं। क्योंकि जो किसी को पहचानता है, वह छोटा हो जाता है। और जो सबसे पहचाना जाना है, सब जिसे रिकग्नाइज करते हैं, वह बड़ा हो जाता है।

देख तो लिया मित्र को उसने, लेकिन पहचाना नहीं। कौन पद पर पहुंचे लोग मित्रों को कब पहचानते हैं ? मित्र पास जाकर बैठ गया चरणों में। शक तो मित्र को हुआ कि मुझे पहचान तो उन्होंने लिया है, क्योंकि वे तिरछी-तिरछी आंख से देखकर इधर-उधर देखने लगते थे। क्योंकि न पहचाना होता, तो बार-बार देखने की उस तरफ जरूरत न थी। और देखने से बच भी रहे थे, उसकी भी कोई जरूरत न थी।

उस मित्र ने पूछा कि क्या महाराज मैं पूछ सकता हूं आपका नाम ? महाराज ने कहा—मेरा नाम ! अखबार नहीं पढ़ते हो, रेडियो नहीं सुनते हो ! मेरा नाम ! कौन है जो नहीं जानता ! लेकिन फिर भी तुम पूछते हो ! मेरा नाम है मुनि शांतिनाथ।

कहने से ही मित्र को ख्याल आ गया कि शांति कितनी उपलब्ध हुई होगी। लेकिन दो-चार मिनट शांतिनाथ आत्मा-परमात्मा की बातें करते रहे। फिर दो-चार मिनट के बाद उस मित्र ने पूछा कि मुनिजी क्या मैं पूछ सकता हूं, आपका नाम क्या है ? मुनि जी तो हैरान हो गए। हद हो गई ! अभी इसने पूछा। बताया। कहा कि सुनते हो, या कि बहरे हो, कहा मैंने मुनि शांतिनाथ।

मित्र का संदेह मजबूत होने लगा। शांति खो गई थी। दो-चार मिनट आत्मा-परमात्मा की फिर बात चलती रही। मित्र ने फिर

पूछा, क्या मैं पूछ सकता हूं आपका नाम ? उन्होंने डन्डा उठा लिया ! उन्होंने कहा कि अब मैं तुम्हें बताता हूं मेरा नाम । उसके मित्र ने कहा, मैं पहचान गया, शांतिनाथ जी । आप मेरे पुराने ही मित्र हैं, कोई फर्क कहीं भी नहीं हुआ है ।

चित्त स्वयं को, सबको धोखा देने में समर्थ है । लेकिन धोखे से चित्त रुग्ण होता चला जाता है, अस्वस्थ होता चला जाता है । हम सभी ऐसे धोखे रोज दे रहे हैं । हमारी मुस्कुराहटें झूठी, हमारा प्रेम झूठा, हमारी दया झूठी, हमारी अहिंसा झूठी और भीतर हमारी जो सच्चाई है, वह बिल्कुल और । बाहर से हम मुनि शांतिनाथ हैं। भीतर हम कौन हैं—वह हमें खोजना है और जानना है । वह हमें पहचानना है कि भीतर हम कौन हैं ?

यह जो बाहर का सारा का सारा हमने एक फिक्शन, एक कल्पना, एक सपना खड़ा कर रखा है, एक आदर्श अपने ऊपर ओढ़ रखा है—यही है, जो हमारे जीवन में क्रांति को, ट्रान्सफार्मेशन को नहीं आने देता है । इसके कारण हम तथ्यों को देख ही नहीं पाते । तो फिर तथ्यों को बदलने का सवाल कहां उठता है ?

और एक, और बहुत मजे की बात है कि तथ्यों को देखने से ही उनकी बदलाहट हो जाती है । किसी तथ्य को पूरी तरह देख लेना ही उसकी बदलाहट हो जाती है । लेकिन तथ्य का तीव्रता से हम दर्शन नहीं कर पाते, तो बदलाहट नहीं हो पाती ।

एक वैज्ञानिक एक प्रयोग करता था । उसने दो बाल्टियों में पानी भरा और दो मेंढक पकड़कर लाया । एक बाल्टी में उसने उबलता हुआ पानी भरा और एक मेंढक को उसमें छोड़ा जानते हैं आप क्या हुआ ? मेंढक छलांग लगाकर बाहर निकल गया । उबलता हुआ पानी था । क्या होता ? और होना क्या था ? इतना तीव्र था उत्ताप जल का—मेंढक दौड़ा, वह छलांग लगाकर बाहर निकल गया । इस बात का दिखाई पड़ जाना मेंढक को कि आग सा पानी है—फिर कुछ करना थोड़ी पड़ा । हो गई बात । निकल गया बाहर ।

दूसरी बाल्टी में उसने मेंढक को डाला । उसमें कुनकुना पानी था—ल्यूक-वार्म और धीरे-धीरे बाल्टी को नीचे से वह गरम करता गया । मेंढक मर गया । धीरे-धीरे पानी गरम होता गया । धीरे-धीरे पानी गरम होता गया—मेंढक को किसी तल पर यह पता नहीं चला कि पानी इतना गरम हो गया है कि मैं निकल जाऊं । धीरे-धीरे पानी गरम हुआ, मेंढक एडजस्ट होता गया । मेंढक जो था, वह धीरे-धीरे उस पानी से राजी होता गया, वह धीरे-धीरे गरम होता गया, डिग्री, आधा-डिग्री गरम होता रहा । मेंढक भी उसके साथ तैयारी करता रहा और गरम होता गया । मेंढक, थोड़ी देर में जब वह पानी उबला तो मेंढक उसी में उबल गया और मर गया ।

पहला मेंढक छलांग लगाकर क्यों निकल सका ? दूसरा मेंढक छलांग लगाकर क्यों नहीं निकल सका ?

दूसरे मेंढक को पानी के गरम होने का तथ्य तीव्रता से दिखाई नहीं पड़ सका । धीरे-धीरे पानी गरम होता गया, वह एडजस्ट होता गया और अंत में मर गया ।

जो अहिंसक दिखाई पड़ते हैं, वे अपनी हिंसा को कभी नहीं देख पाते अहिंसा के कारण । उनके भीतर की हिंसा ल्यूक-वार्म पड़ने लगती है, कुनकुनी मालूम पड़ने लगती है । वे रोज छानकर पानी पी लेते हैं । रात भोजन नहीं करते हैं । मांस नहीं खाते हैं । ऐसे वे अहिंसक हो जाते हैं । भीतर की हिंसा कुनकुनी मालूम पड़ने लगती है । लेकिन अगर वे अहिंसा की इस सारी बातचीत को अलग कर दें और पूरी दृष्टि से भीतर की हिंसा को देखें तो जैसे मेंढक छलांग लगाकर बाहर निकल गया, वैसे ही मनुष्य दुख के भी बाहर निकल सकता है । वैसे ही मनुष्य अज्ञान के भी बाहर निकल सकता है ।

लेकिन हमारे आदर्श हमारे जीवन को कुनकुना बना देते हैं । और जो आदमी अपने जीवन को...जितने आदर्श उसे घेर लेते हैं, उतना ही उसके जीवन में ट्रान्सफार्मेशन...वह क्रांति का क्षण कभी भी नहीं आ पाता, जो जीवन को बदल दे और नया कर दे ।

अस्वस्थ चित्त है आदर्शों के कारण ।

लेकिन हम तो यही सोचते रहे हैं हजारों वर्षों से कि आदर्शों के कारण ही हम मनुष्य हैं ! पशु नहीं हैं, फलां नहीं हैं, ढिकां नहीं हैं ! आदर्श ही हमारे जीवन का लक्ष्य है । आदर्श जिसके जीवन में है, वही महान् है ! आदर्श जिसके जीवन में है, वही नैतिक, वही धार्मिक है ! झूठी है ये सब बातें । आदर्श जिसके जीवन में है, वह कभी धार्मिक हो ही नहीं सकेगा । आदर्श खुद को धोखा देने का, सेल्फ डिसेप्शन की तरकीब है, साइन्स है । और हजारों साल से आदमी अपने को धोखा दे रहा है । इस प्रवंचना को तोड़ना जरूरी है ।

जिस व्यक्ति को भी स्वस्थ चित्त उपलब्ध करना हो, उसे आदर्शों के जाल से मुक्त हो ही जाना चाहिए । फिर हम जीवन के तथ्यों को जैसे वे हैं, देखने में समर्थ हो सकते हैं । फिर हम अपने भीतर उतर सकते हैं और खोज सकते हैं—हिंसा को, क्रोध को, घृणा को ।

स्वास्थ्य तो आधा इससे ही उपलब्ध हो जायगा, जिस क्षण आपके आदर्शों से चित्त मुक्त हो गया । आप एकदम सरल हो जांएगे । एक ह्यमिलिटि, विनम्रता आ जाएगी । आदर्श की वजह से एक दम्भ आ जाता है—मैं अहिंसक हूं, मैं फलां हूं, मैं ढिकां हूं, मैं धार्मिक हूं । ये सब अहंकार के रूप हैं, रोग हैं । लेकिन जो आदमी सारे आदर्शों को मन से हटा देता है, और मन की तथ्यात्मकता को—वह जो मन है—हिंसा, क्रोध, घृणा से भरा हुआ, ईर्ष्या से भरा हुआ—उसको जानता है वह एकदम विनम्र हो जाता है । एक ह्यमिलिटि अचानक उसके ऊपर आ जाती है । वह देखता है, मैं क्या हूं । तथ्य बताते हैं कि मैं क्या हूं । मेरी असलियत क्या है । और जिस दिन वह पूरी शांति से और पूरी सरलता से, पूरी विनम्रता से इन तथ्यों को देखता है—वह देखना ही, वह दर्शन ही एक छलांग बन जाती है—एक जंप, उसके जीवन में आ जाता है, एक क्रांति उसके जीवन में आ जाती है ।

कैसे हम उन तथ्यों को देख सकेंगे, उसकी बात तो कल सुबह मैं करूंगा ।

अभी मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि आदर्शों के कारण हम नहीं देख पाते हैं । आदर्शों के कारण एक भ्रम-जाल, एक इलूजन पैदा हो जाता है । और हम सब आदर्शों में पाले गए हैं और जी रहे हैं । इससे एक हिपोक्रेसी, एक पाखंड, एक झूठ, एक वंचना खड़ी हो गई है । और वही झूठ, वही वंचना वही स्वयं को कुछ और समझना—जो कि हम हैं, उससे भिन्न, उससे विरोधी—वही वंचना हमारे जीवन की, सारे स्वास्थ्य की ।

एक युवक सारी पृथ्वी की परिक्रमा के लिए निकला हुआ था । उस विस्तृत यात्रा में एक अनजान-अपरिचित रास्ते पर एक फकीर से उसका मिलना हो गया । वह फकीर भी अपने गांव को लौटता था । वह युवक जिस देश से आता था, उस देश के सभी लोग सफेद कपड़े पहनते थे । और यह फकीर बड़ा अजीब मालूम पड़ा । यह पूरे ही काले कपड़े पहने हुए था । हमारे देश में तो सभी लोग सफेद कपड़े पहनते हैं । उस फकीर ने कहा, सफेद कपड़े पहन सकूं ऐसा मन कहाँ ? मन है मेरा काला, इसलिए काले कपड़े पहने हुए हूं ।

वह युवक बोला, तब तो सफेद बिल्कुल ही पहनने चाहिये । और अगर खादी के मिल जाएं तो और भी अच्छा । क्योंकि काला मन हो तो सफेद कपड़े में छिप जाता है । और खादी के हों, तब तो सोने में सुगन्ध आ जाती है ।

हमारे मुल्क में तो लोग ऐसी नासमझी कभी नहीं करते कि कोई काला कपड़ा पहनता हो काले चित्त का आदमी । कभी ऐसा हो ही नहीं सकता ।

उस फकीर ने कहा, लेकिन मैं दुखी हूं । मैं वही कपड़े पहनना चाहता हूं, जो मैं हूं । क्योंकि सफेद कपड़े पहनने से तुम्हें धोखा हो जाएगा, लेकिन मुझे तो धोखा नहीं होगा । मैं तो जानूंगा । और सफेद कपड़ों के कारण और भी जानूंगा कि भीतर सब काला है ।

उस युवक ने कहा कि किस गांव में आप रहते हैं ? मैं वहां

जरूर ग्राना चाहूंगा। ग्रौर सम्भव है, ग्रपनी यात्राग्रों में वहां से मैं निकलूं। तो मैं ग्रापके दर्शन करने ग्राना चाहूंगा। किस मोहल्ले में ग्राप रहते हैं ?

उसने कहा, तुम पूछ लेना मेरे गांव में ग्राकर कि झूठों की बस्ती कहां है। मैं वहीं रहता हूं। झूठों की बस्ती ! उस युवक ने कहा हद हो गई। ऐसा नाम हमने सुना नहीं। हजारों बस्तियां हैं हमारे देश में, हजारों मोहल्ले, हजारों नगर, हजारों गांव। हमारे यहां तो ऐसा कभी नहीं सुना गया कि कोई झूठों की भी बस्ती हो। हमारे यहां तो जिस मोहल्ले में लोग एक दूसरे की गर्दन काटने को तैयार रहते हैं, उसका नाम शांति नगर रखते हैं। ग्रौर जिस मोहल्ले में हर ग्रादमी एक दूसरे की जेब में हाथ डाले रहता है, उसका नाम सर्वोदय नगर रखते हैं। हमारे मुल्क में ऐसा कभी हमने सुना नहीं। क्या कहते हैं, झूठों की बस्ती !

लेकिन उसने कहा, हां, मेरी बस्ती का तो यही नाम है। ग्राग्रो तो पूछ लेना।

वह युवक लम्बी यात्राग्रों में उस गांव में पहुंचा। उसने गांव में जाकर बहुत लोगों को पूछा कि झूठों की बस्ती कहां है। गांव के लोगों ने कहा, पागल हो गए हो ? ऐसे तो सारी दुनिया ही झूठों की बस्ती है, लेकिन नाम कौन रखेगा ग्रपनी बस्ती का, झूठों की बस्ती।

उसने कहा, एक फकीर था काला कपड़ा पहने हुए। तो किसी ने कहा, हां, ऐसा एक फकीर है इस गांव में। लेकिन वह झूठों की बस्ती में नहीं, वह तो मुर्दों की बस्ती में रहता है, मरघट में रहता है। तुम्हें मालूम होता है कोई भूल हो गई। उसने कहा होगा मुर्दों की बस्ती, तुम झूठों की बस्ती के ख्याल में ग्रा गए। तुम पूछो मरघट कहां है। मरघट पर एक फकीर रहता है इस गांव में, जो काले कपड़े पहनता है।

खैर, वह खोजता हुग्रा मरघट पहुंचा ग्रौर बात सच निकली।

मरघट पर फकीर का झोपड़ा था। फकीर की झोपड़ी के पास जाकर वह ग्रन्दर गया तो देखा बड़ी हड्डियां, बड़े सिर, खोपड़ियां, उस झोपड़े में चारों तरफ रखी हुई हैं, ढेर लगा हुग्रा है, फकीर बीच में बैठा हुग्रा है। उसने कहा कि ग्राप तो मुझसे कहे थे कि मैं झूठों की बस्ती में रहता हूं ग्रौर ग्राप यहां मुर्दों की बस्ती में रहते हैं। मुझे बड़ी परेशानी हुई। पूछते-पूछते हैरान हो गया।

उस फकीर ने कहा, दोनों ही बातें सच हैं। इन मुर्दों की खोजबीन करने से मुझे इस बस्ती का नाम झूठों की बस्ती रखना पड़ा। कैसी खोजबीन ? तुम देखते हो, ये हड्डियां ग्रौर खोपड़ियां रखी हैं। मैंने ब्राह्मण की खोपड़ी की बहुत खोजबीन की, कि पता चल जाय क्या शूद्र की खोपड़ी से भिन्न है। लेकिन कुछ पता नहीं चलता। मैंने साधु की हड्डियां खोजीं ग्रौर ग्रसाधु की, ग्रौर दोनों में बहुत पता लगाया कि कोई फर्क पता चल जाय। फर्क पता नहीं चलता। ग्रौर ये सारे लोग जब तक जिन्दा थे, तब तक ये बहुत फर्क मानते थे कि मैं यह हूं, तुम वह हो। ग्रौर मरने पर मैं पाता हूं कि सब मिट्टी साबित हुए। ग्रौर एक ने भी जिन्दगी में यह नहीं कहा कि मैं मिट्टी हूं। इसलिए मैंने इनकी बस्ती का नाम झूठों की बस्ती रख दिया है।

सब झूठे थे। ग्रसलियत मिट्टी थी। लेकिन न मालूम क्या-क्या दावे करते थे कि मैं यह हूं, मैं वह हूं। मैं ब्राम्हण हूं, तू शूद्र है। मैं नेता हूं, तू ग्रनुयायी है। मैं गुरु हूं, तू शिष्य है। फलां हैं, ढिकां हैं—न मालूम क्या। ग्रसलियत एक थी कि सब मिट्टी थे।

मरघट पर ग्राकर मुझे यह पता चला, इसलिए मैंने इसका नाम झूठों की बस्ती रख दिया।

ग्रौर तुम्हें शायद हैरानी होगी कि मरघट को बस्ती कहना उचित है या नहीं। तो मैंने इसलिए इसका नाम बस्ती रखा है, कि जिसको तुम बस्ती कहते हो, वहां तो रोज कोई न कोई मरता है ग्रौर

उजाड़ हो जाती है। यहां जो एक दफे बस जाता है, फिर कभी नहीं उजड़ता। इसका नाम मैंने बस्ती रख छोड़ा है। और ये सब झूठे थे, मरने से यह पता चल गया।

और हम सब भी झूठे लोग हैं। और जब तक हम झूठे लोग हैं, तब तक हम अस्वस्थ रहेंगे। हम स्वस्थ नहीं हो सकते। स्वस्थ होने के लिए झूठ से मुक्त होना जरूरी है।

किस झूठ से ?

वह जो हमनें अपनें व्यक्तित्व के सम्बन्ध में सृजन कर रखी है, निर्माण कर रखी है। इस झूठ से मुक्त होना जरूरी है। जो हमने अपने बाबत आदर्शों का जाल खड़ा करके निर्मित कर ली है। और जो इस झूठ से मुक्त नहीं होता, उसका सत्य से कभी कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। व्यक्तित्व झूठा हो तो सत्य से मिलन कैसे होगा ? सत्य से मिलने के लिए कम से कम सच्चा व्यक्तित्व तो होना चाहिए। कम से कम सच्चाई तो साफ होनी चाहिए कि मैं क्या हूं।

तो आज की सुबह तो इतना ही कहना चाहूंगा कि यह भ्रम-जाल, जो हमने आदर्शों का अपने आसपास खड़ा कर रखा है—उस भ्रम-जाल में हम झूठे आदमी हो गए हैं। और हमारी दुनिया झूठों की बस्ती हो गई है।

कैसे इसको हम देख सकें—उस देखने की प्रक्रिया के लिए कल सुबह मैं आपसे बात करूंगा। अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे।

सुबह के ध्यान के सम्बन्ध में दो बातें आपसे कह दूं फिर हम बैठें।

रात हमने ध्यान किया। उसमें हम लेट गए थे। सुबह के ध्यान में हम बैठे रहेंगे अपनी जगह। और कोई ज्यादा फर्क नहीं है। शरीर को सीधा रखकर, लेकिन सीधा रखने में कोई तनाव न पड़े। बहुत आहिस्ता से, आराम से। सारे शरीर को ढीला भी छोड़ देना है, ताकि शरीर पर कोई किसी तरह का स्ट्रेन न हो। ऐसे बैठ जाना है,

जैसे हम विश्राम कर रहे हैं। फिर बहुत आहिस्ता से आंख बन्द कर लेनी हैं। वह भी बहुत आहिस्ता से। आंख पर भी जोर न पड़े कि हमने आंख भींच कर बन्द कर ली हो—पलक गिर जाय।

फिर क्या करेंगे ?

फिर कुछ भी नहीं करेंगे। चुपचाप बैठे रहेंगे। जस्ट सिटिंग, कुछ भी नहीं करना है।

वह, जापान में तो ध्यान के लिए कहते हैं—झाझेन। और झाझेन का मतलब होता है : जस्ट सिटिंग, बस खाली बैठे रहना।

एक बहुत बड़ा आश्रम था जापान में। और जापान का बादशाह उस आश्रम को देखने गया। कोई हजार भिक्षु उस आश्रम में रहते थे। आश्रम का जो प्रधान था भिक्षु, उसने बादशाह को सभी जगह दिखलाई। जाकर दिखलाया एक-एक झोपड़ा—यहां भिक्षु स्नान करते हैं, यहां भोजन करते हैं, यहां अध्ययन करते हैं। बीच में एक विशाल भवन था—राजा बार-बार पूछने लगा और वहां क्या करते हैं ? भिक्षु उसकी बात सुनकर चुप रह जाता था। राजा बहुत हैरान हुआ। बाथरूम, पाखाने सब बतलाये, लेकिन वह जो विशाल भवन था, जो देखने जैसा लगता था, उसकी वह भिक्षु बात भी नहीं करता था।

आखिर राजा की विदा का वक्त आ गया। वह द्वार पर लौट आया, अभी वह भवन नहीं दिखलाया गया था। राजा ने कहा, या तो मैं पागल हूं, या तुम। जिसे मैं देखने आया था, वह भवन तुम दिखलाते नहीं। और फिजूल के झोपड़े मुझे दिखलाते फिरे। अब मैं जा रहा हूं। क्या मैं पूछ सकता हूं, वहां क्या करते हो ?

उस भिक्षु ने कहा, तुम्हारे इस पूछने के कारण ही मैं बताने में असमर्थ हो गया। वहाँ हम कुछ नहीं करते। वह हमारा ध्यान का कक्ष है। वहां हम कुछ भी नहीं करते। तुम बार-बार पूछते हो, वहां क्या करते हो। तो मैं वे झोपड़े तुमको बताता रहा, जहां हम कुछ

करते हैं। कहीं स्नान करते हैं, कहीं भोजन करते हैं। इस भवन में हम कुछ भी नहीं करते। तो मैं कैसे बताऊं कि हम वहां क्या करते हैं? इसलिए मैं ले नहीं गया। मैं समझ गया, यह करने की भाषा समझता है, न—करने की भाषा समझेगा नहीं। इललिए मैंने उस भवन को छोड़ दिया। वहां हम कुछ भी नहीं करते। वहां तो हम बस बैठे जाते हैं। कुछ भी नहीं करते।

तो यहां भी हम बस बैठ जाएंगे और कुछ भी नहीं करेंगे। आवाजें सुनाई पड़ेंगी, हवाएं पत्तों को हिलाएंगी, वृक्षों से आवाज होगी, उस आवाज को चुपचाप सुनते रहेंगे।

☐

साधना—शिविर माथेरान, दिनांक २०।१०।६९, सुबह

६. मौन का स्वर

मित्रों ने बहुत से प्रश्न भेजे हैं। सबसे पहले···

एक मित्र ने आज सुबह सलाह दी है कि मैं सभी प्रश्नों के उत्तर न दूं। उन्होंने कहा है कि बहुत से प्रश्न तो फिजूल होते हैं, उनको आप छोड़ दें।

मुझे उनकी बात सुनकर एक घटना स्मरण हो आई।

एक धर्मगुरु पहली बार ही चर्च में भाषण देने गया था। उसे डर था कि लोग कहीं कोई प्रश्न न पूछें। तो अपने एक मित्र को उसने दो प्रश्न सिखा रखे थे। इसके पहले कि लोग पूछें, तुम मुझसे यह प्रश्न पूछ लेना, उत्तर मेरे तैयार हैं।

जैसे ही उसका बोलना समाप्त हुआ, उसका मित्र खड़ा हुआ। उसने पहला प्रश्न पूछा—वह वही प्रश्न था, जो कि बोलने वाले ने उसे सिखाया हुआ था। बोलने वाले के पास उत्तर भी तैयार था। उसने उत्तर दिया। वह इतना अद्‌भुत उत्तर मालूम पड़ा कि उस चर्च में इकट्ठे लोग अत्याधिक प्रभावित हुए। फिर उसी व्यक्ति ने खड़े होकर दूसरा प्रश्न पूछा। वह भी सिखाया हुआ था। उसका उत्तर और भी प्रभावपूर्ण था, चर्च तालियों से गूंज उठा और तभी वह मित्र तीसरी बार खड़ा हुआ और उसने कहा कि महानुभाव! आपने जो तीसरा प्रश्न पूछने को मुझे बताया था, वह मैं भूल गया हूं।

कोई यहां बंधे हुए प्रश्नों के···न तो बंधे हुए प्रश्न हैं, न कोई बंधे हुए उत्तर हैं। फिर एक व्यक्ति जिस प्रश्न को पूछने योग्य समझता है, वह प्रश्न चाहे कितना ही व्यर्थ क्यों न हो, मेरे मन में उस प्रश्न का आदर है। एक मनुष्य ने भी उसे पूछने योग्य समझा, इस कारण मेरे लिए उस प्रश्न में तो आदर हो जाता है। एक भी मनुष्य पृथ्वी पर उसे पूछने योग्य मानता है, यही बात काफी है कि मैं उस प्रश्न को आदर दूं।

फिर प्रश्न महत्वपूर्ण होते हों या न होते हों—प्रश्न को पूछने वाला चित्त जब किसी प्रश्न को पूछता है, तो उस चित्त की सूचना मिलती है। उस प्रश्न में चाहे कुछ भी न हो, लेकिन वह प्रश्न उस चित्त के तरफ इशारा करता है जिसने पूछा। हो सकता है पूछने वाला ठीक से पूछ भी न पाया हो कि क्या पूछना चाहता था। लेकिन अगर हम समझपूर्वक उसके प्रश्न को समझें, तो उसकी उलझन को समझने में आसानी मिल सकती है। और फिर यह भी मुझे दिखाई पड़ता है कि जो एक मनुष्य पूछ रहा है, वह किसी न किसी रूप में हम दूसरे मनुष्य का भी प्रश्न होता है। आदमी का मन इतना समान है, आदमी का चित्त इतना समान है; आदमी की बीमारी, परेशानी, उलझन, इतनी समान है कि अगर आप थोड़ी धीरज से उसे समझने को कोशिश करेंगे, तो हर एक मनुष्य की समस्या में आपको अपनी समस्या का भी दर्शन हो सकता है। लेकिन हम बहुत अधैर्य से काम लेते हैं। और अक्सर तो यह है कि हम इतने नासमझी से काम लेते हैं कि हमें अपना ही प्रश्न केवल महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है, इसलिए नहीं कि वह महत्वपूर्ण है—बल्कि अपना है।

सभी प्रश्न महत्वपूर्ण हैं। असल में प्रश्न पूछने की चित्त की दिशा महत्वपूर्ण है। सोच-विचार से भरी हुई है। व्यक्ति सोच रहा है, विचार कर रहा है। उसके सोच-विचार में हमें सहयोगी होना है, इसलिए मैं उत्तर दे रहा हूं। इसलिए नहीं कि मेरे उत्तर आप स्वीकार कर लें। मैं केवल साथी होना चाहता हूं आपके चिन्तन में। आपने एक प्रश्न पूछा है तो, इसलिए उत्तर नहीं दे रहा हूं कि मेरा उत्तर ही आपका उत्तर हो जाना चाहिए। बल्कि केवल इसलिए कि मैं भी आपके चिन्तन की प्रक्रिया में साथी और मित्र हो सकूं। आप सोच रहे हैं—मैं भी साथ दे सकूं। हो सकता है, वह प्रश्न महत्वपूर्ण न भी हो। लेकिन सोचने की प्रक्रिया शुरू हो जाय, तो वह आपको महत्वपूर्ण प्रश्नों और महत्वपूर्ण उत्तरों पर ले जा सकती है।

इसलिए प्रार्थना करुंगा, आपका प्रश्न हो या न हो, किसी का भी हो, उसे सहानुभूति से समझने की कोशिश करनी चाहिए।

एक मित्र ने पूछा है। उन्होंने कहा है कि वे मुझे प्रेम से भरा हुआ व्यक्ति समझते हैं। लेकिन मैं किन्हीं बातों के विरोध में इतनी कड़वी, इतनी तीखी भाषा का उपयोग कर देता हूं, इससे उन्हें चोट पहुंच जाती है, दुख हो जाता है। उन्होंने चाहा है कि मैं ऐसी भाषा का उपयोग करुं, जो किसी को चोट न पहुंचाए। थोड़ी कम कठोर भाषा में सत्यों के सम्बन्ध में कहूं।

उनकी बात तो ठीक है। लेकिन मुझे तो ऐसा लगता है, इतनी कठोर भाषा में कहे जाने पर भी मुश्किल से ही किसी के मन तक वह पहुंचती हो। और मधुर भाषा में कहे जाने पर शायद वह आपकी नींद में सुनाई भी न पड़े।

जिसे किसी की नींद तोड़नी हो, उसे जोर से झकझोरना पड़ता है। झकझोरने की इच्छा नहीं होती, क्योंकि झकझोरने में क्या रस है? लेकिन नींद तोड़ना बिना झकझोरे सम्भव नहीं होती। और कई बार तो हमारे चित्त की जड़ता इतनी गहरी हो जाती है, कि बिना चोट पहुंचाए, वहां कोई खबर नहीं पहुंचती।

वे ठीक कहते हैं, मेरे हृदय में चोट पहुंचाने का किसी को भी कोई कारण नहीं है, कोई प्रयोजन भी नहीं है। लेकिन मेरा प्रेम ही मुझसे कहता है कि ऐसी जरुरतें हैं कि चोट पहुंचाई जाय।

यूरोप के एक बहुत बड़े चिकित्सक केनिथ वॉकर ने एक छोटी सी किताब लिखी है। और उसने उस किताब को जॉर्ज गुरजियफ को समर्पण किया है। और डेडीकेशन, में समर्पण में लिखा है—"टु द डिस्टर्बर आफ माइ स्लीप"। जॉर्ज गुरजियफ को समर्पण किया है, लिखा है—"मेरी नींद को तोड़ने वाले जार्ज गुरजियफ को।"

किसी ने वॉकर को पूछा कि नींद जब किसी ने तोड़ी होगी, तो बड़ी चोट पहुंची होगी। तो उसने कहा गुरजियफ पर जितना

क्रोध मुझे जीवन में आया था पहली बार, उतना किसी और पर नहीं आया। लेकिन वही आदमी मेरी नींद को तोड़ने वाला भी बन गया। और तब मैंने पीछे जाना कि उसने मुझे जो शॉक, उसने जो धक्का मुझे दिया था, वह कितना प्रेमपूर्ण था। अगर वह धक्का न देता तो शायद मैं जागता भी नहीं। यह उसकी दया थी कि उसने धक्का दिया और अब मैं अत्यन्त आदर से स्मरण करता हूं उसको, कि उसने मेरी नींद तोड़ दी।

कोई भी नींद तोड़ने वाले को कभी पसन्द नहीं करता है। आप सो रहे हों गहरी नींद में और सुबह चार बजे कोई आपको जगाने लगे, तो मन को बड़ा गुस्सा आता है। मन शायद नींद पसंद करता है। तो अगर आप उस जगाने वाले को कहें कि इस तरह जगाएं कि मुझे धक्का न लगे। मेरी नींद खराब न हो, इस तरह जगाएं। तो वह कहेगा, फिर जगाना नहीं हो सकता है।

आप ठीक कहते हैं। मेरे शब्द कुछ कठोर हो सकते हैं। लेकिन मेरी समझ में अभी वे इतने कठोर नहीं हैं, जितने होने चाहिए। वे थोड़े और कठोर होने चाहिए। क्योंकि आदमी की नींद बहुत गहरी है, हजारों वर्ष की है। अगर चोट पहुंचे, तो चिन्तन शुरू होता है। विचार शुरू होता है। हम फिर से पुनर्विचार करने को तैयार होते हैं।

इस देश में हजारों वर्ष से हमने चोट पहुंचानी ही बन्द कर दी मस्तिष्क को, उसकी वजह से हम एक सोयी हुई कौम हो गए हैं। हमारा कोई भला आदमी कठोर शब्दों का उपयोग नहीं करता। मीठे-मीठे शब्दों का उपयोग करता है। वे मीठे शब्द नींद में लोरियां बन जाते हैं और सोने में सहयोगी हो जाते हैं। इस देश को, इस देश की सोयी हुई चेतना को तो अब उन लोगों की जरूरत है, जो बहुत बेरहमी से आपरेशन करने को तैयार हों—बहुत बेदर्दी से, बहुत सख्ती से। इस मुल्क के कुछ घावों को, कुछ पीड़ाओं को, कुछ बीमारियों को दूर करने के लिए तैयार होना जरूरी है। अगर आपमें से किसी को भी थोड़ी चोट पहुंच जाती हो, तो मैं बहुत खुश हूं। आप कृपा करके...और थोड़ी ज्यादा चोट मैं पहुंचा सकूं, ऐसी परमात्मा से

आपको प्रार्थना करनी चाहिए।

प्रेम चोट पहुंचाने से नहीं डरता है। बल्कि प्रेम ही अकेला है, जो चोट पहुंचाने की हिम्मत करता है। प्रेम यह देखता जरूर है कि चोट फायदा करेगी या नुकसान। चोट पहुंचाने से प्रेम कभी नहीं डरता है। लेकिन प्रेम यह जरूर देखता है कि चोट फायदा करेगी या नुकसान। अगर चोट न पहुंचाने से हानि होती हो, तो प्रेम जरूर चोट पहुंचाता है। और उनका प्रेम कच्चा होगा, जो चोट पहुंचाने से डर जाते हों।

मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि इस जमीन पर जिन थोड़े से लोगों ने मनुष्य जाति के चिन्तन को, चित्त को चोटें पहुंचाई हैं, झकझोर दिया है, हिला दिया है, वे ही थोड़े से लोग मनुष्य को आगे गतिमान करने में सहयोगी और साथी हुए।

धर्म कोई सान्त्वना की बात नहीं है, धर्म एक क्रांति है। धर्म एक कान्सोलेशन नहीं है, एक रेव्यूल्यूशन है। और हम सारे लोग तो धर्म-मन्दिरों में, संन्यासियों और साधुओं के पास, सत्संग में सान्त्वना पाने के लिए जाते हैं। वहां तो हम जाते हैं कि हमारी नींद और अच्छी तरह से आए, इसकी वे कोई दवा दे दें। हम सन्तोष से भर जाएं, इसकी कोशिश करें। लेकिन आपको पता नहीं है, सान्त्वना, सन्तोष और कान्सोलेशन जीवन की गति में सबसे बड़ी बाधाएं हैं।

जीवन में चाहिए एक क्रांति, चाहिए एक परिवर्तन। और परिवर्तन अनेक अवसरों पर कष्टपूर्ण होता है। प्रसव की पीड़ा झेलनी पड़ती है। बच्चा पैदा होता है, तो पीड़ा झेलनी पड़ती है। जीवन बदलता है, तो बहुत सी पीड़ा झेलनी पड़ती हैं। उसकी तैयारी होनी चाहिए। आपकी तैयारी जितनी बढ़ती जाएगी, मैं उतनी ज्यादा चोट पहुंचाने के लिए हमेशा उत्सुक रहूंगा। शायद धीरे-धीरे आपको यह दिखाई पड़े कि चोटों ने आपको फायदा किया, आपको जगाया, आपको होश से भरा।

एक फकीर था हुई-हाई। एक युवक उसके पास आया। और

उसने कहा मैं सत्य को खोजने निकला हूं और साथ में वह शास्त्रों की एक पोटली रखे हुए था। हुई-हाई ने उसकी पोटली छीनकर आग में फेंक दी। वह युवक तो बहुत घबड़ा गया। उसने कहा, आप यह क्या करते हैं! मुझे बहुत चोट पहुंचाते हैं? उसने कहा, सत्य को खोजना हो तो शास्त्रों को आग में झोंक देना जरूरी होता है। और मैं जितनी देर करूंगा, उतनी ही देर सत्य तक पहुंचने में बाधा पड़ जाएगी। तो मैंने जल्दी की है। और अगर शास्त्र को फेंकने से चोट लगती है, दिल डरता है, तो फिर सत्य की खोज छोड़ दो। शास्त्र को सिर पर रखकर घूमते रहो।

वह युवक डर गया था। चोट खा गया था। उसके आदृत शास्त्र को इस भांति फेंका जाना, बहुत चोट की बात थी। उसने कहा शास्त्र तो फेंकते हैं ठीक, लेकिन कम से कम मैं भगवान बुद्ध का स्मरण तो कर सकता हूं? उस हुई-हाई ने कहा, जब भी भगवान बुद्ध का नाम मुंह में आ जाय कुल्ला कर लेना, मुंह साफ कर लेना, मुंह गन्दा हो जाता है। वह तो बहुत हैरान हो गया। मुंह साफ कर लेना! उसने कहा, मुंह गन्दा हो जाता है! जब भी नाम आ जाय तो पहले मुंह साफ करना, फिर दूसरा काम करना।

पीछे, वर्षों बाद जब उस युवक को सत्य की अनुभूति हुई तो उसने कहा, धन्य था हुई-हाई, जिसने मुझे बुद्ध से बचाया। नहीं तो मैं बुद्ध का नाम ही रटता हुआ समाप्त हो जाता। और आज मैं कह सकता हूं कि मैंने वह जान लिया, जो मैं बुद्ध का नाम रटके जानना चाहता था, लेकिन नहीं जान सकता था। आज मैं कह सकता हूं कि बुद्ध के प्रति मेरे मन में जो प्रेम और आदर उमड़ा है, वह उस नाम जपने में कहीं भी नहीं था।

लेकिन मैं भी अगर किसी को सलाह दूंगा, तब यही दूंगा कि बुद्ध से बचने की कोशिश करना। क्योंकि बुद्ध का नाम, राम का नाम, कृष्ण का नाम, परमात्मा तक पहुंचने में बाधा बन जाता है। लेकिन इतना ही ड्रास्टिक, इतना ही सख्त और तीखा हुई-हाई ने उस

पर प्रयोग किया था, जिसके लिए पीछे वह धन्यवाद से भरा हुआ रहा।

एक फकीर था। एक रात एक मन्दिर में ठहरा हुआ था। सर्द रात थी। मन्दिर में वह भीतर गया और बुद्ध की एक प्रतिमा लाकर—लकड़ी की प्रतिमा थी, उसने आग लगा ली और तापने लगा। पुजारी को आग जली दिखी, आधी रात को। वह भागा हुआ अन्दर आया कि क्या हुआ। वहां देखकर तो उसके होश खो गए। जिसको साधु समझकर मन्दिर में ठहरा लिया था भूल हो गई—वह आदमी बुद्ध की प्रतिमा जलाकर आंच ताप रहा था। उस पुजारी ने कहा, पागल हो! यह क्या करते हो? भगवान की मूर्ति जला रहे हो!

वह फकीर बोला, भगवान! एक पास पड़ी लकड़ी उठाकर, वह जल गई मूर्ति को राख में टटोलने लगा। उस पुजारी ने पूछा, क्या खोजते हो? उसने कहा, भगवान की अस्थियां खोज रहा हूं। वह पुजारी बोला, निरे पागल हो! लकड़ी की मूर्ति में कहां अस्थियां? उस फकीर ने कहा, फिर रात अभी बहुत बाकी है, और सर्द भी बहुत है, एक मूर्ति और उठा लाओ, अन्दर तीन मूर्तियां अभी और रखी हैं, सुबह तक तीन मूर्तियां काम दे देंगी।

वह जो पुजारी था घबड़ाया। लेकिन एक सत्य का उसे पहली दफा दर्शन हुआ। अगर लकड़ी की मूर्ति में अस्थियां नहीं होतीं—यह पागलपन है, तो लकड़ी की मूर्ति में भगवान कहां हो सकते हैं—वह भी पागलपन है। लेकिन इसे दिखाने को चोट बड़ी भारी करनी पड़ी।

जो कौमें भयभीत हो जाती हैं चोट करने से भी—चिन्तन के लिए भी चोट करने से—वे कौमें मर जाती हैं। जो आदमी चिन्तन के लिए भी भयभीत हो जाता है और नपी-तुली बातें करने लगता है—घेरे के भीतर, मर्यादा में, उसके भीतर प्राणों की ऊर्जा ऊपर उठनी बन्द हो जाती है। जिन्हें मार्ग तय करना है, उन्हें तो बहुत सी चोटों के लिए तैयार होना चाहिए। यह मन बहुत कमजोर है जो छोटी-छोटी चोटों से इतना घबड़ा जाय। और हम छोटी-छोटी बातों

से इतने भयभीत हो जाते हैं, जिसका कोई भी हिसाब नहीं। और पीछे छिपे प्रेम के दर्शन भी हमें नहीं हो पाते।

क्या कोई यह कह सकता है कि जिसने यह मूर्ति जला दी भगवान बुद्ध की—यह आदमी कठोर था, यह आदमी प्रेमपूर्ण नहीं था? जो जानते हैं, वे कहेंगे इस पुजारी के प्रति इससे बड़े प्रेम की और कोई अभिव्यक्ति नहीं हो सकती थी। इस पुजारी को जगाना जरूरी था कि तू जिसे पूज रहा है, वह लकड़ी से ज्यादा नहीं है। अगर खोजना ही है उसे, तो जीवन है, जो जीवन्त-चेतना का केन्द्र है, तो मूर्तियों में उसे नहीं खोजा जा सकता। और जो उसे एक मूर्ति में खोजने बैठ जाता है, वह उसके चारों तरफ जो अनेक रूपों में अभिव्यक्ति हो रही है, उससे वंचित हो जाता है।

नानक जाकर मक्का में पैर करके सो गये थे—पवित्र मन्दिर के पत्थर की तरफ। बड़े कठोर रहे होंगे। प्रेम मन में जरा भी नहीं रहा होगा, नहीं तो क्या जरूरत थी, पैर और कहीं भी तो किए जा सकते थे। पवित्र पत्थर की तरफ करके सोने की क्या जरूरत थी? पुजारी भागे हुए आए थे और उन्होंने कहा था, नासमझ! पैर किए हुए हो पवित्र मन्दिर की तरफ! हटाओ पैर यहां से।

नानक ने कहा, तुम्हीं मेरे पैर उस तरफ कर दो, जहां परमात्मा न हो। बड़ी चोट थी। उन थोड़े से लोगों ने, जिन्होंने आदमी को चोट पहुंचाने का प्रेम दिखाया है, उन्होंने आदमी को विकसित किया है। जिनने थोड़ी चोट पहुंचाने का प्रेम दिखलाया, उन्होंने मनुष्य की चेतना को आगे बढ़ाया है। जिस दिन ऐसे लोगों की संख्या ज्यादा से ज्यादा होगी, जो चोट पहुंचा सकते हैं, जिनका प्रेम यह साहस कर सकता है, उस दिन मनुष्य के जीवन में बड़ी क्रांतियां सम्भावी हैं।

तो मैं तो प्रार्थना करूंगा मधुर शब्दों को मत खोजें। मधुर शब्द होने से ही प्रेम नहीं हो जाता। शब्दों की पीछे क्या आकांक्षा है, उसे खोजें। उन्होंने कहा है कि आप संन्यासियों के सम्बन्ध में जो

कहते हैं, उससे संन्यासी आपके दुश्मन हो रहे हैं। अगर वे दुश्मन हो जाएंगे, तो मैं जो कह रहा हूं, वह सिद्ध हो जाएगा कि सही था।

एक मित्र ने आज सुबह खबर कर दी कि एक संन्यासी यहां आए हुए थे, वे बहुत नाराज हो गए। और वे कल रात यहां आकर दस-पांच मित्रों को लेकर कुछ रामधुन करने वाले थे, ताकि यहां मीटिंग न हो सके। मैंने कहा उनसे कहो कि बड़ी गलती हो गई। आज वे आ जाएं, भजन करने की जगह रामधुन हो उसमें हर्जा क्या है? इसमें मीटिंग में क्या बाधा पड़ेगी? और थोड़ा आनन्द आ जाएगा। और वे नाराज हो गए हैं, तो फिर जिन मुनि शान्तिनाथ की मैं बात कर रहा था—हमें ख्याल भी नहीं था कि वे यहां हो सकते हैं। नाराज होने की क्या बात है। और अगर वे यहीं खड़े हो कर नाराजगी जाहिर कर देते, तो बड़ा हित हो जाता। हमें तो प्रमाण मिल जाता, जो मैं कह रहा था, वह बात बिना प्रमाण के न रह जाती, प्रूफ सामने खड़ा हो जाता।

अगर कोई संन्यासी शत्रु हो सकता है मेरी बातें सुनकर, तो वह समझ ले कि वह मेरी बातें सिद्ध कर रहा है। संन्यासी और शत्रुता का क्या सम्बन्ध? संन्यासी के मन में, और शत्रुता का क्या सवाल? और संन्यासी के मन में भी शत्रुता हो तो ऐसे संन्यासी पर दया नहीं की जा सकती। ऐसे संन्यासी को जमीन से विदा करना ही होगा। तो ही हम उस संन्यासी को जन्म दे सकेंगे, जिसके हृदय में शत्रुता नहीं होती, प्रेम होता है।

अगर चोट लगती हो तो इसमें मेरी भूल नहीं है। इसमें आपका चोट खाने को तैयार मन ही भूल कर रहा है। इसमें मैं क्या करूं? अगर समझ हो, तो वह आदमी देख लेगा इस तथ्य को कि जो मैंने कहा, वह उसके भीतर घटित हो रहा है। और तब उसे यह सच्चाई दिखाई पड़ जाएगी कि संन्यासी वस्त्र बदल लेने का नाम नहीं है। और तब हो सकता एक रिविलेशन, एक उसके भीतर आलोक हो जाए। फेंक दे वह वस्त्र और पहली दफे संन्यासी हो जाए।

लेकिन अगर वह क्रोध से भर जाता है और गुस्से से उस शत्रुता की बातें करने लगता है और फिर भी इतने जोर से मैं कह रहा हूं और उसे दिखाई नहीं पड़ता कि यह क्या हो रहा है। तो फिर अब इसमें—इसमें तो फिर मुझे और कठोर होना पड़ेगा और क्या रास्ता हो सकता है ? और क्या रास्ता हो सकता है ? मुझे और कठोर शब्दों के उपयोग करने पड़ेंगे। कठोर शब्दों से मुझे आनन्द नहीं आता है । पीड़ा ही होती है यह देखकर कि शब्दों का उपयोग करना पड़ता है। लेकिन कोई और रास्ता नहीं है। कोई और उपाय नहीं है । और हम तो धीरे-धीरे कठोर शब्दों के भी फिर आदी हो जाते हैं। फिर उनसे भी हम पर चोट नहीं होती।

तो मैं तो चाहता हूं संन्यासी क्रुद्ध हो जाए तो उन्हें अपने संन्यास की व्यर्थता दिखाई पड़ जाय। उन्हें ख्याल में आ जाय।

अभी एक सभा में मैं बोल रहा था। मैंने कहा कि पंडित के पास ज्ञान नहीं होता। एक पंडित क्रोध में आ गए। मुझे पता भी नहीं था कि वहां पंडित भी मौजूद है। वे इतने क्रोध में आ गए और इतनी ऊल-जलूल बातें कहने लगे—तो मैंने कहा कि देखिए जो मैं कहता था, वह यह पंडित जी सिद्ध करने लगे। यही तो मैं कह रहा था कि पंडित के पास ज्ञान नहीं होता, उसके पास ज्ञान की आंखें नहीं होतीं। अगर ज्ञान होता, तो ऐसी बात तो नहीं हो सकती थी। यह, इतने जल्दी, इतना क्रोध, इतना असंतुलन, तो नहीं हो सकताथा। थोड़ी समझ होती, तो यह ख्याल ही नहीं हो सकता था कि मैं पंडित हूं। ज्ञान होता तो यह ख्याल हो सकता था कि मैं पंडित हूं ? यह अहंकार हो सकता था कि मैं जानने वाला हूं।

जिन लोगों ने भी जाना है, वे तो इतने विनम्र थे कि उन्होंने कहा, हमसे ज्यादा अज्ञानी और कोई भी नहीं है।

सुकरात ने मरने के पहले कहा, मैं तो परम अज्ञानी हूं। उसने कहा कि जब मैं युवा था, तब मुझे भ्रम था कि मैं जानता हूं । फिर

जैसे-जैसे मेरी उम्र बढ़ी और अनुभव बढ़ा, जैसे-जैसे मेरा ज्ञान बढ़ा तो मुझे दिखाई पड़ा कि ज्ञान कहां है मेरे पास। सब तो अज्ञान है। कुछ भी तो नहीं जानता, सब तो अननोन है। और जब मैं बूढ़ा हो गया हूं, तो मैं कह सकता हूं कि मुझ जैसा अज्ञानी और कोई भी नहीं है।

सुकरात अन्तिम क्षणों में अगर यह कह सके कि मैं परम अज्ञानी हूं—तो फिर हमें सोचना पड़ेगा कि जिनको यह भ्रम होता हो कि मैं ज्ञानी हूं, वे क्या होते होंगे ? वे क्या होते होंगे, जिनको यह ख्याल होता है कि मैं ज्ञानी हूं ? वे अज्ञानी होते होंगे। क्योंकि ज्ञानियों को तो अज्ञान का बोध होता है कि हम कुछ भी नहीं जानते।

क्या जानते हैं ?

राह पर पड़े हुये पत्थर को भी नहीं जानते और आकाश में बैठे परमात्मा को जानने का दावा करते हैं ! सामने घर के लगे वृक्ष के पत्ते और फूल को नहीं जानते, और वह जो सब तरफ अदृश्य है, उसको जानने का दावा अहंकार और पागलपन के सिवाय और क्या होगा ?

तो मैंने उनसे निवेदन किया आपको यह ख्याल है कि आप पंडित हैं ? यहीं भूल हो गई। और इसी पंडित के लिए मैं कह रहा हूं कि इसके पास ज्ञान नहीं होता। क्योंकि जिसके पास ज्ञान होता है, उसको पंडित होने का ख्याल नहीं होता। उसके तो सारे ख्याल गिर जाते हैं, वह तो इतना विनम्र हो जाता है कि उसे दिखाई पड़ता है, मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।

एक साध्वी महिला ने, और साध्वी जब कह रहा हूं तो बहुत ख्याल से। क्योंकि न तो उसके पास साधुओं के वस्त्र हैं, न उसके पास साधुओं का सारा ढोंग है। लेकिन कुछ उसने जाना है जीवन में। बहुत से लोग उसे प्रेम करते हैं उन बहुत से लोगों ने उससे प्रार्थना की कि तुम अपना अनुभव लिख दो। मैं भी उसके गांव से निकलता था। उसने मुझसे कहा कि मैं अपना अनुभव लिखूं, ये सारे

लोग मेरे पीछे पड़े है। लेकिन एक शर्त पर लिखूँगी कि मैं जो किताब लिखूँ, आप आकर उसका उद्घाटन कर देना। मैं राजी हो गया फिर एक वर्ष बाद मिलना हुआ। वह किताब लिखी जा चुकी थी। उस महिला के भक्त, एक सुन्दर पेटी में उस किताब को रखकर मेरे पास लाए। मैंने खोला, एक छोटी सी आठ पन्नों की किताब निकली। पन्ने सफेद नहीं थे, बिल्कुल काले थे और उनमें कुछ भी नहीं लिखा हुआ था।

उस महिला ने कहा कि मैंने इतना ज्यादा लिखा है इसमें कि लिखते-लिखते पूरी किताब काली हो गई। कुछ लोग थोड़ा सा लिखते हैं तो थोड़ा काला होता है। मैंने इतना लिखा, इतना लिखा कि सब काला हो गया। और अब, अब मैं समझती हूं, यह किताब तैयार हो गई। मेरा अनुभव इसमें है।

उसके भक्त तो हैरान हो गए। उन्होंने कहा, हम कुछ समझे नहीं कि यह क्या हुआ। तो उस साध्वी ने कहा, जिस दिन तुम्हारा मन इतना ही कोरा हो जाएगा, जिसमें कुछ न लिखा हो, उस दिन तुम उसको जान लोगे, जो है। मैं तो खाली होकर भर गई। मैंने तो सब जानना छोड़ दिया और मैं जान गई। मैंने तो सब ज्ञान भुला दिया और मैं ज्ञान को उपलब्ध हो गई। लेकिन जो मैंने जाना है, उसे शब्दों में कहना अब सम्भव नहीं है। शब्दों से उसे जाना भी नहीं है। निःशब्द में, मौन में उसे जाना है। यह किताब शायद तुम्हें खबर दे—मौन हो जाने को, शब्द से छूट जाने को।

पता नहीं, वे अपने मन में हंसे होंगे या क्या किया होगा? क्योंकि शायद ही यहां किताबों के स्टाल पर अगर एक ऐसी किताब मैं भी बिकवाऊं, जिसमें कुछ न लिखा हो, तो आपमें से शायद ही कोई उसे खरीदे। लेकिन अगर कोई उसे भी खरीद ले, तो समझना कि उसकी जिन्दगी में समझ की शुरूआत हो गई। मन जिस दिन कोरा हो जाता है, उस दिन कहां है पांडित्य, कहां है जानना, कहां है यह

भ्रम कि मैं जानता हूं और तुम नहीं जानते हो? इन्हीं भ्रम वाले लोगों ने कि मैं जानता हूं और तुम नहीं जानते हो—सारे गुरु-शिष्य के उपद्रव खड़े कर दिए हैं। जिसको भ्रम है, मैं जानता हूं, वह गुरु बन जाता है। एक कुर्सी पर चढ़कर। और जिसको वह समझता है कि नहीं जानता, उसको बिठा लेता है अपने पैरों में। वह हो जाता है गुरु, यह हो जाता है शिष्य। और यह खेल अत्यन्त मूर्खतापूर्ण है, हजारों वर्ष से चल रहा है। जो जानता है, उसे ख्याल भी नहीं होता कि मैं जानता हूं—वह गुरु क्या बनेगा किसी का? गुरु बनने के पागलपन का उसे ख्याल भी नहीं आ सकता।

तो मैं इधर कहना शुरू किया हूं, आध्यात्मिक जीवन में सीखने वाले लोग तो होते हैं, लेकिन सिखाने वाले लोग नहीं होते। शिष्य तो होते हैं, लेकिन गुरु नहीं होते। क्योंकि गुरुओं को कोई ख्याल नहीं रह जाता कि मैं सिखाऊं, कि मैं सिखा सकता हूं, कि मैं किसी का गुरु हो सकता हूं। यह ख्याल, यह भ्रम हमारे अहंकार से ज्यादा नहीं है। और अहंकार को चोट लगती है। जब अहंकार को गिराने का कोई उपाय चलता है, तो चोट लगती है।

मैं तो सारी जो बातें कर रहा हूं, इसी ख्याल में कि किसी भाँति यह अहंकार हमारा टूट जाय। यह ख्याल हमारा टूट जाय कि हम जानते हैं। यह ख्याल हमारा टूट जाय कि मैं सन्यासी हूं। यह ख्याल हमारा टूट जाय कि मैं कुछ हूं। तो शायद, शायद हम उसे जान लें, जो कि हम हैं। शायद उसे पहचान लें, जो कि सबमें है। लेकिन जब तक हमें यह कुछ होने का ख्याल है, यह होने का- और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि यह कुछ होने का ख्याल किस कारण है।

एक आदमी एक बड़ी कुर्सी पर बैठ जाता है तो उसे ख्याल होता है, मैं कुछ हूं! एक आदमी गैरिक वस्त्र पहन लेता है, गेरुए वस्त्र, तो वह सोचता है कि कुछ हूं! एक आदमी दिल्ली पहुंच जाता है, वह सोचता है, मैं कुछ हूं! एक आदमी धन कमा लेता है और सोचता है मैं कुछ हूं! एक आदमी धन छोड़ देता है और सोचता है

कि मैं कुछ हू ! ये सारे एक ही बीमारी के बहुत-बहुत रूप हैं। इसमें कोई फर्क नहीं है।

जब तक आदमी सोचता है, मैं कुछ हूं—चाहे वह सोचता हो, मैं संन्यासी हूं, चाहे वह सोचता हो, मैं नेता हूं, चाहे वह सोचता हो, मैं गुरु हूं; चाहे वह सोचता हो मैं त्यागी हूं, व्रती हूं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ये एक ही बीमारी की अलग-अलग शक्लें हैं। बीमारी यह है कि 'मैं' कुछ हूं। और जहां यह ख्याल है कि "मैं कुछ हूं", वहां चोट पहुंचती है। क्योंकि जैसे ही कोई कोशिश करेगा कि नहीं, आप तो कुछ भी नहीं हैं, तो चोट पहुंचती है, तो घबड़ाहट होती है।

एक फकीर था इब्राहीम। जब फकीर नहीं हुआ था तो एक नगर का राजा था। एक रात अपने बिस्तर पर सोया था। ऐसा लगा कि छप्पर पर कोई चलता है ऊपर। तो उसने चिल्लाकर पूछा, कौन है ऊपर? ऊपर से आवाज आई, मेरा ऊंट खो गया है, उसे मैं खोजता हूं। अजीब पागल आदमी था कोई। उस राजा ने कहा, पागल हो गए हो! छप्परों पर ऊंट खोया करते हैं! यहां ऊंट खोजने का क्या मतलब? छप्परों पर कहीं ऊंट खोते हैं?

तो उस आदमी ने कहा, अगर छप्परों पर ऊंट खोजने से नहीं मिलेंगे, तो सिंहासनों पर भी आनन्द खोजने से नहीं मिलेगा। सिंहासनों पर भी आनन्द नहीं खोजा जा सकता है। राजा उठा और दौड़ा कि उसे पकड़वा लें, कौन आदमी है। लेकिन वह नहीं मिल सका।

दूसरे दिन राजा रात भर सोचता रहा कि बात उसने क्या कही है। रात भर उसे ख्याल रहा छप्परों पर नहीं मिल सकता है ऊंट, सिंहासनों पर सत्य भी नहीं मिल सकता। सिंहासन भी छप्पर ही है। चाहे वे सिंहासन किसी तरह के हों। संन्यास के, शंकराचार्य होने के, फलां होने के, ढिकां होने के, राजनीतिज्ञों के या किसी तरह के सिंहासन हों, उन पर सत्य मिल सकेगा?

वह भी सोचता रहा। लेकिन सुबह जब वह दरबार में गया—उदास और चिन्तित था। बैठा ही था जाकर कि एक अक्खड़ आदमी

अंदर घुसता चला आया। पहरेदार ने बहुत रोकने की कोशिश की कि रुको। उसने कहा, तुम रोकने वाले मुझे कौन हो? इस घर का मालिक कोई हो, तो मुझे रोक सकता है। हर किसी से मैं रुकने वाला नहीं। कौन है मालिक?

नौकर भी डर गए उससे। ले गए राजा के पास, कि यह है मालिक। उस आदमी ने कहा, मैं इसको मालिक नहीं मान सकता। और राजा से पूछा, कि मैं इस सराय में रुकना चाहता हूं—दो-चार दिन ठहर सकता हूं? उस राजा ने कहा, तुम पागल मालूम होते हो। यह सराय है? यह मेरा निवास है, मैं मालिक हूं यहां का।

वह आदमी हंसने लगा और उसने कहा, मैं कुछ वर्ष पहले आया था, लेकिन तब दूसरा आदमी यही कहता था कि मैं मालिक हूं यहां का। उस राजा ने कहा, वे मेरे पिता थे। उसने कहा, और भी मैं कुछ साल पहले आया था, तब एक तीसरा ही आदमी यह कहता था कि मैं मालिक हूं यहां का। वे मेरे पिता के पिता थे।

उस संन्यासी ने कहा, मैं कुछ वर्षों बाद फिर आऊंगा, तुम मुझे मिलोगे यहां कहने को कि मैं मालिक हूं? जब हमेशा मालिक बदल जाते हैं, तो उसका मतलब—यह सराय है—मैं ठहर सकता हूं, इस सराय में? अगर यह तुम्हारा निवास है तो फिर लोग कहां गए, जिनका पहले यह निवास था? वे कहां हैं?

उस राजा ने कहा कि शायद बात तुम्हारी ठीक है। हम कुछ दिन ठहरते हैं और चले जाते हैं। उसने द्वार बन्द करवा दिए और कहा ऐसा तो नहीं कि रात जो छप्पर पर ऊंट खोजता था, वह तुम्हीं हो? उस आदमी ने कहा, मैं ही हूं। छप्पर पर ऊंट खोजने आया था, ताकि तुम्हें कह सकूं कि सिंहासनों पर सत्य नहीं मिल सकता। और आज तुम्हारी सराय में मेहमान होने आया हूं, ताकि तुम्हें कह सकूं कि यह तुम्हारा घर नहीं है।

लेकिन ऐसा आदमी चोट बहुत पहुंचाता है। उस राजा के प्राण कंप गए। बात तो सच थी। जिसको उसने अपना घर समझा

था, वह उसका घर था। नहीं। लेकिन बड़ी चोट पहुंची। अपने घर में बैठे-बैठे अचानक पता चल जाए कि आप धर्मशाला में बैठे हैं—चोट अचानक नहीं पहुंचेगी? अपनी तख्ती-वख्ती लगाए बैठे थे घर के सामने, अचानक पता चला यह धर्मशाला है—चोट नहीं पहुंचेगी?

लेकिन अगर वह धर्मशाला ही है तो मैं क्या करूं? मुझे कहना ही पड़ेगा कि यह धर्मशाला है। आपको चाहे चोट पहुंचे और चाहे न पहुंचे। मेरी मजबूरी है। अब अगर आप छप्पर पर ऊंट खोज रहे हो और मुझे कहना पड़े कि क्षमा करिए छप्परों पर ऊंट नहीं खोया करते तो आप नाराज हो जाएंगे, कि कठोर वचन बोलते हैं आप। कुछ ऐसी बात कहिए कि चोट न लगे। तो मैं क्या कहूं? क्या मैं यह कहूं कि खोजते रहिए, मैं भी साथ देता हूं, ऊंट मिल जाएगा?

मेरी भी मजबूरी है। आपकी भी मजबूरी है, समझता हूं। लेकिन क्या करूं? आपकी मजबूरी को मान लूँ या आप मेरी मजबूरी को मानते हैं? मुझे कहना ही पड़ेगा, छप्परों पर ऊंट नहीं मिलते। सिंहासनों पर भी सत्य नहीं मिलता है। क्योंकि जो आदमी जितने ऊंचे सिंहासन पर बैठता चला जाता है, उतना ही छोटा आदमी होता चला जाता है। जितना ऊंचा सिंहासन, उतना छोटा आदमी।

असल में छोटे आदमी के सिवाय ऊंचे सिंहासन पर कोई चढ़ना ही नहीं चाहता। वह छोटा आदमी ऊंची चीज पर खड़े होकर यह भ्रम पैदा करना चाहता है कि मैं छोटा नहीं हूं। छोटे-छोटे बच्चे भी यही करते हैं घरों में। कुर्सी पर खड़े हो जाएंगे ऊपर, कहेंगे हम आपसे बड़े हैं। तो दिल्ली में जो बैठ जाते हैं और कहते हैं हम आपसे बड़े हैं, वे इन बच्चों से भिन्न हैं? क्योंकि आपकी बड़ी कुर्सी है—आप बड़े हो गए?

बचकाना, चाइल्डिश माइन्ड है, अप्रौढ़—वह ऊंची चीज पर खड़े होकर यह घोषणा करना चाहता है, "मैं बड़ा हूं"! लेकिन उसे पता ही नहीं है कि यह छोटा आदमी ही घोषणा करना चाहता है कि

मैं बड़ा हूं। बड़े आदमी को पता ही नहीं होता, बड़े और छोटे का। छोटे आदमी की, वह जो इनफीरिअरटि काम्प्लेक्स है, वह जो भीतर हीनता का भाव है, वह निरन्तर कोशिश करता है दिखलाने की कि मैं हीन नहीं हूं, मैं कुछ हूं। और कुछ होने की दौड़ जीवन भर चलती रहती है—हजार-हजार रास्तों से। हजार-हजार रास्तों से आदमी कोशिश कर रहा है, दिखला दे कि "मैं कुछ हूं"! लेकिन उसे पता नहीं कि जब तक वह दिखलाने की कोशिश कर रहा है "कि मैं कुछ हूं, तब तक उसके भीतर एक हीनता चल रही है। और उस हीनता से वह पीड़ित है। उस हीनता को भुलाने के लिए पहाड़ चढ़ रहा है। उस हीनता को भुलाने के लिए यात्राएं कर रहा है। छप्परों पर चढ़ रहा है, ताकि सारा गांव देख ले कि सबसे ऊंचा मैं हूं।

और अगर इसको हम कह दें कि तुम पागल हो—जितने ऊंचे तुम चढ़ते हो, उतने ही छोटे होने की तुम सूचना करते हो, तो यह नाराज हो जाएगा। अब इसको नाराज करें, कि इसको चढ़ने दें? इसको जाने दें, यह जहां भी जाय? एवरेस्ट की चोटी पर चढ़े, चढ़ने दें या कि इसको कहें कि पागल मत हो जाओ?

हीनता भीतर है तो उसे तुम पहाड़ों पर चढ़कर न मिटा पाओगे। हीनता भीतर है तो भीतर ही घुसना होगा। और हीनता वहां है, तो उसे मिटाने के रास्ते हैं। लेकिन ऊपर चढ़ने से हीनता नहीं मिट जाती है। ऊपर चढ़ने से हीनता नहीं मिटती, भीतर घुसने से हीनता मिट जाती है। हीनता इसलिए है कि हम स्वयं को नहीं जानते हैं। आत्म-अज्ञान के कारण हीनता है। नहीं तो आपको पता चलेगा आप क्या हो? और आपको पता चलेगा और सब कौन हैं? दिखाई पड़ेगा एक ही प्राण, एक ही जीवन, एक ही महिमा सबमें व्याप्त है, एक ही आलोक। फिर आप किससे ऊपर होना चाहोगे? आपके अतिरिक्त फिर कोई बचता नहीं, या आप भी नहीं बचते हैं? जो बच रहता है, उसमें न आप होते हैं, न दूसरा होता है—न मैं होता है, न तू होता है। किससे ऊपर चढ़ेंगे, किससे नीचे उतरेंगे?

उस क्षण सब हीनता मिट जाती है, और सब सुपिरिआरटि भी, श्रेष्ठता भी। उस दिन न आप हीन होते हैं, न श्रेष्ठ, उस दिन आप बस होते हैं। फिर कोई कम्पेरिजन नहीं होता, क्योंकि कम्पेअर करने को कोई नहीं होता। कोई तुलना नहीं होती। ऐसे व्यक्ति को तो मैं धार्मिक कहूंगा। लेकिन ऐसे व्यक्ति को धार्मिक नहीं कह सकता, जो अभी कह रहा है कि तुम गृहस्थ हो, मैं संन्यासी हूं; तुम पापी हो, मैं पुण्यात्मा हूं; तुम हीनात्मा हो, मैं महात्मा हूं। यह जो आदमी है, क्या कर रहा है? और इसने जो तरकीब निकाल ली है, वह ज्यादा गहरी है। उस आदमी से, जो कह रहा है मैं धनवान हूं, तुम गरीब हो। उससे ज्यादा गहरी है। धनवान को भी दिखाई पड़ता है कि धन छिन सकता है, चोरी जा सकता है; कल वह भी गरीब हो सकता है। लेकिन यह त्याग और संन्यास ऐसी चीजें हैं कि न चोरी जा सकते, न खो सकते, न इनको कोई छीन सकता। ये ज्यादा स्थायी सम्पत्तियां हैं।

इस लिए जो लोग बहुत लोभी हैं, वे तिजोड़ी छोड़ देते हैं और स्थायी तिजोड़ी की खोज में निकल जाते हैं। संन्यासी हो जाएं, परमात्मा को पकड़ लें—क्या करें, क्या न करें, वे ऐसी सम्पत्ति खोजते हैं, जिसे कोई छीन न सके। यह बहुत गहरी ग्रीड, यह बहुत गहरे लोभ से पैदा होने वाली कृति है, इसको हम कहें या न कहें?

एक गांव में मैं था। मुझसे पहले एक संन्यासी बोले और उन्होंने कहा, अगर आप लोभ छोड़ देंगे तो स्वर्ग उपलब्ध होगा। मैं उनके पीछे बोलता था। मैंने पूछा, कि बड़ी अजीब बात आपने कही है कि अगर आप लोभ छोड़ दें, तो स्वर्ग उपलब्ध होगा। और स्वर्ग उपलब्ध करने की जो कामना है, वह लोभ नहीं है?

तो यहां इन सुनने वालों में जितने लोभी होंगे—बहुत ज्यादा होंगे, जो कम लोभी होंगे, वे सोचेंगे छोड़ो स्वर्ग को, अपना लोभ ही ठीक है। जो जरा ज्यादा लोभी होंगे, वे कहेंगे छोड़ो धन-सम्पत्ति को, स्वर्ग को पा लेना ज्यादा उचित है, तो ऊपर से दिखाई पड़ेगा वे लोभ

छोड़ रहे हैं—लोभ छोड़ नहीं रहे, वे लोभ के कारण ही, लोभ की वजह से ही धन-सम्पत्ति छोड़ रहे हैं, कि स्वर्ग उपलब्ध हो जाए। यह स्वर्ग का भी, लोभी चित्त है। मोक्ष का कामी भी लोभी चित्त है। परमात्मा को पाने की कोशिश में लगा हुआ भी लोभी चित्त है। इसको कहें या न कहें?

आप कहेंगे, फिर मैं क्या कह रहा हूं आपसे? मैं आपसे यह कह रहा हूं जिस दिन चित्त में कोई लोभ नहीं होता, उस दिन जो आप जानते हैं, वह मोक्ष है। लेकिन मोक्ष की कोई कामना नहीं की जा सकती। मोक्ष को पाने के इरादे, योजनाएं, प्लानिंग नहीं बनाई जा सकती। जिस दिन आपका चित्त लोभ के बाहर होता है, उस दिन जिसे आप जानते हैं, वह परमात्मा है।

लेकिन परमात्मा को पाने का लोभ नहीं किया जा सकता। परमात्मा को पाने के लिए हिसाब-किताब नहीं लगाया जा सकता। और हिसाब-किताब लगाए जा रहे हैं! कोई आदमी कह रहा है, मैंने सौ उपवास किए! कोई कह रहा है, मैंने पचास किए! कोई कह रहा है, मैंने चालीस किए! कितना परमात्मा मिलेगा—एक सेर, दो सेर, तीन सेर, कितना परमात्मा मिलेगा? मैंने सौ उपवास किए हैं, तो मुझे कितना मिलेगा! मैं तीस साल से संन्यास लिया हुआ हूं, मुझे कितना मिलेगा।

क्राइस्ट को जिस रात पकड़ा गया। पकड़ने के पहले खबर मिल गई थी कि शायद वे पकड़ लिए जाएंगे। तो क्राइस्ट ने अपने मित्रों से कहा कि तुम्हें पूछना हो तो पूछ लो। तो उनके मित्रों ने पूछा कि अब आप जा ही रहे हैं, तो एक बात बता दें। आपका स्थान तो तय है कि आप परमात्मा के बगल बैठेंगे स्वर्ग में। हम लोग कहां बैठेंगे? हमारा स्थान क्या होगा! हमारी कुर्सियां कहां लगाई जायेंगी? हमारा स्थान क्या होगा? हमारी कुर्सियां कहां लगाई जायेंगी? हमने अपना सब घर-द्वार छोड़ा आपके पीछे, दीवाने हुए,

हमारी उपलब्धि क्या होगी, किंगडम ऑफ गॉड जो है, वहां ? हम कहां होंगे ? हमारी पोजीशन्स क्या होंगी, वे सब स्पष्ट कर दें ?

अब ये लोग लोभी नहीं हैं ? क्या ये लोग ? इनके चित्त में निर्लोभ का जन्म हुआ है ? अगर यह कहूं तो चोट पहुंचेगी, कि हमारा सब संन्यास, हमारी पूजा—प्रार्थना, हमारा मन्दिर, हमारी दान—दक्षिणा, सब हमारे लोभ के रूपान्तरण हैं। और जब तक हम इस बात को नहीं देखेंगे, तब तक हम लोभ से मुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि हम इनको लोभ समझेंगे ही नहीं, तो मुक्त होने का कोई सवाल नहीं है। हमारे तीर्थ-यात्रा, हमारा संन्यास, हमारा रिननसिएशंस, सब हमारे लोभ के ही रूप हैं। हमारी ग्रीड के ही अलग-अलग रास्ते हैं, जो अपने को प्रगट करती है। इनसे धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है। इस बात को तो जितनी स्पष्टता से कहा जा सके, उतना उचित है और उतना जरूरी है।

तो हो सकता है मेरी बात में कुछ बात कठोर लगती हो। है कठोर, लगनी चाहिए। लेकिन मैं मजबूर हूं। आप मुझे छप्पर पर ऊंट खोजते दिखाई पड़ते हैं, तो मुझे कहना पड़ेगा कि वहां ऊंट नहीं है और आपका घर आपका निवास नहीं है, धर्मशाला है। कितनी ही बुरी लगे यह बात, मुझे कहना पड़ेगा कि आप भूल से जिसे निवास समझे हुए हैं, वह निवास नहीं है, वह केवल सराय है। और जितने जल्दी आपको दिखाई पड़ जाय, उतना उचित है।

एक और अन्तिम प्रश्न और फिर हम विदा होंगे। फिर जो प्रश्न होंगे, वह रात हम बात करेंगे।

एक मित्र ने पूछा है कि श्रद्धा, आदर्श हम सभी छोड़ दें, तो फिर हम कहां जाएंगे ? फिर क्या होगा ?

श्रद्धा होते हुए, आदर्श होते हुए, आप कहां चले गए हैं ? क्या हो गया है ? श्रद्धा भी है, आदर्श भी हैं। आप कहां चले गए हैं ? क्या हो गया है ?

भटक रहे हैं और तो कहीं नहीं चले गए हैं।

मैं कोई विश्वास नहीं दिलाता कि आप कहां चले जाएंगे। हालांकि आपका लोभ चाहेगा कि पक्का आश्वासन होना चाहिए कि अगर हम श्रद्धा और आदर्श सब अलग कर दें, तो हम कहां पहुंचेंगे इसकी पक्की गारन्टी होनी चाहिए। और नहीं तो हम छोड़ दें और पक्की गारन्टी न हो, तो हम हानि में पड़ जाएं।

इतना ही मैं निवेदन करता हूं कि अगर आदर्श और श्रद्धा इन सबसे आपका छुटकारा हो जाए, तो जो आप हैं, उसे जानने में आप समर्थ हो जाएंगे। चाहे आपके भीतर नरक हो, तो उस नरक को देखने में समर्थ हो जाएंगे। और जिस आदमी में जो है, जैसा है, वह जो फैक्चुअलिटि है, वह जो हमारी तथ्य—स्थिति है, उसको जानने में जिस दिन समर्थ हो जाता है, उसी दिन उसके जीवन में एक नई यात्रा शुरु हो जाती है।

क्यों ?

क्योंकि वहां कुछ ऐसे तथ्य हैं, जिनको बदलना ही पड़ता है। और बदलना पड़ता है, यह कहना शायद ठीक नहीं है, जिनको देखने से ही बदलाहट शुरू हो जाती है। फिर आप एक नए आदमी होना शुरू हो जाते हैं, एक बिल्कुल नए आदमी।

हालत ऐसी है कि आपके सामने सड़क पर सांप लेटा हुआ है, लेकिन आप अपने सामने देख ही नहीं रहे। आप दस मील दूर आकाश की तरफ देख रहे हैं—एक आदर्श की तरफ और चले जा रहे हैं ! आदर्श की तरफ देख रहे हैं और चले जा रहे हैं ! और सांप नीचे पड़ा है, जो आपकी जिन्दगी को खा जाएगा—उसे आपके आदर्शों का कोई पता नहीं है।

मैं आपसे कह रहा हूं दस मील दूर आकाश की तरफ न देखें। कदमों में, नीचे, सामने देखें, जो आप हैं, जहां आप हैं। तो अगर सांप आपको दिखाई पड़ जायगा—यह तथ्य है, तो आप कुछ करेंगे। और वह हो जाएगा आपके भीतर—आप शायद छलांग लगाकर सांप

से अलग हो जाएंगे। लेकिन आप दस मील दूर देख रहे हैं, गड्ढे पैर के पास हैं!

एक ज्योतिषी था यूनान में, जो आकाश के तारों के सम्बन्ध में खोजबीन किया करता था। वह सांझ आकाश के तारे देखता हुआ चला जा रहा था और एक गड्ढे में गिर पड़ा। एक बूढ़ी औरत, जिसने उसे निकाला, उसने कहा, बेटा मैंने सुना है, तुम तारों के सम्बन्ध में बहुत जानते हो? लेकिन मैं तुमसे एक प्रार्थना करती हूं, तारों के सम्बन्ध में तुम क्या जानते होगे, जब रास्तों के गड्ढों के सम्बन्ध में नहीं जानते। तो मेरी एक प्रार्थना है, तारे फिर जान लेना, रास्ते के गड्ढे पहले जानना जरूरी है। आकाश के तारों की जानकारी तुम्हें होगी भी कैसे, जब पैर के नीचे के गड्ढे भी तुम्हें दिखाई नहीं पड़ते! तुम्हारा ज्योतिष सब बकवास होगा। पहले रास्ते के गड्ढे तो जान लो।

हम सब भी आकाश के तारे देखकर चल रहे हैं। आदर्श— वहां पहुंचना है, वहां पहुंचना है! बिना इस बात को जाने हुए कि हम कहां खड़े हुए हैं, हम कहां चल रहे हैं! आदर्श कल्पना में है। जिन्दगी, तथ्य सामने है। उस तथ्य को देखना जरूरी है। और आदर्शों के कारण हम उसे देखने से बचते हैं। इसलिए सारे आदर्शों से चित्त मुक्त हो जाना चाहिए।

घबड़ाहट क्यों लगती है?

घबड़ाहट इसलिए लगती है कि आदर्श से मुक्त होते ही हमें भली-भांति पता है कि हम क्या हैं। और जैसे ही हम उसको जानेंगे, हमारे भीतर घबड़ाहट होती है कि हम तो कुछ भी नहीं हैं। आदर्श में तो हम मान लेते हैं कि "अहम् ब्रह्मास्मि", "मैं ईश्वर हूं", फलां हूं, मैं यह हूं, मैं वह हूं, मैं अविनाशी तत्व हूं; अजर-अमर, ये सब हम आदर्श मान लेते हैं।

नीचे, लौटकर देखेंगे, तो घबड़ाहट होगी कि मौत पास आ रही है। यह अजर-अमर आदर्शमय हैं। लेकिन इधर मौत पास सरकती

आ रही है, रोज। मौत तथ्य है। यह अमरता बातचीत है। अमरता की बातचीत में मौत को कब तक झुठलाईयेगा। और मौत को जितने दिन झुठला रहे हैं आप, उतने दिन आप धोखे में हैं।

तो मैं यह कहता हूं अमरता की बातचीत छोड़िए, मौत को देखिए। और मेरा निवेदन है कि जिस दिन आप मौत को पूरी तरह देखेंगे, उसी दिन जो अमर है आपके भीतर, उसका दर्शन हो जाएगा।

मौत के परिपूर्ण दर्शन से अमृत का अनुभव होता है।

लेकिन जो मौत को ही देखने से डरता है—और मौत को देखने से डरने के कारण, अमरता की बातचीत करता रहता है, वह मौत को ही नहीं देख पाता, अमृत को कैसे देख पाएगा?

मौत को देखने के साहस से ही—मौत का आमना-सामना, एनकान्उन्टर करने से ही, जो आपके भीतर अमृत है, उसकी झलक मिलनी शुरू होती है।

क्यों? क्यों ऐसा होगा?

ऐसा इसलिए होगा कि देखते हैं छोटे-छोटे बच्चे भी जानते हैं, स्कूल के ब्लेक—बोर्ड पर सफेद चाक से जब लिखते हैं, तो दिखाई पड़ता है और सफेद दीवाल पर सफेद चाक से लिखें तो दिखाई नहीं पड़ता। स्कूल के शिक्षक भी ज्यादा समझदार हैं, आत्मा के खोजियों से। उनको पता है कि सफेद दीवाल पर लिखेंगे, कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। काले ब्लेक-बोर्ड पर लिखने से दिखाई पड़ता है।

क्यों?

कान्ट्रास्ट है। जब तक आप मौत में नहीं झांकेंगे, आपको अमृत दिखाई नहीं पड़ता। दिखाई नहीं पड़ सकता। मौत काले बोर्ड की तरह खड़ी हो जाती है। और अगर उस काले बोर्ड में फिर एक भी सफेद रेखा आपको दिखाई पड़ गई, तो आप जानते हैं कि काला बोर्ड ही सब कुछ नहीं है, एक सफेद रेखा भी है। जो काले के बाहर है और अलग है।

तो जो मौत में नहीं झांकेगा, वह अमृत को कभी नहीं देख सकता। जो काले से डरेगा, वह सफेद को नहीं देख सकता। जीवन के तथ्यों को झांकना जरूरी है। जीवन के तथ्यों को झुठलाने वाले आदर्शों में समय खोना उचित नहीं है।

लेकिन हम सब मौत से डरते हैं। सो हम अमरता के आदर्श बना लेते हैं, अमरता के सिद्धांत बना लेते हैं। जो आदमी जितना मौत से डरता है, उतनी ही आत्मा की अमरता की बातें करता है।

देख लें आप, जमीन पर कौम जितनी ज्यादा मौत से डरती है, वह उतनी आत्मा को मानने वाली कौम है।

क्यों मानती है?

भय है भीतर मौत का। तो हम मान लेते हैं कि आत्मा अमर है। इसको मानने में बड़ा रस और आनन्द आता है। इस रस और आनन्द में धोखा है।

तथ्यों को देखना जरूरी है, क्योंकि तथ्यों के भीतर ही सत्य छिपे हुए हैं।

इस सम्बन्ध में और कुछ प्रश्न हैं, उनकी बात रात करेंगे।

दोपहर की यह बैठक समाप्त हुई।

□

साधना-शिविर माथेरान, दिनांक २०।१०।६९, दोपहर

७. सत्य का संगीत

बहुत से प्रश्न भेजे हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि मैं शास्त्रों को जला डालने के लिए कहता हूं। और मेरी बातों से कहीं थोड़े कम समझ लोग भ्रान्त होकर भटक न जाएं?

लोग भटकेंगे या नहीं, लेकिन जिन्होंने प्रश्न पूछा है, वे मेरी बात सुनकर जरूर भटक गए हैं। मैंने कब कहा कि शास्त्रों को जला डालें। मैंने सिर्फ अपनी किताबों को—अगर वे किसी दिन शास्त्र बन जाएं तो जला डालने को कहा है। मेरी किताबें हैं, उनको जला डालने के लिए मैं कह सकता हूं। लेकिन दूसरों की किताबें जला डालने को मैं क्यों कहूंगा।

और फिर मैंने कहा शास्त्रों को जला डालें—किताबों को जलाने के लिए मैंने कभी कहा नहीं है। अगर इतनी सी बात भी समझ में नहीं आती तो फिर मैं और जो कह रहा हूं, वह क्या समझ में आता होगा?

मनुष्य के जीवन में शास्त्र न रह जाएं—जरूर मैं चाहता हूं। क्योंकि किसी भी किताब को शास्त्र कहना, मनुष्य की सत्य की खोज को चोट पहुंचाना है, बाधा पहुंचानी है। लेकिन हम शायद सुनते नहीं हैं, या सुनते हैं तो पूर्वाग्रह से भरे हुए सुनते हैं। पहले से ही हमारा मन तैयार होता है। सुनते समय भी हम अपने मन में कुछ हिसाब-किताब लगाते रहते हैं, कि मैं क्या कह रहा हूं और क्या नहीं कह रहा हूं। शायद इसलिए कठिनाई होती है समझने में, अन्यथा बातें बहुत सीधी और साफ हैं।

सुनने के लिए मन साफ हो, तो बातें बहुत सीधी और साफ हैं। और मन उलझा हुआ हो तो, फिर चीजों के अर्थ, शब्दों के अर्थ बड़े विकृत रूप ले लेते हैं। और ऐसे ही मन को लेकर आप शास्त्रों को

भी पढ़ते होंगे। उनमें से भी जो अर्थ आप निकाल लेते होंगे, वह अर्थ भी इतना ही विकृत होता होगा।

शब्दों को समझने के लिए, विचारों को समझने के लिए एक बड़ा शान्त, मौन, सुनने वाला मन चाहिए। वह हमारे पास नहीं है। हम पहले से ही बहुत भरे हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आप मुझे सुन रहे हैं—जरूरी नहीं है आप मुझे सुन रहे हों। आप अपने को ही अपने भीतर सुन रहे होंगे। मेरी बातें भी सुनाई पड़ती हैं, बीच-बीच में, फिर आप अपनी बातें सुनने लगते हैं; फिर मेरी बातें सुनाई पड़ती हैं, और इस सबमें इतना घोल-मेल, इतना कनफ्यूजन पैदा हो जाता है कि जो आप मुझसे पूछते हैं, अच्छा होता कि अपने से ही पूछ लेते।

क्योंकि अक्सर जो बातें मैंने नहीं कहीं, उन्हीं के बाबत प्रश्न पूछ लिए जाते हैं। या जो मैंने समझाया, उसके ही बाबत फिर किसी दूसरी शकल में प्रश्न मौजूद हो जाते हैं। सिर्फ आप चुप बैठे हैं और मैं बोल रहा हूं, इसलिए आप सुन रहे हैं, इस भ्रांति में मत पड़ जाना।

कार्ल गुस्ताफ जुंग के पागलखाने में दो प्रोफेसर भर्ती हुए थे। ऐसे प्रोफेसरों की टेन्डेंसी, वृत्ति पागल हो जाने की स्वाभाविक है। उन दोनों का जुंग अध्ययन करता था। खिड़की से छिपकर एक दिन सुन रहा था उन दोनों की बातें—बहुत हैरान हो गया। वे दोनों बिलकुल ही असंगत बातें कर रहे थे। दोनों की बातों में कोई भी सम्बन्ध न था। एक आकाश की बातें कर रहा था, दूसरा पाताल की। उन दोनों में कोई भी सम्बन्ध न था। एक आकाश की बातें कर रहा था, दूसरा पाताल की। उन दोनों में कोई नाता नहीं था, उनमें कोई जोड़ नहीं था। उनमें कोई संगति नहीं थी।

लेकिन एक और भी अजीब बात थी। यह तो स्वाभाविक था, दो पागल आदमी बातें करें—तो उनकी बातों में सगति, तालमेल नहीं हो सकता। लेकिन इससे भी आश्चर्य की बात थी कि जब एक बोलता था, तो दूसरा चुप रहता था। जब दूसरा बोलना बन्द करता

था, तब पहला बोलना शुरू करता था। लेकिन दोनों की बातों में कोई सम्बन्ध नहीं था।

जुंग भीतर गया और उसने उनसे पूछा कि मित्रो मैं बहुत हैरानी में हूं। जब एक बोलता है, तो दूसरा चुप रहता है। क्यों? तो दोनों हंसे। उन्होंने कहा कि हम कन्वर्सेशन का नियम जानते हैं, बातचीत का नियम हमें पता है।

लेकिन उसने पूछा कि इतना जब तुम्हें पता है—बातचीत का नियम। तो मैं यह भी देख रहा हूं कि जब एक बोलना बन्द करता है, तो जहां से बात छूटती है—दूसरा न मालूम कहां से शुरू करता है। उससे कही गई बात का कोई सम्बन्ध नहीं होता। वे दोनों पागल हंसने लगे और उन्होंने कहा—क्या तुमने कभी भी कोई ऐसी बातचीत सुनी हैं, जिसमें सम्बन्ध होता हो?

जो लोग थोड़े ज्यादा सोफिस्टीकेटेड हैं, थोड़े से ज्यादा धोखा देने में कुशल हैं, वे इस तरह बातचीत शुरू करते हैं कि मालूम पड़ता है कि दोनों में सम्बन्ध है। लेकिन सम्बन्ध कोई भी नहीं होता है। क्योंकि जब एक बोलता है, तो दूसरा अपने भीतर बोले चला जाता है। बोले चला जाता है। जब पहला बन्द होता है, दूसरा शुरू करता है, तो वह वहां से शुरू नहीं करता, जहां से दूसरे ने बन्द किया। वह वहां से शुरू करता है, जहां उसके भीतर सिलसिला था। और तब सारी चीजें न मालूम क्या अर्थ ले लेती हैं।

मुझे आप सुन रहें हैं—तो ऐसा प्रश्न उठना बहुत कठिन नहीं है।

और उन्हीं मित्र ने पूछा है, कि आपकी बहुत सी बातें अनेक शास्त्रों से मिलती-जुलती मालूम पड़ती हैं।

न आप मुझे समझ रहे हैं, न शास्त्रों को समझ रहे हैं। मेल-जोल ही बिठाने की कोशिश कर रहे हैं—कि किससे मिलती है बात, किससे नहीं। यह कम्पेरिजन, यह तुलना करने की जरूरत क्या

है ? मैं सीधा आपसे बातें कर रहा हूं । इसमें बीच में और किसी को मिलाने-जुलाने के लिए लाने की आवश्यकता क्या है ? और अगर आप लाएंगे, तो क्या आप मुझे समझ सकेंगे ? आपका चित्त अगर इस तुलना में पड़ जाएगा, तो समझना बहुत मुश्किल हो जाएगा ।

सीधी सी बात मैं कह रहा हूं, उसे सीधी समझने की कोशिश करें । बीच में और बहुत शास्त्रों को, गुरुओं को, शास्ताओं को लाने का क्या प्रयोजन है ? अगर सीधे आप समझने की कोशिश करेंगे, तो बहुत कठिन हो जाता है । क्योंकि शब्दों की ही तो तुलना करेंगे । और शब्दों की तुलना से इतनी भ्रांतियां पैदा हुई हैं, जिनका कोई हिसाब नहीं है । क्योंकि पहले तो जो मैं कहना चाहता हूं, वही शब्द में आधा भर जाता है, फिर आप जो समझना चाहते हैं, अगर तैयार हैं किसी शास्त्र के माध्यम से समझने को, तो जो आधा बचता है, उसकी हत्या आप कर देते हैं । फिर शब्द बिलकुल थोथा, चली हुई कारतूस की तरह आपके पास पहुंचता है, जिसमें कोई प्राण नहीं रह जाता । समझने की कोशिश सीधी होनी चाहिए ।

आप एक गुलाब के फूल को देखते हैं, तो आप जमाने भर के गुलाब के फूलों से तुलना करते हैं ! तब उसको तुलना से देखेंगे या कि सीधा देखेंगे ? और क्या एक गुलाब के फूल की तुलना, किसी भी दूसरे गुलाब के फूल से की जा सकती है ? कोई जरूरत भी नहीं है, सम्भावना भी नहीं है । हर गुलाब का फूल अपनी तरह का फूल है । अनूठा है, अद्वितीय है, बेजोड़ है । छोटा सही, बड़ा सही, कैसा भी सही—वह अपने तरह का है । उसे आप दूसरे गुलाब के फूल से कैसे तौलिएगा ? और तौलने में एक बात तय है, इस गुलाब के फूल को देखने से आप वंचित रह जाएंगे ।

आज रात आकाश में तारे निकले हुए हैं । इनको तौलिए पिछली रात के तारों से ? और इसमें आप भूल जाइये, भटक जाइये, फिर इस रात के तारे आपको दिखाई नहीं पड़ेंगे । रोज चांद निकलता है, रोज सूरज निकलता है । हम रोज तौलते हैं हर चीज को !

एक मित्र आए । उन्होंने कहा कि यहां के वृक्ष तो बहुत अच्छे हैं, लेकिन एक और हिल स्टेशन है, वहां के और भी अच्छे हैं । मैंने उनसे कहा, इन वृक्षों को देखिए । ये जो आनन्द दे सकते हों, उसे पाइए । ये जो संदेश दे सकते हों, उसे सुनिए । लेकिन और किसी पहाड़ी के वृक्षों को बीच में लाने का प्रयोजन क्या है ? और मैंने उनसे कहा, आप जब उस पहाड़ी पर जाओगे, तब किन्हीं और पहाड़ियों के वृक्षों को बीच में ले आओगे । ऐसे आप कभी भी सत्यों को सीधा नहीं देख सकेंगे ।

तुलना करने वाला मन कभी भी सीधा देखने में समर्थ नहीं रह जाता । और जो भी चीज देखनी हो, सीधी देखनी चाहिए । बीच में किसी और चीज का पर्दा पड़ जाता है, तो फिर हम देखते नहीं, हम सिर्फ तुलना करते रह जाते हैं । और देखने जो उपलब्ध हो सकता था, उससे व्यर्थ ही वंचित हो जाते हैं ।

तो मैं निवेदन करूंगा तुलना न करें । किसी दिन जब सत्य का अनुभव होगा, जीवन की प्रतीति होगी, तो जरूर आपको पता चल जाएगा कि हजारों-हजारों लोगों को वह प्रतीति हुई है । और हजारों लोगों ने उस प्रतीति को शब्द देने के प्रयास किए हैं । हजारों किताबों में वे शब्द लिखे हुए हैं । लेकिन जब आपको प्रतीति होगी, तभी उन शब्दों का अर्थ भी आपके सामने प्रगट होगा और खुलेगा, उस प्रतीति के पहले उन शब्दों को आप पकड़ लेंगे, तो न तो अर्थ खुलेगा, न रहस्य खुलेगा उनका, बल्कि उन शब्दों के पकड़ लेने के कारण, जो अनुभव आपको हो सकता था—सीधा इमीजिएट, प्रत्यक्ष, वह भी आपको नहीं हो सकेगा ।

शब्दों का एक रोग है हमारे मन को । हम उन्हें पकड़कर इकट्ठा कर लेते हैं । जैसे हम धन इकट्ठा करते हैं, ऐसे ही हम शब्द इकट्ठे कर लेते हैं और जितने ज्यादा शब्द हमारे मन पर इकट्ठे हो जाते हैं, उतना चीजों को सीधा देखना कठिन हो जाता है ।

एक फकीर था नसरुद्दीन। एक घर में नौकरी करता था। उस घर के मालिक ने दूसरे दिन ही उसे कहा कि तुम बहुत अजीब आदमी हो। तीन अंडे खरीदकर लाने थे, तुम तीन बार बाजार गए। तीन अंडे एक ही बार में लाए जा सकते हैं। तीन बार जाने की कोई जरूरत नहीं है। बात बिल्कुल सीधी और साफ थी कि तीन अंडे खरीदने हों...तो वह एक अंडा खरीदकर लाया, उसको रखकर फिर गया, फिर दूसरा खरीदकर लाया, फिर तीसरा खरीदकर लाया। तो उसके मालिक ने कहा, ऐसे काम नहीं चलेगा। तीन बार जाने की जरूरत नहीं थी। एक बार जाना काफी था। उस नौकर ने कहा, आप निश्चिन्त रहें, मैंने आपका शब्द समझ लिया, आगे ऐसा ही होगा।

आठ दिन बाद उसका मालिक बीमार पड़ा। उसने कहा, जाओ, वैद्य को बुला लाओ। वह वैद्य को भी बुला लाया और आठ-दस आदमियों को और बुला लाया। उसके मालिक ने कहा, वैद्य तो ठीक है, लेकिन ये आठ-दस आदमी कैसे? उसने कहा—मैंने सोचा कि वैद्य को ले चलूंगा, हाथ देखकर कहेगा फलानी दवा खरीदकर लाओ—मैं ड्रगिस्ट को भी ले आया, एक केमिस्ट को भी लिवा लाया, दवा बेचने वाले को भी ले आया। फिर मैंने सोचा दवा ने काम किया, या न किया, आप बचे या न बचे, तो एक कब्र खोदने वाले को भी लिवा लाया हूं। और आपने ही तो कहा था, कि तीन अंडे तीन बार खरीदने जाने की कोई जरूरत नहीं है?

शब्द को पकड़ लिया। और फिर शब्द से ऐसा अर्थ भी निकल सकता है, कौन सी कठिनाई है?

मैंने कहा, मेरी किताबों को आग लगा देना, अगर शास्त्र बन जाएं। फौरन आप समझ गए कि मैंने कहा, जाओ शास्त्रों में आग लगा दो। तीन अंडे इकट्ठे ही खरीद लाए आप। थोड़ी भी तो समझ, थोड़ी भी तो सहानुभूति, थोड़ी भी तो सिम्पैथेटिक अण्डरस्टेंडिंग होनी चाहिए। क्या मैं कह रहा हूं—शब्दों के शरीर को

पकड़ लेंगे या थोड़ा उनकी आत्मा में झांकने की कोशिश करेंगे, तो ऐसा नहीं दिखाई पड़ेगा कि मैं शास्त्रों का विरोधी हूं। शायद मुझसे ज्यादा मित्र उनका कोई भी नहीं हो। दुश्मन तो वे ही हैं, जो उनको पकड़कर बैठ गए हैं। उनके कारण ही शास्त्रों के भी प्राण निकल गए हैं और पकड़ने वालों के भी प्राण निकल गए हैं।

आप शास्त्रों से मुक्त हो जाएं, तो एक दूसरी घटना भी घटेगी शास्त्र आपसे मुक्त हो जाएंगे। एक म्युचुअल इम्प्रिजनमेंट चल रहा है। हम शास्त्रों को पकड़े हुए हैं, शास्त्र हमको पकड़े हुए हैं। न शास्त्र इधर हिल-डुल सकते हैं, न हम। और फिर ऐसा जोर से पकड़ लिया है शब्दों को कि उनकी जान निकाल दी है, उनकी गर्दन कस ली है बिल्कुल। इसलिए सुन नहीं पाते हैं। क्योंकि शब्दों पर ऐसा आग्रह, ऐसा दुराग्रह पकड़ा हुआ है कि देख नहीं पाते हैं शब्दों के पीछे।

शब्द इशारे हैं!

अगर मैं चांद को अंगुली बताऊं और कहूं यह चांद है, आप मेरी अंगुली पकड़ लें—कि कहां है चांद, आपने अंगुली बताई थी, अंगुली में चांद कहां है? मैं भी मुश्किल में पड़ जाऊंगा और आप भी। मैं कहूंगा, क्षमा करें, कृपा करें मेरी अंगुली छोड़ें। अंगुली से चांद दिखाया था, अंगुली चांद नहीं थी। कभी भूलकर नहीं कहा था कि अंगुली चांद है। कहा था कि इधर चांद है—आपको अंगुली दिखाई पड़ी। चांद तक आंख उठाने की कोशिश न की, अंगुली पकड़ ली।

अब ऐसे ही हम सब अंगुलियां पकड़े हुए हैं—शास्त्रों की भी शास्ताओं की भी। और कोई भी कुछ कह रहा है—तो हम उसकी अंगुली जल्दी पकड़ने को तैयार हैं। लेकिन चांद की तरफ देखने की...और चांद की तरफ तभी देख सकेंगे, जब अंगुली को बिल्कुल छोड़ दें और भूल जाएं। अंगुली पर आंख न रह जाय, तो चांद दिखाई पड़ सकता है।

तो मैं जो शब्दों का उपयोग कर रहा हूं, बड़ी मजबूरी में, बड़ी हेल्पलेसनेस में—बड़ी असहाय अवस्था है शब्दों का उपयोग करने में। क्योंकि जो मैं कहना चाहता हूं, वह शब्दों के बाहर है, और शब्दों में कहना है। कहने का और कोई उपाय नहीं है। तो अगर शब्द पकड़ लेंगे, तो एक मजाक हो जाएगी और कुछ भी नहीं होगा। तो शब्द में जो इशारा, जो संकेत है, शब्द के पीछे छिपी हुई जो आकांक्षा है, शब्द के पीछे छिपी जो आत्मा है, उस पर ध्यान न जा पाएगा।

एक सितार रखी हो और कोई समझ ले कि तार और यह सितार का सारा ढांचा, और यन्त्र, यही संगीत है,···तो भूल में पड़ जाएगा। न तो सितार का ढांचा संगीत है, न सितार के तार संगीत हैं। ढांचा और तार तो केवल एक इशारा बन जाते हैं, किसी और चीज को जन्मने के लिए। संगीत कुछ और ही है। लेकिन अगर कोई सितार को ढोता फिरे दिन-रात, कि मैं संगीत का बड़ा प्रेमी हूं, तो वह गल्ती में पड़ गया। उसने शरीर को पकड़ लिया संगीत के, आत्मा पर उसका ख्याल न गया।

ऐसे ही हम शब्दों को पकड़ लेते हैं। शब्दों के यांत्रिक रूप में, शब्दों के उपकरण में जिस तरफ इशारा था—जिस संगीत की तरफ, जिस सत्य की तरफ, उस पर हमारा ख्याल ही नहीं आता। और फिर इन शब्दों की ही व्याख्या में हम लग जाते हैं। शब्दों की व्याख्या करने वाले मन को ही मैं शास्त्रीय मन कहता हूं। वह चाहे गीता के शब्दों की व्याख्या करता हो या मेरे शब्दों की। यही शास्त्रीय बुद्धि है···यह शब्दों को पकड़ लेने वाली, शब्दों पर जीने वाली, शब्दों पर सोचने वाली। इस तरह का मनुष्य कभी सत्य के निकट नहीं पहुंच पाता। क्योंकि शब्दों से सत्य का क्या लेना-देना है? सत्य की तरफ तो···शब्द इतनी ही अगर खबर दे सकें कि शब्दों को छोड़ देना है, तो बात पूरी हो जाती है।

मैं जिन शब्दों का उपयोग कर रहा हूं, बहुत खुश नहीं हूं। आज तक कोई भी बहुत खुश नहीं रहा शब्दों का उपयोग करके।

लेकिन करें क्या?

एक मित्र ने पूछा है, जो सत्य को जान लेते हैं, वे फिर बोलते ही नहीं और आप तो बोलते हैं?

बड़ी मजेदार बात पूछी है। अब तो उनके हिसाब से ही··· और ये वही मित्र हैं, जिनने पहले प्रश्न पूछे हैं शास्त्रों के पक्ष में। तो ये शास्त्र किसने बोले होंगे? सत्य को जानने वाले बोलते नहीं हैं। तो ये बुद्ध, महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट जो बोलते हैं, ये तो सत्य को जानने वाले रहे नहीं? फिर सत्य को न बोलने वाले का पता कैसे लगा आपको और कहां से, क्योंकि वह कभी बोला नहीं गया? उसका पता आपको लग सकता नहीं। कैसे खबर मिली? क्या किसी आदमी को गूंगा देखकर आप समझ लेंगे कि वह सत्य को उपलब्ध हो गया है? या किसी आदमी को चुपचाप बैठे देखकर समझ लेंगे कि सत्य को उपलब्ध हो गया है?

तब तो बड़ी आसान बात है। गूंगा होना भी कठिन नहीं, गूंगेपन को साधना भी कठिन नहीं। और दो-तीन वर्ष चुप रह जाएं तो फिर बोल भी नहीं सकते, चाहें तो भी। क्योंकि दो-तीन वर्ष में बोलने का यन्त्र फिर खराब हो जाता है। तब तो बड़ी आसान बात है। मामला सिर्फ बोलने के यन्त्र को खराब करने का है। तो फिर सत्य को उपलब्ध आप हो जाएंगे। इतना आसान नहीं था।

लेकिन हां, प्रश्न पूछनें वाले मित्र जैसे सोचने वाले बहुत लोग हुए हैं। कई लोग सोचते हैं···आंख बन्द कर लो, आंख फोड़ लो, तो सत्य को उपलब्ध हो जाओगे! कोई सोचता है, मुंह बंद कर लो, वाणी बंद कर लो! तो सत्य को उपलब्ध हो जाओगे! कोई सोचता है, कान बन्द कर लो! जो और भी बहुत अग्रणी विचारक हैं, वे सोचते हैं, आत्मघात ही कर लो तो सत्य को उपलब्ध हो जाओगे। क्योंकि तब सभी इन्द्रियां बन्द हो जाएंगी। बोलना भी तो एक इन्द्रिय है। आत्मघात करने से सभी इन्द्रियां बन्द हो जाती हैं। सो

२०

जल समाधि लेने वाले और मिट्टी में समाधि लेने वाले और मरने वालों का लम्बा सिलसिला है ! आत्महत्या करने वालों का ! वे भी सत्य को उपलब्ध हो जाते हैं ?

बहुत अजीब बात है। सत्य को उपलब्ध होने से बोलने, न-बोलने का कोई भी सम्बन्ध नहीं है। सत्य को उपलब्ध हुए लोग नहीं बोलें, या बोलें, इससे भी कोई सम्बन्ध नहीं है। एक बात तय है कि जिन्होंने भी सत्य को जाना, उन्हें बोलने में बड़ी कठिनाई हो गई। लेकिन उनकी दया और करुणा का यह कारण रहा होगा कि जिसे नहीं बोला जा सकता, उसे भी उनने बोलने की कोशिश की है, चेष्टा की है। जो नहीं कहा जा सकता, उस तरफ भी इशारे किए हैं। जिस तरफ आंखें नहीं उठाई जा सकतीं, उस सूरज की तरफ भी खबर की है। उनकी पीड़ा को हम नहीं समझ सकते। वे कितनी पीड़ा से गुजरते होंगे, यह कहना कठिन है। क्योंकि उनके सामने सबसे बड़ा पैराडॉक्स, सबसे बड़ी विरोधाभासी चीज खड़ी हो जाती है। कुछ उन्होंने जाना है, और वह जाना हुआ, लुटा जाना चाहता है, बंट जाना चाहता है। लेकिन बांटने का कोई साधन हाथ में नहीं है। उसे कैसे बांटें, उसे कैसे लुटाएं ?

बहुत अधूरे उपकरण हैं शब्दों के, भाषा के, उनका ही उपयोग करना पड़ता है। उनका उपयोग किया गया है। जो सत्य को जानता है, वह बोलता नहीं, फिजूल की बात है। लेकिन जो सत्य को जानता है, वह जानता है यह भी, कि जो मैंने जाना है, वह बोला नहीं जा सकता है। लेकिन फिर भी बोलने का हजारों वर्ष से उपक्रम चलता है। कोई करुणा है सत्य के जानने के साथ ही—कोई प्रेम है, जो बंट जाना चाहता है। कोई चीज भीतर जन्मती है, वह बिखर जाना चाहती है, फैल जाना चाहती है। जैसे फूल खिलता है, तो उसकी सुगन्ध हवाओं में लुट जाना चाहती है। दीया जलता है, तो उसकी किरणें अंधेरे में दूर की यात्रा पर निकल जाती हैं। जब किसी प्राण में सत्य का दीया जलता है, या सत्य का फूल खिलता है, तब सत्य की

किरणें और सत्य की सुगन्ध भी अनेक-अनेक रूपों में बिखर जाना चाहती है, फैल जाना चाहती है।

जिस जीवन में भी सत्य आया हो, वह हजार-हजार रूपों में प्रगट होना चाहता है। शब्द भी, चित्र भी, रंग भी, काव्य भी न मालूम किन-किन रूपों में वह प्रगट होना चाहता है, बंट जाना चाहता है। जब भी आनन्द उपलब्ध होता है, तो वह बंटना चाहता है।

दुख और आनन्द में यही फर्क है। दुख उपलब्ध होता है तो सिकुड़ता है, आदमी बन्द होता है अपने में, क्लोज होता है। जब आप दुखी होते हैं, तो आप द्वार बन्द करके एक कोने में बैठ जाना चाहते हैं। नहीं चाहते कोई आए, कोई बोले, कोई मिले। दुख सिकोड़ता है। जब बहुत दुखी होते हैं, तो नशा पीकर बन्द हो जाना चाहते हैं—कि किसी का मुझे पता ही न रहे कि कोई है। और भी ज्यादा दुखी होते हैं तो आत्महत्या कर लेते हैं, क्योंकि मर जाने से फिर किसी से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाएगा।

लेकिन जब आनन्द उपलब्ध होता है, तब किसी आदमी को बन्द कमरे में बैठे देखा है ? जब आनन्द उपलब्ध होता है, तो वह खोजने निकलता है—किसको दे दूं। कोई मिल जाय, जिससे मैं शेयर कर लूँ, जिसको भागीदार बना लूं। जो लोग जंगल भी भाग गए थे, अगर उनको वहां आनन्द मिल गया, तो भागकर वापस बस्ती में आ गए।

महावीर जंगल में थे, बुद्ध जंगल में थे। फिर लौटकर बस्ती में कैसे आ गए, कौन खींच लाया ? आप ? मैं ? हम तो पहले भी बस्ती में रहते थे। वे बस्ती से भाग गए थे। लौट कैसे आए ? कौन ले आया ? भीतर एक आनन्द का जब जन्म हुआ तो वह आनन्द मांगने लगा—शेयर करो, बांटो। किसको बांटें ? भागे बस्ती की तरफ, जहां लोग थे। वहां जाकर उनको कह देना होगा, वे किरणें उन तक पहुंचा देनी होंगी।

बुद्ध जिस दिन मरे, सुबह ही हजारों भिक्षु इकट्ठे हो गए।

उन्हें प्रेम करने वाले हजारों लोग। बुद्ध ने उनसे कहा कि आज अन्तिम क्षण है मेरे जीवन का। अब मैं तुमसे विदा लेता हूं। और इसके पहले कि मैं विदा लूं और विलीन हो जाऊं अनन्त में, कुछ तुम्हें पूछना हो, पूछ लो।

वे सारे भिक्षु, वे सारे उन्हें प्रेम करने वाले लोग, उनकी आंखें आंसुओं से भरी हैं। उन्हें कोई प्रश्न नहीं सूझता। वे कहते हैं बहुत आपने दिया, बहुत आपने बांटा। कुछ अब हमें नहीं पूछना—सब आपने बताया है। तीन बार बुद्ध पूछते हैं। फिर जब कोई कुछ नहीं पूछता, तो वे उठ कर पास में वृक्ष के पीछे चले जाते हैं। ताकि वहां से शांति से ध्यान में डूबते चले जाएं और ध्यान की अन्तिम गहराई में विलीन हो जाएं। वे वहां पीछे चले जाते हैं।

जिस गांव के किनारे यह घटना घटती है, उस गांव में सुभद्र नाम का एक व्यक्ति था। बुद्ध उस गांव से तीन बार निकले थे। लेकिन सुभद्र अपनी दुकान में व्यस्त था। उसने सोचा अगली बार आएंगे, तब मिल लूंगा, तब दर्शन कर लूंगा, तब सुन लूंगा उनकी बातें।

अभी उसे पता चला कि अब अगली बार बुद्ध नहीं आएंगे उस गांव से, अब अन्तिम दिन है उनका। वह दुकान बंद करके भागा। इधर वह आया तो उसने पूछा, कहां हैं? मुझे कुछ पूछना है। तो भिक्षुओं ने कहा, चुप। वे हमसे विदा भी ले चुके। और उन्होंने पूछा भी था, लेकिन कोई पूछने वाला नहीं था। अब देर हो गई, अब बहुत देर हो गई। जब वे तीन बार तेरे गांव में आए थे, तब तू कहां था?

उसने कहा, मैं तो वहां था, लेकिन सोचा कि फिर कभी अगली बार। अगर कुआ घर पर आ जाय, तो आप भी सोचेंगे अगले दिन प्यास लगेगी, तब देखेंगे। पर उसने कहा कि अब जो दुबारा वे नहीं आ सकेंगे। क्या नहीं हो सकता ऐसा कुछ कि मैं उनसे पूछ लूं? दो शब्द मुझे जानने हैं, सुनने हैं। लेकिन भिक्षुओं ने कहा, कि नहीं, अब यह नहीं हो सकता।

लेकिन बुद्ध को यह भनक कान में पड़ गई। वे वृक्ष के पीछे से उठकर आगे आ गए। और उन्होंने कहा, सुभद्र, जो भी पूछना हो, पूछ लो। क्योंकि मेरे नाम पर यह कलंक न रह जाय कि मैं जीवित था, कोई प्यासा आया था और प्यासा लौट गया।

इस आदमी को सत्य उपलब्ध नहीं हुआ होगा निश्चित ही, क्योंकि नहीं तो यह आदमी मरते वक्त भी बोलने की इतनी उत्सुकता दिखाता? गलती में रहे हम अब तक कि सोचते थे कि इस आदमी को सत्य उपलब्ध हो गया?

लेकिन सत्य तो उपलब्ध होता है। हजारों लोगों को हुआ है, होगा। वे अपनी-अपनी सामर्थ्य से चेष्ठा करते हैं उसे बांट देने की। लेकिन जब हम उनके शब्दों को पकड़कर सोच लेते हैं कि सत्य मिल गया, तो भूल हो जाती है। यही शास्त्र पकड़ने की भूल है। बुद्ध के वचन को हम पकड़ लें, क्योंकि बुद्ध को सत्य मिला था? तो उनके वचनों को हम पकड़ लें—पूजा करें उन वचनों की, उन वचनों पर टीका-टिप्पणी करें, उन वचनों को कंठस्थ करें, उन वचनों को दोहराते रहें—जीवन इसमें व्यतीत कर दें, तो भूल हो जाती है। तो फिर हम इन्हीं शब्दों में अटके रह जाते हैं। तो फिर हम यहीं उलझ-कर रह जाते हैं।

एक आदमी के जीवन में प्रेम उपलब्ध हुआ हो। वह प्रेम के कुछ गीत गाए और हम उन गीतों को याद कर लें, पकड़ लें, कंठस्थ कर लें, और सोचें कि हम भी प्रेम को उपलब्ध हो गए हैं—तो क्या यह ठीक होगा? क्या प्रेम के गीत याद कर लेने से कोई प्रेम को उपलब्ध होता है? तो क्या सत्य के शब्द, सत्य की अभिव्यक्तियां—इनको पकड़ लेने से कोई सत्य को पाता है? न सत्य और न प्रेम के गीत याद कर लेने से कोई सत्य और प्रेम को पाता है।

लेकिन जिसके जीवन में प्रेम आया था, हो सकता है उसके गीतों में प्रेम बहा हो। उसने अपनी तरफ से गीतों में प्रेम का दान किया

हो। उसने जो जाना था, उसने जो जिया था, वह बहा हो उससे। उससे जरूर बहा था। लेकिन आप अगर उसको ही पकड़कर ठहर जाते हैं, तो आपको वह नहीं मिलने को है।

ये जो दो भेद हैं, ये अगर हमारे ख्याल में न रहें तो कठिनाई पैदा हो जाती है। आपको भी वह उपलब्ध हो सकता है, जो किन्हीं के शब्दों से प्रगट हुआ है। लेकिन वह उपलब्ध होगा निःशब्द में जाने से, शून्य में जाने से, निर्विचार में जाने से, ध्यान में जाने से। क्योंकि जिनको भी वह कभी उपलब्ध हुआ है ध्यान में, निर्विचार में, शून्य में ही उपलब्ध हुआ है।

किसी ने भी कहा है कभी आज तक कि मुझे शास्त्र से सत्य उपलब्ध हुआ है? किसी ने कहा है यह आज तक कि मुझे शास्त्र से सत्य उपलब्ध हुआ है?

किसी ने भी नहीं। कहेगा भी कोई कैसे। शास्त्र से शब्द मिल सकते हैं, सत्य नहीं। सत्य पाने की तीव्र आकांक्षा हो तो इतनी तैयारी जरूरी है।

एक और मित्र ने पूछा है, उनके प्रश्न की चर्चा करके फिर हम ध्यान के लिए, रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे।

एक मित्र ने पूछा है, कि क्या मैं जप में, राम-नाम में, इन सबमें विश्वास नहीं करता हूं? क्या इनका कोई मूल्य और फायदा नहीं है?

एक और ने पूछा है, क्या एकाग्रता और ध्यान एक ही चीजें नहीं हैं?

थोड़ा इन पर चर्चा कर लें, उससे ध्यान को भी समझने में सुविधा होगी। फिर हम ध्यान के लिए बैठेंगे।

पहली बात, ध्यान और एकाग्रता एक ही बात नहीं है। दोनों बड़ी भिन्न बातें हैं। एकाग्रता, आत्म-सम्मोहन की विधि है, सेल्फ-हिप्नोसिस की आटो-हिप्नोसिस की—खुद को मूर्छित कर लेने का

उपाय है। एकाग्रता, कान्सन्ट्रेशन, खुद को मूर्छित कर लेने की विधि है।

ध्यान आत्म-ज्ञान की विधि है।

ध्यान है आत्म-ज्ञान की विधि और एकाग्रता है आत्म-मूर्छा की।

एकाग्रता है—स्वयं को भूल जाने की विधि, ध्यान है—स्वयं को जान लेने की।

एकाग्रता है—फॉरगेटफुलनेस, विस्मरण।

ध्यान है—रिमेम्बरिंग, स्मृति।

इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

हजारों वर्षों से यह भ्रम है कि एकाग्रता ही ध्यान है। और यह भ्रांति इतनी महंगी पड़ी है जितनी महंगी कोई भ्रांति नहीं पड़ी है।

एकाग्रता का अर्थ है चित्त को किसी एक चीज पर रोकना, ठहराना।

दीये की ज्योति पर ठहरा लें, राम के नाम पर ठहरा लें किसी प्रतिमा पर ठहरा लें, किसी सिम्बल पर ठहरा लें, किसी एक चीज पर, एक विचार पर, एक धारणा पर—चित्त को सब भांति रोक लेने का प्रयास है।

चित्त को जब इस भांति रोक लेने की तीव्र चेष्टा की जाती है, तो क्या होता है? चित्त को जब बहुत जोर से कान्सन्ट्रेट करने की, एकाग्र करने का श्रम किया जाता है तो क्या होता है?

होता है यह कि जब तीव्रता से चित्त को एक जगह जबरदस्ती हम रोकने की कोशिश करते हैं, तो चित्त वहां से भागने की कोशिश करता है। चित्त का स्वभाव गति है। चित्त डायनामिक है। माइन्ड जो है, चित्त जो है, वह डायनामिक है, गत्यात्मक है—जाना चाहता है, गति करना चाहता है, ठहरना नहीं चाहता।

समझ लें, गंगा को हमें ठहराना हो। गंगा को ठहराना हो, तो क्या करना पड़े? गंगा जीवन्त धारा है—बही जा रही है पहाड़ों से समुद्र की तरफ। चित्त भी बहा जा रहा है। चित्त की धारा भी,

नदी भी, सरिता भी बही जा रही है अनन्त की तरफ। हम उसे रोक लेना चाहते हैं, ठहरा लेना चाहते हैं। तो एक ही रास्ता है। वह रास्ता यह है कि गंगा का पानी जमकर बर्फ हो जाय। तो गंगा ठहर जाएगी वहीं के वहीं, जहां है। तो वह जो डायनामिक गंगा है, वह फ्रोजन हो जाय, वह जो चलती गंगा है, वह ठहर जाय, बर्फ हो जाय, तो जहां के तहां ठहरी रह जाएगी।

साइबेरिया में या ठंडे स्थानों में नदियां जम जाती हैं। जम जाय गंगा तो ठहर सकती है, नहीं तो नहीं ठहर सकती। चित्त की धारा भी जम जाय, बर्फ बन जाय, तो ठहर सकती है, नहीं तो नहीं ठहर सकती।

जगत में चित्त प्रवाहमान है, बहा जाता है। तो चित्त का बर्फ हो जाना, कान्सन्ट्रेशन—हो सकता है। और चित्त बर्फ कब होता है, ठहरता कब है? जब नींद में चला जाता है। जब मूर्च्छा में चला जाता है, तब ठहर जाता है। फिर उसमें कोई गति नहीं होती। एक बेहोश आदमी के चित्त में कोई गति नहीं होती।

तो अगर बहुत तीव्र हम कोशिश करें चित्त को ठहराने की, ठहराने की, ठहराने की, तो पहले चित्त उपाय करेगा भागने का—भागने का। फिर हम नहीं मानें, नहीं मानें, प्रयास जारी रखें, तो एक रास्ता रह जाएगा चित्त के सामने कि वह सो जाय। सोते से ठहर जाय, मूर्च्छा आ जाय; हिप्नोसिस, नींद आ जाय, सम्मोहित हो जाय—तो ठहर जाएगा। निश्चित ही इस ठहरने में फिर दुख का कोई पता नहीं चलेगा। क्योंकि जब चित्त मूर्च्छित है, तो पता किसको चले।

अब तो हिप्नोसिस के द्वारा, सम्मोहन के द्वारा आपरेशन भी होते हैं— आपको ज्ञात होगा। अब तो यूरोप और अमरीका के बड़े-बड़े अस्पतालों में एक हिप्नोटिस्ट एक सम्मोहक भी रखते हैं। और बड़े सफल हुए हैं प्रयोग। एक आदमी को बेहोश कर देते हैं, कांसनट्रेशन के द्वारा, एकाग्रता के द्वारा। उस आदमी को कहते हैं अपनी

आंख को इस प्रकाश पर लगाओ। वह एक पांच मिनट तक आंख को इस प्रकाश पर देखता रहता है। फिर सारा चित्त उसका धीरे-धीरे, धीरे-धीरे जमता जाता है और मूर्च्छित हो जाता है। जब वह मूर्च्छित हो जाता है, तो उसे कह देते हैं मूर्च्छित होती अवस्था में, कि अब तुम आधा घंटे के लिए मूर्च्छित हो गए। आधा घंटे तक उसका चित्त फ्रोजन, जमा हुआ रह जाएगा। अब उसका पैर काट डालो, उसे पता नहीं चलेगा। उसका आपरेशन कर दो, उसे पता नहीं चलेगा।

तो अनस्थीसिया की, बेहोश करनी वाली दवाओं का उपयोग अब वैज्ञानिक कहते हैं, बहुत जरूरी नहीं है। जैसे-जैसे हिप्नोटिज्म की हमारी सामर्थ्य, समझ बढ़ती जाएगी, वैसे-वैसे आदमी को बेहोश केवल एकाग्रता के द्वारा किया जा सकता है। फिर आपरेशन करना बहुत आसान है, क्योंकि वह आदमी मूर्च्छित है, उसे पता नहीं कि क्या हो रहा है—हाथ-पैर काटा जा रहा है, या क्या किया जा रहा है।

यह जो स्थिति है, यह आनन्द की स्थिति नहीं है। यह आत्म-बिस्मरण की स्थिति है। इसको ही कोई आनन्द समझ लेगा, तो भूल में पड़ जाता है। इसी भांति नाम-जप का भी परिणाम होता है। एकाग्रता का जो परिणाम है, वह नाम-जप का भी परिणाम है। एक ही शब्द को बार-बार दोहराने, बार-बार दोहराने से चित्त में ऊब पैदा होती है, बोरडम पैदा होती है। ऊब की वजह से नींद पैदा होती है।

तो चाहे एकाग्रता से नींद ले आएं और चाहे ऊब से। अगर आप यहां ऊब जाएं मेरी बातों से तो आप पाएंगे, आपको नींद आनी शुरू हो गई। बोरडम नींद ले आती है। इसलिए मन्दिरों में लोग अक्सर सोए हुए नजर आते हैं। धर्म-सभाओं में लोग सोए हुए मिलेंगे। क्योंकि वही बातें, वही राम की कथा, बहुत बार सुनी जा चुकी है। उससे ऊब पैदा होती है। ऊब पैदा होने से नींद आ जाती है। तो राम, राम, राम, राम, राम, राम कोई जपता रहे तो ऊब

२१

पैदा होगी।

एक घटना मैंने सुनी है।

एक आदमी पर अदालत में मुकदमा चला। उसने एक स्त्री के सिर पर चोट कर दी थी और अकारण। एक बस में वह बैठा हुआ था, एक डबल-डेकर बस में, दो मंजिली बस में बैठा हुआ था, नीचे की मंजिल में और उसके पड़ौस में एक औरत बैठी हुई थी। अचानक उसने उस औरत के सिर पर हमला कर दिया। वह औरत बेहोश हो गई। वह औरत अपरिचित थी।

उस पर मुकदमा चला। वह पकड़ लिया गया। और मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा कि तुमने इस स्त्री पर क्यों हमला किया? न तुम्हारा कोई परिचय है, न जान पहचान। तुम पागल तो नहीं हो?

उसने कहा, पागल तो मैं नहीं हूं। लेकिन उस क्षण पागल हो गया था। मजिस्ट्रेट ने पूछा क्या घटना घटी, जिससे तुम हमला करने को हुए? तो उसने कहा घटना ऐसी घटी है।

मैं बस में आकर बैठा। मेरे पीछे ही यह औरत भी आकर बैठी। इसके हाथ में एक बैग था। इसने बैग को खोला। उसके भीतर से पर्स निकाली। फिर बैग को बन्द किया, फिर पर्स को खोला, फिर पर्स में से रुपये निकाले। फिर पर्स बन्द की। कंडक्टर आ रहा था। लेकिन कंडक्टर दूसरे ग्राहक के पास चला गया। इसने फिर अपनी पर्स खोली, रुपया अन्दर रखा, पर्स बन्द की; बैग खोला, बैग में पर्स रखी, बैग बन्द किया। कंडक्टर फिर इधर आ रहा था। इसने फिर बैग खोला, पर्स बाहर निकाली, बैग बन्द किया; पर्स खोली, रुपया बाहर निकाला, पर्स बन्द की। फिर कंडक्टर दूसरी तरफ चला गया। इसने फिर पर्स खोली।

मजिस्ट्रेट बोला, स्टॉप। यू विल ड्राइव मी क्रेजी, तुम मुझे पागल कर दोगे। चुप हो।

उस आदमी ने कहा, सर, दिस इज वाट, दैट हैपन्ड विथ मी। यही तो मेरे साथ हुआ कि मैं एकदम पागल हो गया।

कोई चीज रिपीट, रिपीट, रिपीट, रिपीट; दोहरे, दोहरे, दोहरे, तो दिमाग ऊब जाय, घबड़ा जाय। उस घबड़ाहट में रास्ता एक ही रह जाय कि सो जाओ।

छोटे बच्चे को सुला देते हैं। कहते हैं, मुन्ना राजा सो जा, मुन्ना राजा सो जा, मुन्ना राजा सो जा। थोड़ी देर में मुन्ना राजा ऊब जाता है और सो जाता है। मां समझती है हमारे संगीत का फल है। मुन्ना राजा केवल बोरडम की वजह से सो गए। और मुन्ना राजा के बाप भी सो सकते हैं, अगर यही तरकीब उपयोग में लाई जाय।

जब भी चित्त ऊबेगा, जब भी चित्त परेशान हो जाएगा, एक शब्द की पुनरुक्ति से, तो सिवाय सोने के कोई उपाय नहीं रह जाता है। बहुत पहले लोगों ने यह तरकीब खोज ली थी। एक शब्द को पकड़ लो, दोहराए चले जाओ—ओम, ओम, ओम दोहराए चले जाओ। राम, राम, राम—कोई भी शब्द। अल्लाह, अल्लाह सभी शब्द समान हैं। कोई भी शब्द दोहराए चले जाओ। दोहराते जाओ, दोहराते जाओ, खुद का मन बेचैन हो जाएगा, ऊब जाएगा, घबड़ा जाएगा। घबड़ाहट में एक ही रास्ता रह जाएगा कि सो जाओ तो छुटकारा हो जाए इस परेशानी से। इस रिपिटीशन से मुक्ति का एक ही रास्ता है।

कोई दूसरा कर रहा हो तो आप भागकर चले जाएं। कहीं खुद ही कर रहे हैं, तो भागेंगे कहां?

अगर दूसरा राम-राम-राम जप रहा हो तो हम अपने कान बन्द कर लें। दूसरा राम-राम जप रहा हो, हम अपना रेडियो खोल लें। दूसरा राम-राम जपता हो, हम वह जगह छोड़ दें। लेकिन जब हम खुद ही जप रहे हों, तो हमारा मन क्या करे? कहां जाय? उसके पास एक ही रास्ता है, वह नींद में चला जाय। यह नींद में चले जाना बचाव का उपाय है और कुछ भी नहीं। मन को परेशान करेंगे, मन बचना चाहेगा। आत्म-रक्षा में मन सो जाएगा। यह सेल्फ

डिफेन्स है और कुछ नहीं। आप टार्चर कर रहे हैं, आप परेशान कर रहे हैं। तो आत्मरक्षा में मन एक ही रास्ता देखता है कि सो जाना उचित है। और मन सो जाता है।

इस सोने में एक तरह का सुख मिलता है। और वह सुख यही है कि हमें दुखों का कोई पता नहीं चलता। जब हम बाहर आते हैं तो इतनी देर के लिए जो नींद पैदा हो गई—जो अपने हाथ से पैदा की गई नींद थी, उस नींद के बाद थोड़ी सी राहत मिलती है। थोड़ा हल्कापन, अच्छा लगता है। और वह हल्का लगने की वजह से फिर हम सोचते हैं दुबारा जाएं, तिबारा जाएं। फिर यह एक माइन्ड की हेबिट, एक आदत बन जाती है। फिर रोज-रोज मन मांग करता है—जैसे मांग सिगरेट की करता है, चाय की करता है, वैसे ही वह कहता है अब राम-राम जपो। क्योंकि उससे थोड़ी सी राहत मिलती है। और जिस दिन राम-राम नहीं जपते, उस दिन ऐसा लगता है कि जैसे कोई काम छूट गया, जैसे सिगरेट नहीं पी। ऐसा लगता है कुछ खाली जगह रह गई। ऐसा उससे भी लगता है। ये दोनों एक सी आदतें हैं। इनमें कोई भी फर्क नहीं है।

न तो जप, न एकाग्रता—ये मनुष्य को आत्म-ज्ञान में नहीं ले जाते हैं। आत्म-ज्ञान में तो ले जाता है ध्यान।

और ध्यान का अर्थ है—परिपूर्ण चैतन्य, जागरूकता, कान्शसनेस। बेहोशी नहीं, नींद नहीं—होश। जितना ज्यादा मेरे भीतर जागरूक होता जाय चैतन्य, जितना अलर्ट, जितना अवेअर, जितना बोधपूर्ण—उतना मेरे भीतर क्या है, उसकी जानने की दिशा, जानने की सामर्थ्य, जानने की पात्रता मुझे उपलब्ध होती चली जाती है।

इतना जाग जाना है भीतर—कि भीतर एक कोना भी न रह जाय अनजाना, अपरिचित। भीतर एक अंधेरे का कण भी न रह जाय, इतना जाग जाना है। कि सब हो जाय आलोकित, सब भीतर प्रकाश से भर जाय, होश से भर जाय। एक-एक कोना मेरे चित्त का

मुझसे परिचित हो जाय। जिस दिन टोटल माइन्ड, जिस दिन पूरा चित्त जान लिया जाता है—सिर्फ कान्शस माइन्ड नहीं, टोटल, सिर्फ चेतन मन नहीं, अचेतन भी। वह जो छिपा है अनकान्शस, वह भी। जिस दिन पूरा मन...पूरा मन जिस दिन जान लिया जाता है, उस दिन जीवन के सारे रहस्यों के द्वार खुल जाते हैं। पूरे मन के प्रति जाग जाना है। और जान लिया जाना पूरे मन को, ध्यान है।

तो ध्यान तो सोने की तरकीब नहीं है, जागने की तरकीब है। और एकाग्रता, और नाम जप इत्यादि सोने की तरकीबें हैं, जागने की नहीं। इसलिए जिन कौमों ने इस तरह की सोने की विधियों का उपयोग किया, उनके पूरे प्राण धीरे-धीरे सुस्त होकर सो गए। उनके जीवन में जागरण की प्रफुल्लता, जागरण की ऊर्जा और शक्ति दिखाई पड़नी बन्द हो गई। वे सो गए। उनके जीवन में क्रान्ति और परिवर्तन विलीन हो गए। क्योंकि क्रान्ति और परिवर्तन होता है उसके जीवन में, जो जागा हुआ है। जो सोया हुआ है, उसके घर में आग लग जाय, तो भी वह उठकर नहीं आएगा। जो आदमी जागा हुआ है, घर में आग लगे तो उसको बदलने की कोशिश करेगा।

आदमी के घर में कितनी आग लगी हुई है, इसका कुछ पता है? आदमी निरन्तर आपके भीतर जी रहा है, इसका कुछ पता है? आदमी के जीवन में कितनी दीनता, कितनी दरिद्रता, कितना दुख है, इसका कुछ पता है? लेकिन हम सो रहे हैं—तो पता कैसे हो?

अगर आदमी जागा हुआ होता तो दुनिया बिल्कुल दूसरी हो जाती। इस दुनिया में युद्धों के होने की जरूरत न रह जाती। इस दुनिया में रोज हत्याएं और कत्ल होने की जरूरत न रह जाती। इस दुनिया में आदमी इतना दुखी न होता कि शराब पीए, नशा करे, अपने को भूले। आदमी इतना दीन-हीन, इतना दरिद्र, इतना पीड़ित न होता। यह दुनिया बिल्कुल दूसरी दुनिया हो सकती थी। लेकिन यह दूसरी दुनिया नहीं हो पाई है, क्योंकि हमने अब तक सब भांति सोने की तरकीबें खोजी हैं, जागने की नहीं।

धर्म का कोई सम्बन्ध सोने से और निद्रा से नहीं है। धर्म का सम्बन्ध है, जागरण से। और जागरण का धर्म जिस दिन दुनिया के कोने-कोने, आदमी-आदमी के मन तक पहुंच सकेगा, उस दिन हम मनुष्य के बदलने की कीमिया उपलब्ध कर लेंगे। एक अद्भुत रूप से मनुष्य के जीवन को नया किया जा सकता है।

तो जागरण है ध्यान। और उसका हम अब प्रयोग करेंगे।

□

साधना-शिविर माथेरान, दिनांक २०।१०।६६, रात्रि

८. सृजन का सूत्र

मेरे प्रिय आत्मन् !

मनुष्य एक तिमंजिला मकान है। उसकी एक मंजिल तो भूमि के ऊपर है, बाकी दो मंजिल जमीन के नीचे। उसकी पहली मंजिल में, जो भूमि के ऊपर है, थोड़ा प्रकाश है। उसकी दूसरी मंजिल में, जो जमीन के नीचे दबी है और भी कम प्रकाश है। और उसकी तीसरी मंजिल में जो बिल्कुल भूगर्भ में छिपी है, पूर्ण अन्धकार है। वहां कोई प्रकाश नहीं है।

इस तीन मंजिल के मकान में—जो कि मनुष्य में है, अधिक लोग ऊपर की मंजिल में ही जीवन को व्यतीत कर देते हैं। उन्हें नीचे की दो मंजिलों का न तो कोई पता होता है, न ख्याल होता है। ऊपर की मंजिल बहुत छोटी है। नीचे की दो मंजिलें बहुत बड़ी हैं। और जो अन्तिम अंधेरा भवन है नीचे, वही सबसे बड़ा है—वही आधार है सारे जीवन का।

जिस व्यक्ति को सत्य की और स्वयं की यात्रा करनी हो, उसे नीचे की दो मजिलों में उतरना पड़ता है। सत्य की यात्रा आकाश की तरफ की यात्रा नहीं है, बल्कि पाताल के तरफ की यात्रा है। ऊपर की तरफ नहीं—नीचे और भीतर और गहरे उतरने का सवाल है।

जंगल में चारों तरफ हमारे वृक्ष खड़े हुए हैं। वृक्षों का एक हिस्सा तो वे पत्ते हैं, जो सूरज के बिल्कुल सामने हैं और सूरज की रोशनी से प्रकाशित हैं। वृक्ष का दूसरा हिस्सा वे शाखाएं और पीड़ें हैं, जो पत्तों के नीचे छिपी हैं, जिन पर कहीं-कहीं सूरज की रोशनी पड़ती भी है, कहीं-कहीं नहीं भी पड़ती है। वृक्ष का तीसरा हिस्सा, वे जड़ें हैं, जो जमीन के भीतर छिपी हैं, जिन पर सूरज की रोशनी कभी भी नहीं पड़ती है। लेकिन वृक्ष के प्राण वृक्ष की जड़ों में हैं। और जो वृक्ष को पूरा जानना चाहता हो, उसे जड़ों को जानना ही

पड़ेगा, जो कि दिखाई नहीं पड़ती हैं, अदृश्य हैं, छिपी हैं। जो वृक्ष के पत्तों पर ही रह जाएगा, वह वृक्ष को नहीं समझ पाएगा।

हमारे मन के भी ऐसे ही तीन हिस्से हैं। पहला हिस्सा—जिस पर थोड़ी रोशनी पड़ती है, वह कान्शस माइन्ड, चेतन मन। दूसरा हिस्सा—जो उसके नीचे दबा है, वह है सब कान्शस माइन्ड, अर्ध-चेतन मन। और तीसरा हिस्सा—जो सबसे नीचे छिपा है, वह है अनकान्शस माइन्ड, अचेतन मन। पहले हिस्से में थोड़ी चेतना है। दूसरे हिस्से में और भी कम, तीसरे हिस्से में बिल्कुल नहीं है। यह मनुष्य है।

मनुष्य का जो चेतन मन है, जो कान्शस माइन्ड है, उसमें ही हममें से अधिक लोग जीकर समाप्त हो जाते हैं, इसलिए जीवन को नहीं जान पाते हैं। जीवन की जड़ें अनकान्शस माइन्ड में अचेतन मन में छिपी हैं। वह अदृश्य है, वह भूमि के नीचे है। वहीं से हमारा सम्बन्ध परमात्मा से, सत्य से, जीवन से है। वहीं से जड़ें पृथ्वी से जुड़ी हैं। जड़ों का सम्बन्ध ही जीवन से है। हमारे अचेतन मन में हमारी जड़ें हैं।

सत्य की जो खोज है—या स्वयं की या प्रभु की, वह खोज खुद की जड़ों की खोज है। वह जो रूट्स हैं हमारे भीतर, उनकी खोज है। वे अंधेरे में छिपी हैं। और हम? हम वह जो छोटा सा कमरा है ऊपर जमीन के, वहां, जहां रोशनी पड़ती है, वहीं जी लेते हैं और वहीं समाप्त हो जाते हैं। यह, जिस कमरे में थोड़ी रोशनी पड़ती है—यह जो चेतन मन है, यह जो कान्शस माइन्ड है, यह समाज के द्वारा निर्मित होता है। शिक्षा के द्वारा, संस्कार के द्वारा। बचपन से हम इसे तैयार करते और बनाते हैं। और आज तक मनुष्य का यह जो कान्शस माइन्ड है, यह जो चेतन मन है यह बिना इस बात के ख्याल के निर्मित किया गया है कि इसके नीचे दो मन और हैं। इसलिए अक्सर इस मन को जो बातें सिखाई जाती हैं, वे नीचे के मन के विरोध में पड़ जाती हैं, भिन्न हो जाती हैं। और तब इस ऊपर

की मंजिल में और नीचे की मंजिलों में एक विरोध, एक खिंचाव, एक तनाव शुरू हो जाता है। आदमी खुद के भीतर डिवाइडेड हो जाता है, खुद के भीतर विभाजित हो जाता है।

चेतन मन में जो बातें सिखाई जाती हैं, वे अचेतन मन और अर्द्ध-चेतन मन के अगर समानांतर न हों, पैरेलल न हों, हारमनी में न हों, उनके साथ लयबद्ध न हों, तो व्यक्तित्व खंडित हो जाता है। हम सबका व्यक्तित्व खंडित व्यक्तित्व है, डिसइन्टीग्रेटेड है, और है इसलिए कि हमारे चेतन मन को जो बातें सिखाई गई हैं, सिखाई जाती रही हैं, उनमें हमारे पूरे व्यक्तित्व का कोई ध्यान नहीं रखा गया है।

चेतन मन को कहा जाता है, क्रोध मत करो। बच्चा पैदा हुआ—हम उसे सिखाना शुरू करते हैं, क्रोध मत करो! उसके अचेतन मन में क्रोध मौजूद है। हम उसे सिखाते हैं, क्रोध मत करो! उसका ऊपर का मन सीख लेता है, क्रोध नहीं करना है, लेकिन भीतर क्रोध मौजूद है। ऊपर का मन कहता है, क्रोध मत करो—भीतर का मन क्रोध के लिए धक्के देता है। हर क्षण जब भी मौका आता है, क्रोध प्रगट होना चाहता है। भीतर का मन क्रोध को प्रगट करना चाहता है। ऊपर का मन क्रोध को रोकना और दबाना चाहता है। एक सप्रेशन, एक दमन शुरू हो जाता है। और तब हम दो हिस्सों में टूट जाते हैं।

जिसे हम दबाते हैं, वह हिस्सा अलग हो जाता है। जो दबाता है, वह हिस्सा अलग हो जाता है। और इन दोनों में निरन्तर एक द्वन्द्व, एक कान्फ्लिक्ट, एक संघर्ष चलने लगता है। इसी संघर्ष में मनुष्य टूटता और नष्ट होता है।

मनुष्य के इन तीन मनों के बीच एकता के सध जाने का नाम ही योग है। मन के इन तीन हिस्सों के बीच हारमनी, संगीत का पैदा हो जाना ही साधना है।

लेकिन जैसी स्थिति है—वह यह है कि इन तीनों के बीच

कोई सम्बन्ध नहीं है। बल्कि ये एक दूसरे के विरोध में खड़े हैं।

जो हम दिन में सोचते हैं, विचार करते हैं, रात सपने में उससे बिल्कुल उल्टा देखते हैं। सपने में हमारे पीछे छिपा हुआ मन प्रगट होना शुरू होता है। दिन भर में चेतन मन थक जाता है, सो जाता है। फिर रात, वह जो सबकान्शस माइन्ड है, वह जो पीछे छिपा मन है, वह प्रगट होना शुरू होता है। तो हम दिन में कुछ और होते हैं, सपने में कुछ और होते हैं—बल्कि उल्टे होते हैं। दिन में हम चोरी नहीं करते, सपने में चोरी कर लेते हैं। दिन में हम हत्या नहीं करते किसी की, सपने में हत्या कर देते हैं ! फिर हमें हैरानी होती है सुबह जागकर—ये सपने मैंने कैसे देखे ! मैंने तो कभी हत्या के लिए सोचा भी नहीं। मैंने तो कभी चोरी की ही नहीं, फिर मैंने सपने में कैसे चोरी की, सपने में कैसे हत्या की !

चेतन जो मन है, उसने नहीं सोचा हत्या के लिए, लेकिन अचेतन मन ने सोचा है। और चेतन मन उसे दबाए हुए बैठा है। जब नींद में चेतन मन सो जाता है, तो अचेतन अपनी बातें प्रगट करना शुरू कर देता है।

हमारे भीतर इस भांति खाईयां पैदा हो गई हैं। और इन सारी खाईयों को पैदा करने का सूत्र है—सप्रेशन, दमन। आज तक यही समझाया गया है—मन का दमन करो। मन में जो भी बुरा है, उसे दबाओ। लेकिन दबाने से वह कहां जाएगा ? क्या दमन करने से कोई चीज नष्ट हो जाती है ? दमन करने से नष्ट नहीं होती और गहरे प्रविष्ट हो जाती है। और भीतर गहराई में जाकर मौजूद हो जाती है। हम उसे दबा लेते हैं, वह हमारे प्राणों का हिस्सा हो जाती है।

तो हम चेतन मन को तो पवित्र कर लेते हैं, साफ कर लेते हैं, वहां तो हम अच्छे-अच्छे सुभाषित वचन टांग देते हैं—सफाई कर लेते हैं पूरी, और सारी गन्दगी भीतर हटा देते हैं ! पर भीतर हमारे प्राण तो गन्दे होते चले जाते हैं। ऊपर सब सफाई हो जाती है, भीतर

सब गन्दगी इकट्ठी हो जाती है। भीतर, जहां कि हमारा असली होना हैं, जहां कि हमारा आथेन्टिक बीइंग है, वहां तो हम सब कचरा ढकेल देते हैं और ऊपर की मंजिल पर, बैठक-खाने में, वहां हम सब सफाई कर लेते हैं।

ऐसी हमारी स्थिति है। ऐसा मन न तो स्वस्थ हो सकता है, न शान्त हो सकता है। ऐसा मन निरन्तर अपने भीतर ही द्वन्द्व में, युद्ध में संलग्न रहता है। हम चौबीस घन्टे लड़ रहे हैं अपने से। और जो अपने से लड़ रहा है, उसका जीवन नष्ट हो जाएगा। क्योंकि अपने से लड़ने का एक ही अर्थ है। अगर मैं अपने दोनों हाथों को लड़ाऊं, तो क्या परिणाम होगा ? क्या कोई जीतेगा ? मेरे ही दोनों हाथ हैं, मैं ही दोनों के पीछे मौजूद हूं—मेरी ही ताकत दोनों हाथों से लड़ेगी। कोई हाथ जीत नहीं सकता। लेकिन एक बात तय है, हाथ तो कोई नहीं जीतेगा, लेकिन मैं हार जाऊंगा। आखीर में, मैं पाऊंगा एक गहरी पराजय हो गई, हार गया।

हर आदमी जीवन के अन्त में अपने को हारा हुआ, थका हुआ अनुभव करता है। जीवन के अन्त में विजय हाथ नहीं आती, हार हाथ आती है। और हार आनी सुनिश्चित है। क्योंकि अपने ही हाथ कोई लड़ाएगा, तो जीत कैसे हो सकती है ? किसकी हो सकती है ? हम अपने ही मन को दो हिस्सों में तोड़कर लड़ा रहे हैं। और जिनसे हम लड़ रहे हैं—मन के वे हमारे ही हिस्से हैं, हम ही हैं, इसका हमें बोध भी नहीं ! और दूसरी बात, जिस मन से हम लड़ रहे हैं, वे अंधेरे में बन्द हैं, उनसे हमारा कोई परिचय भी नहीं है, उनसे हमारी कोई पहचान भी नहीं है !

अब तक की सारी शिक्षा, सारी संस्कृति, सारा समाज मनुष्य की इस अन्तर्द्वन्द्व की व्यवस्था पर खड़ा हुआ है। फिर इस अन्तर्द्वन्द्व के कारण अनेक विस्फोट होते हैं। जैसे हम केतली में चाय गरम करते हों और केतली का मुंह बन्द कर दें, ढक्कन बन्द कर दें और गरम भी किए चले जाएं, तो क्या होगा ? एक्सप्लोजन होगा।

केतली की भाप नहीं निकल पाएगी, तो फोड़ देगी केतली के बर्तन को।

तो रोज-रोज आदमी में विस्फोट होता है। यह विस्फोट बहुत रूपों में होता है। एक आदमी पागल हो जाता है। यह भीतर दबाए गए विष का विस्फोट है। भीतर दबाई गई भाप है, जिसका विस्फोट होता है। विस्फोट होता है रोज-रोज। हमारे रोज-रोज की, दिन-दिन की कलह, संघर्ष—पति का पत्नी से, बच्चों का मां-बाप से, शिक्षक का विद्यार्थियों से, एक वर्ग का दूसरे वर्ग से, एक गांव का दूसरे गांव से, एक प्रान्त का दूसरे प्रान्त से, एक देश का दूसरे देश से, एक भाषा बोलने वालों का, दूसरी भाषा बोलने वालों से। रोज-रोज कलह ! उसमें हमारा भीतर दबा हुआ रोग रोज-रोज निकलता है। फिर और बड़े पैमाने पर युद्ध खड़े हो जाते हैं।

पांच हजार वर्षों में आदमी ने पन्द्रह हजार युद्ध लड़े हैं। पन्द्रह हजार युद्ध ! क्या हम युद्ध ही लड़ते रहे दुनिया में ? हमारी आज तक की पांच हजार वर्ष की सारी सभ्यता और संस्कृति युद्ध की सभ्यता और संस्कृति है। लड़ने में ही हमने जीवन व्यतीत किया है। कुछ बीच-बीच में जो कालखंड आते हैं, जब हम नहीं लड़ते, उस समय हम लड़ने की तैयारियां करते रहते हैं। जब हम नहीं लड़ते, तब लड़ने की तैयारियां करते हैं ! हम लड़ते हैं, या लड़ने की तैयारियां करते हैं ! बस दो ही काम मनुष्य जाति करती रही है।

यह क्या है ? ये इतने एक्सप्लोजन, इतने विस्फोट क्यों होते हैं ? छोटी सी चिन्गारी से आदमी एकदम विक्षिप्त क्यों हो जाता है ? हिन्दू—मुसलमान के नाम से, जैन—ईसाई के नाम से, सिक्ख—पारसी के नाम से—जरा सी बात और आग लग जाती है और आदमी पागल हो जाता है ! आदमी जैसे पागल होने को तैयार बैठा हुआ है। उसके भीतर इतना दबाव है कि जरा मौका मिल जाय कि वह निकल जाय। जरा सी गुन्जाइश खड़ी हो जाय और वह पागल हो जाय।

यह आकस्मिक नहीं है। ये इतने युद्ध, इतनी कलह, इतना

द्वन्द्व—यह जैसा मनुष्य है, उसके स्वाभाविक परिणाम हैं। तो चाहे राजनैतिक चिल्लाते रहें कि युद्ध नहीं होना चाहिए, चाहे साधु-संन्यासी समझाते रहें कि युद्ध बहुत बुरा है। लेकिन जब तक मनुष्य का मन सप्रेस्ड है, जब तक मनुष्य के मन में दमन है, तब तक युद्ध बन्द नहीं हो सकते हैं। तब तक कोई ताकत युद्ध बन्द नहीं कर सकेगी। तब तक कलह बन्द नहीं हो सकती है। जब तक जीवन का रोज-रोज का संघर्ष है, वह बन्द नहीं हो सकता है। एक तरफ से हम संघर्ष को बन्द करेंगे, दूसरी तरफ से वह निकलने का रास्ता खोज लेगा। क्योंकि भीतर हम उबलते हुए ज्वालामुखी पर बैठे हैं। और उस ज्वालामुखी से हमारा कोई परिचय नहीं है। हम ज्वालामुखी पर अच्छा बढ़िया सोफा लगाकर आराम से बैठे हुए हैं। और नीचे ज्वालामुखी धधक रहा है। और हम अपने सोफे को सजा रहे हैं। डेकोरेट कर रहे हैं अपने मकान को ! और नीचे ज्वालामुखी धधक रहा है। हम ऊपर से सजाते रहते हैं, भीतर आग भभक रही है।

इस स्थिति में, उस आग को हम दबाते चले जाएं, तो हम टूटेंगे और अपने को नष्ट करेंगे। आज तक मनुष्य ने यही किया है। क्या आगे भी मनुष्य को यही करना है ? या कि हम एक नए मनुष्य को जन्म दे सकते हैं, जिसका मन दमन पर आधारित न हो। लेकिन हम डर जाएंगे। हम कहेंगे अगर हम दमन न करें.. अपने मन का दमन करने में तो हम कभी पागल होंगे, ठीक है, लेकिन दमन न करें तो इसी वक्त, इसी वक्त विस्फोट हो जाएगा। अगर हम दबाएं न अपने को तो हमारे भीतर तो इतना जहर, इतने सांप-बिच्छू मालूम पड़ते हैं; इतना क्रोध, इतना सेक्स, इतनी वासना, इतना लोभ, इतनी ईर्ष्या मालूम पड़ती है—अगर न दबाएं तो अभी सब निकल पड़ेगा।

फिर क्या हो ?

दबाना नहीं है। लेकिन कुछ और करना है। करना यह है कि मन के ऊपर का जो हिस्सा चेतन है, जो कान्शस है, जहां प्रकाश है,

उस प्रकाश को मन के उन हिस्सों में ले जाना है, जहां अन्धकार है। पूरे मन को प्रकाशित कर देना है। पूरे मन में दीया जला देना है—होश का, ज्ञान का। अभी थोड़ी सी जगह में प्रकाश हो रहा है—दीये की ज्योति को और बड़ा करना है, ताकि पूरे मन की तीनों मंजिलों में, वह जो थ्री स्टोरीड आदमी है—उन तीनों मंजिलों में प्रकाश पहुंच जाय।

सबसे पहला काम प्रकाश पहुंचाना है। जैसे ही प्रकाश पहुंचना शुरू होता है, मन में एक ट्रान्सफर्मेशन शुरू हो जाता है। आपको शायद ख्याल भी न हो। सूरज निकलता है, सूरज के निकलते ही पृथ्वी पर एक परिवर्तन शुरू हो जाता है। जो कलियां बन्द थीं, वे खिलने लगती हैं। जो सुगन्ध छिपी थी, वह प्रगट होने लगती है। जैसे ही प्रकाश सूरज का पृथ्वी पर उतरता है, सारा प्राण, जो सोया हुआ था, वह जागने लगता है, वृक्ष, पौधे, पशु, पक्षी, जो सोये थे, वे उठ कर गीत गाने लगते हैं। वे जीवन्त हो उठते हैं। सूरज की रोशनी के आते ही पृथ्वी दूसरी हो जाती है। सूरज की रोशनी के हटते ही, अन्धकार छाते ही पृथ्वी मूर्च्छित हो जाती है। सब सो जाता है। पौधे, पशु-पक्षी, आदमी सब मूर्च्छित हो जाते हैं। सूरज के ऊगते ही मूर्च्छा टूटनी शुरू हो जाती है—जागरण आना शुरू हो जाता है, प्रभात हो जाती है।

मन की दो मंजिलों में कभी प्रकाश नहीं पहुंचा है। वहां एकदम गहरी मूर्च्छा है। वहां सब सोया हुआ है। वहां एकदम घना अन्धकार है। उस घने अन्धकार में सांप-बिच्छुओं ने डेरे डाल लिए हैं। पतंगों ने घर बना लिए हैं। मकड़ियों ने जाले बुन लिए हैं। वहां सब गन्दा हो गया है। वहां के द्वार कभी नहीं खुले, वहां बहुत दुर्गन्ध इकट्ठी हो गई है। और हम ऊपर से दमन करते चले जाते हैं सारे कचरे का वहां। वहां सारा कचरा इकट्ठा हो गया है। मनुष्य के प्राण इससे भारी, और बोझिल, और मूर्च्छित हैं। वहां रोशनी ले जानी है। वहां प्रकाश ले जाना है। प्रकाश ले जाया जा सकता है।

उस प्रकाश के ले जाने की विधि का नाम ही धर्म है।

कैसे हम चित्त की गहराइयों में रोशनी ले जा सकें? कैसे वहां प्रकाश पहुंचा सकें कि वहां अन्धकार का राज्य समाप्त हो जाय और हमारे सारे प्राण आलोकित हो उठें।

उस प्रकाश के पहुंचते ही चित्त में परिवर्तन होने शुरू हो जाते हैं। उस प्रकाश के पहुंचते ही जो कली थी, वह खिलकर फूल बन जाती है। उस प्रकाश के पहुंचते ही भीतर जो प्राण सोए थे, वे जाग उठते हैं। और जागरण के साथ अन्तर शुरू हो जाता है। जागरण ट्रान्सफार्मेशन है।

कैसे हम चित्त में ले जाएं जागरण को, होश को, अवेयरनेस को? कैसे हमारे पूरे प्राण जागे हुए हो जाएं?

और जिस दिन पूरे प्राण जाग जाते हैं, उस दिन प्राणों में एक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। फिर मनुष्य तीन हिस्सों में खंडित नहीं रह जाता। फिर वह एक भवन बन जाता है पूरा। और जो मनुष्य एक भवन बन जाता है, उसके भीतर फिर कोई द्वन्द्व नहीं, कोई कलह नहीं। उसके भीतर एक शान्ति स्थापित हो जाती है।

इसलिए सर्वाधिक मूल्यवान जीवन का सूत्र: चित्त के अंधेरे कक्षों में रोशनी के ले जाने का है। उस सम्बन्ध में ही आज की सुबह हमें बात करनी है कि कैसे हम चित्त में प्रकाश को ले जा सकते हैं।

थोड़ा सा प्रकाश मौजूद है। अगर उतना प्रकाश मौजूद न हो, तो फिर हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं। लेकिन थोड़ा प्रकाश मौजूद है। हमारे मन का एक कोना; थोड़ा सा दीया जला हुआ है, वहां रोशनी हो रही है। उसी रोशनी में आप मेरी बातें सुन रहे हैं। उसी रोशनी में आप चल रहे हैं। उसी रोशनी में आप उठ रहे हैं, विचार कर रहे हैं, जी रहे हैं। छोटी सी रोशनी में।

इस रोशनी को कैसे बड़ा करें? इस रोशनी को बड़ा करने के दो उपाय हैं। एक तो—इस

रोशनी का अभी हम एक ही प्रयोग कर रहे हैं बाहर के जगत को देखने में। घर के बाहर दीया लिए बाहर की दुनिया को देख रहे हैं। बाहर दुनिया को हमने खूब देखा। इस रोशनी के थोड़े से प्रयोग ने बाहर की दुनिया में बहुत कुछ स्पष्ट कर दिया। इस रोशनी के बाहर के प्रयोग ने साइन्स को जन्म दिया। हमने पदार्थ के नियम खोज लिए। हमने पदार्थ के भीतर छिपे हुए रहस्य खोज लिए। हमने जीवन के, बाहर के जीवन पर विजय पाने में बड़ी दूर तक सफलता पा ली।

विज्ञान की सारी कथा, इस छोटे से कान्शस माइन्ड का, बाहर के जगत में इम्प्लीमेन्टेशन है। बाहर के जगत में प्रयोग हैं। विज्ञान की सारी कथा इस छोटे से कान्शस माइन्ड की, जो छोटा सा चेतन मन है, इसी का हमने पदार्थ में प्रयोग किया है। इतनी बड़ी दुनिया खड़ी हो गई विज्ञान की। हम पदार्थ में प्रवेश करते गए—और हमने अणु को और अणु के भी गहरे न्यूट्रॉन, इलेक्ट्रॉन को जाकर खोज लिया, बड़ी शक्ति हाथ में आ गई। बड़ी शक्ति हाथ में आ गई।

इसी चेतना का प्रयोग बाहर न करके भीतर भी किया जा सकता है। जिन लोगों ने बाहर प्रयोग किया है, वे अणु तक पहुंच गए। जो आदमी भीतर प्रयोग करता है, वह आत्मा तक पहुंच जाता है। रोशनी यही है, दीया यही है। घर के बाहर रोशनी करते हैं तो रास्ता दिखाई पड़ता है। घर के भीतर करते हैं, तो घर के कष्ट दिखाई पड़ते हैं।

ध्यान इस रोशनी को भीतर ले चलने का ही प्रयोग है। आंख बन्द करके हम भीतर जागने की कोशिश करते हैं।

एक वैज्ञानिक क्या करता है?

वैज्ञानिक बाहर के फेनामिना को, बाहर की घटना को ऑब्जर्व करता है, निरीक्षण करता है। अपनी प्रयोगशाला में बैठकर, आंखें गड़ाकर, सब तरह से जागकर निरीक्षण करता है कि क्या हो रहा है। पानी को उबाल रहा है, गरम कर रहा है, तो देख रहा है, कितनी डिग्री पर जाकर पानी गरम होकर भाप बनता है। उसका निरीक्षण कर रहा है, आब्जर्वेशन कर रहा है। ठीक इसी भांति मन की प्रयोगशाला में द्वार बन्द करके, भीतर बैठकर निरीक्षण करना है कि वहां क्या हो रहा है? क्रोध कितनी डिग्री पर जाकर भाप बन जाता है? क्रोध की गति क्या है? विचार क्या है? विचार कैसे चलता है? कैसे उठता है, कैसे गिरता है? स्मृति क्या है, मेमोरी क्या है? कैसे स्मृति बनती है? प्रेम क्या है? कैसे जन्मता है? घृणा क्या है? कैसे भीतर उठती है, फैलती है? उसका विष कैसे पूरे प्राणों को भर लेता है? ये बहुत सी घटनाएं भीतर घट रही हैं। इनके प्रति ऑब्जर्वेशन, भीतर बैठकर—एक वैज्ञानिक जैसे प्रयोगशाला में जांच करता है, खोजता है, वैसे ही इनको भी देखना, जानना और खोजना है।

धर्म आत्मा का विज्ञान है।

मनुष्य को, जो साधक है, अपने मन को एक प्रयोगशाला बनानी है। और वहां निरीक्षण की सारी शक्ति को ले जाकर देखना है कि मन में क्या हो रहा है, मन क्या है? यह मन की प्रोसेस क्या है, यह मन की प्रक्रिया क्या है?

आपके मन में क्रोध उठता है। कभी आपने एकान्त कोने में बैठकर देखने की कोशिश की है कि क्या है यह क्रोध? नहीं। आपने दो काम किए होंगे। या तो क्रोध उठा, तो जिस पर उठा, उस पर आप टूट पड़े होंगे। और या अगर आप धार्मिक और अच्छे आदमी हैं, तो आप क्रोध को पी गए होंगे। बस ये दो काम किए गए हैं। दोनों ही काम फिजूल हैं। क्रोध में किसी के ऊपर टूट पड़ने से क्रोध नहीं जाना जा सकता। क्रोध को पी जाने से भी क्रोध नहीं जाना जा सकता। दोनों ही स्थितियों में निरीक्षण नहीं होता। निरीक्षण का तो अर्थ है...। क्रोध उठे, एक बड़ा अवसर आ गया बहुमूल्य, खुद की

शक्ति को जानने का एक कीमती क्षण आ गया। सामान्यतया क्रोध सोया रहता है, अब वह जाग गया। उससे पहचान हो सकती है इस समय। उस समय द्वार बन्द कर लें, किसी कोने में बैठ जाएं और आंख बन्द करके आब्जर्व करें, निरीक्षण करें, क्या है यह क्रोध? कहां से यह उठता है? क्यों यह उठता है? कैसे यह चित्त को पकड़ लेता, बांध लेता, पागल कर देता है? इस पूरी प्रक्रिया को, इस पूरी प्रोसेस को—क्रोध के जन्म से लेकर क्रोध के युवा होने तक देखें। सिर्फ देखें।

लेकिन देखनें में एक कठिनाई है। बचपन से हमें सिखा दिया गया है, क्रोध बुरा है। जिसको हम बुरा मान लेते हैं, उसे देखने को राजी नहीं होते। भूल हो गई है इस बात से। क्रोध बुरा है—इसलिए जो चीज बुरी है, उसको देखें कैसे? उसके प्रति हमारे मन में कन्डेमिनेशन है, निन्दा है। निन्दा की वजह से हम देखते नहीं। शत्रु को कोई देखता है ठीक से? शत्रु दिखाई पड़ता है, तो हमारी आंखें दूसरी तरफ फिर जाती हैं। शत्रु रास्ते पर मिल जाता है, तो हम आंख नीचे करके निकल जाते हैं, या दूसरी गली से निकल जाते हैं। शत्रु को कोई देखना नहीं चाहता। देखना तो केवल उसे है, जो मित्र है। देखना तो केवल उसे है, जिससे हमारा कोई विरोध नहीं है।

तो चित्त के दर्शन में, चित्त के आब्जर्वेशन में हमारी शिक्षाओं ने, हमारी तथाकथित नैतिक शिक्षाओं ने मॉरल इन्स्टीट्यूशनस् ने बड़ा उपद्रव खड़ा कर दिया है। क्रोध बुरा है, शत्रु है—फिर उसे देखेंगे कैसे?

मैं आपसे निवेदन करता हूं, आपके चित्त में कुछ भी आपका शत्रु नहीं है। सब आपका मित्र है। और अगर आप पाते हैं कि कोई शत्रु है, तो वह केवल इस बात का सबूत है कि आप उसका सम्यक उपयोग करने में असमर्थ रहे हैं। उसका ठीक-ठीक उपयोग आप नहीं कर सके, इसलिए वह शत्रु मालूम पड़ रहा है। जिस दिन आप उसे पूरा जानेंगे और पहचानेंगे, आप हैरान हो जाएंगे। आप पाएंगे, ये

तो मेरी शक्तियां हैं। शत्रु इनमें कोई भी नहीं है। लेकिन हम अपरिचित होते हैं मित्र से भी, तो वह शत्रु मालूम पड़ता है। परिचित होते हैं, तो वह मित्र मालूम पड़ता है। परिचित होना है, पूरी तरह से पहचान करनी है—भीतर क्या है?

तो, एक तो निरीक्षण के लिए यह भावना छोड़ देनी एकदम आवश्यक है कि कोई चीज बुरी है, कोई चीज अच्छी है। अभी तो हम अपने चित्त से परिचित नहीं। हमें पूरे चित्त से ही परिचित होना है--चाहे जो भी हो। अच्छा हो या बुरा, हमें पूरे, टोटल माइन्ड से एक दफे परिचित हो जाना जरूरी है।

तो क्रोध जब उठे, तो निरीक्षण करें। और निरीक्षण करेंगे तो हैरान हो जाएंगे। निरीक्षण करते ही बहुत अद्भुत तथ्य दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे। लेकिन हमने कभी निरीक्षण किया नहीं है। या तो हम क्रोध से लड़े हैं और या क्रोध से हार गए और क्रोध के वश हो गए हैं। ये दोनों स्थितियां शुभ नहीं हैं। ये दोनों स्थितियां साधना में ले जाने वाली नहीं हैं।

तीसरी एक स्थिति है निरीक्षण की। न तो क्रोध का भोग, न दमन, बल्कि एक तीसरा मार्ग, निरीक्षण। जो भी चित्त में उठे, उसका निरीक्षण। उसके प्रति जागना, उसके प्रति पूरी तरह अवेअर होना। क्या होगा इस तरह जागने से? इस तरह जागने से दो बातें होंगी। एक तो क्रोध के प्रति जैसे ही जागेंगे, वैसे ही आप पाएंगे, क्रोध चेतन मन में पैदा नहीं होता। क्रोध चेतन मन के नीचे की मंजिल से आता है। चेतन मन ने तो बहुत बार निर्णय किए हैं कि मैं क्रोध नहीं करूंगा, लेकिन सब निर्णय रखे रह जाते हैं। जब कोई एक धक्का देता है, क्रोध खड़ा हो जाता है। पता नहीं चलता कि मैंने निर्णय किया था, कसम खाई थी, व्रत लिया था—क्रोध नहीं करना है। मेरे निर्णय, मेरी कसमें, कहां गईं? वे जिस मन ने ली थीं—क्रोध वहां से नहीं आ रहा, क्रोध बहुत नीचे से आ रहा है।

उस मन को आपके व्रत का कोई भी पता नहीं है। उस मन को कोई पता ही नहीं है आपके व्रत का। क्या आप मंदिर में जाकर और व्रत ले लिए हैं कि अब मैं क्रोध नहीं करूंगा?

जिसने वह कसम खायी है, वह मन दूसरा है। और जिस मन में क्रोध पैदा होता है, वह मन का बिल्कुल दूसरा हिस्सा है। उस हिस्से को कोई खबर नहीं है। सांझ आप तय करके सोते हैं, कल सुबह चार बजे उठूंगा। सुबह चार बजे कोई आपके भीतर कहता है, सोए रहो, कोई उठने की जल्दी नहीं है। आज बहुत सर्दी है, फिर कल देखना। आप सो जाते हैं। सुबह उठकर आप पछताते हैं कि मैं उठा क्यों नहीं! मैंने तो तय किया था कि चार बजे उठना है। मैं उठा क्यों नहीं?

आप निरीक्षण करेंगे तो पता चलेगा, जिस मन ने यह तय किया था, वह सोया हुआ था चार बजे और जिस मन ने यह खबर दी कि सोए रहो, वह दूसरा मन था। उसको आपके निर्णय का कोई भी पता नहीं था। अन्यथा यह कैसे हो सकता था। जिस मन ने निर्णय किया था, वही मन कैसे निर्णय तोड़ सकता था? और फिर सुबह वही मन कैसे पछता सकता था?

आदमी उलझ जाता है, क्योंकि उसे इसका कोई पता नहीं कि मन के अलग-अलग हिस्से निर्णय ले रहे हैं। जब आप निरीक्षण करेंगे क्रोध का, प्रेम का, घृणा का, तो आप पाएंगे कि चेतन मन, कान्शस माइंड से वे आते ही नहीं। वे तो बहुत नीचे गहरे अन-कान्शस से आते हैं। तो उनके सूत्र को पकड़कर अगर आप खोज करेंगे कि ये कहां से पैदा होते हैं...।

अगर हम एक वृक्ष की शाखाओं को पकड़कर खोज करते निकलेंगे कि यह वृक्ष कहां से पैदा होता है, तो आज नहीं कल, आपको जमीन खोदनी पड़ेगी और जड़ों तक पहुंचना पड़ेगा। आपकी खोज जारी रहेगी तो आपको अन-अर्थ करना पड़ेगा, भूमि अलग हटानी पड़ेगी और तब आप पाएंगे कि दिखाई नहीं पड़ती थीं जड़ें—वृक्ष

वहां से आते हैं।

तो जब आप क्रोध की, प्रेम की, ईर्ष्या की खोज में निकलेंगे, अनुशरण करेंगे, तो आप धीरे, धीरे, धीरे पाएंगे कि आप कान्शस माइन्ड से हटकर अन-कान्शस में पहुंचने शुरू हो गए। और इसी पहुंचने में रोशनी पहुंचनी शुरू हो जाएगी, क्योंकि आपका जो मन निरीक्षण करता है, वही रोशनी है। तो जब आप पीछा करेंगे—एक आदमी अगर अपने घर में एक चोर का पीछा करे दीया लेकर, तो चोर जहां छिपा होगा अंधेरे कोने में, वह खुद भी पहुंच जाएगा और साथ में दीया भी पहुंच जाएगा।

हमारे चेतन मन में जो-जो वृत्तियां उठती हैं, अगर हम एक-एक वृत्ति को पकड़कर उसका पीछा करें, तो वह वृत्ति कहां से जन्मती है, उस अंधेरे कमरे में हमको पहुंच जाना पड़ेगा। अन-कान्शस माइन्ड में पहुंचने का और कोई न रास्ता रहा है, न हो सकता है। एक-एक वृत्ति को हमें पकड़ लेना है।

एक कमल का फूल एक तालाब पर खिला है। फूल ऊपर दिखाई पड़ता है। उस फूल के नीचे—कहां से वह फूल आया है, कहां उसकी जड़ें हैं, वह कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। सिर्फ फूल दिखाई पड़ता है। अगर इस फूल का हम अनुशरण करें, खोज करें, कहां से यह निकला है, तो हम धीरे-धीरे उस फूल की डंडी पकड़कर, वहां पहुंच जाएंगे, नीचे कीचड़ में, जहां उसकी जड़ें छिपी हैं।

क्रोध तो ऊपर आया हुआ फूल है। प्रेम भी ऊपर आया हुआ फूल है। ईर्ष्या भी ऊपर आया हुआ फूल है। इसको हम पकड़ लें और इसके पीछे चलना शुरू करें। इसके पीछे उतरते चलें, उतरते चलें, तो धीरे, धीरे, धीरे, धीरे हम वहां पहुंच जाएंगे, जहां इसकी जड़ें हैं। जहां से यह पैदा हुआ है।

तो मनुष्य अगर अपनी वृत्तियों का अनुशरण करे, दमन नहीं। चित्तवृत्ति का दमन नहीं—चित्त वृत्ति का अनुशरण, चित्त वृत्ति का पीछा, चित्त वृत्ति के पीछे-पीछे जाए, तो धीरे, धीरे, धीरे वह

अपने गहरे अचेतन मन के तलों तक पहुंच जाएगा। और उसके साथ ही, निरीक्षण के साथ ही वह रोशनी पहुंच जाएगी, जो देखती है।

और आपको पता है कि आप जड़ तक पहुंच जाएं किसी चीज के तो कितनी आसान बात है। अगर आपको लगता हो यह फूल अवांछनीय है—यह नहीं चाहिए, यह दुर्गन्ध फैलाता है, कांटेवाला है, तो एक झटका और फूल खतम हो गया हमेशा के लिए। लेकिन ऊपर से आप फूल को काटते रहें रोज, हजार बार काटें, आप जितनी बार काटेंगे उतनी बार एक डंडी की जगह दो डंडियां निकल आएंगी। अब दो फूल खिलेंगे, पहले एक ही फूल खिला था। अब इन दो को काटेंगे और चार डंडियां निकल आएंगी। और हम यही कर रहे हैं। ऊपर से फूलों को काट रहे हैं. फूल बढ़ते चले जाते हैं। जितने फूल बढ़ते हैं, हमारी काटने की बेचैनी बढ़ती चली जाती है। कल एक बार क्रोध किया था, उसको काट दिया ऊपर से। आज दो बार हो गया है, उसको काट दिया। परसों चार बार हो गया। रोज बढ़ता जाता है रोग! क्योंकि जिसको हम काटना समझते हैं, वह कलम करना है। वह सहायता पहुंचानी है वृक्ष को। जो माली है, वह जानता है, वह जानता है कि वृक्ष को सहायता पहुंचानी हो तो एक डंडी काट दो। जहां से डंडी काटी गई, वहां से दो डंडियां पैदा हो जाती हैं। हम कलम कर रहे हैं अपने मन की।

लेकिन जो आदमी पीछे जाएगा और जड़ों तक पहुंच जाएगा—अगर उसे लगता है कि जो फूल आया है ऊपर, वह वांछनीय नहीं है। तो एक छोटा सा हल्का धक्का और जड़ें खतम हो जाती हैं और फिर फूल कभी भी नहीं आते।

चित्त को बदलना हो—ऊपर से जो कलम चलती रहती है नैतिक आदमी की, उससे कभी कोई आदमी नहीं बदलता। नैतिक आदमी ऊपर से कलम करता रहता है। और इसलिए मुसीबत में पड़ता चला जाता है। धार्मिक आदमी ऊपर से कलम नहीं करता—अपरुट करता है, जड़ों को उखाड़कर फेंक देता है। यह काम एक ही

बार में हो जाता है। और कलम करने का काम जिन्दगी भर चलता है। यह काम एक ही बार में हो जाता है—जड़ उखड़ जाती है, बात खतम हो जाती है।

लेकिन, अगर हम ऊपर ही ऊपर सारा उपद्रव करते रहें तो हम परेशान भी बहुत हो जाते हैं—मामले बदलते भी नहीं, आदमी वही का वही बना रहता है। आप खोजें अपने भीतर? आप साल भर पहले जो आदमी थे, वही आदमी आप आज भी हैं? साल भर में आपने कितनी कलम नहीं की होगी? न मालूम क्या-क्या छोड़ा होगा—यह किया होगा, वह किया होगा। आप अपने तीस साल लौटकर देखें, आप भीतर पाएंगे, आप वही के वही आदमी हैं। पूरी जिन्दगी आदमी करीब-करीब वही का वही बना रहता है! ऊपर थोड़े बहुत फर्क हो जाते हैं, लेकिन भीतर कोई फर्क नहीं होता है। क्योंकि भीतर हम कभी पहुंचते नहीं, फर्क होगा कैसे? जड़ों तक हम कभी जाते नहीं, तो फर्क होगा कैसे?

यह जो जड़ तक पहुंचने का सूत्र है, वह है वृत्तियों का निरीक्षण, उनका पीछा, उनका अनुगमन। चाहे तो इसे ही मेडीटेशन कहें, चाहें तो इसे ही ध्यान कहें। चाहें इसे ही कुछ और नाम दें। लेकिन एक चीज को पकड़कर भीतर प्रवेश करना है। किसी चीज के सहारे ही यह प्रवेश हो सकेगा।

तो हर आदमी का अपना कोई चीफ कैरेक्टर होता है। हर आदमी की कोई खास बात होती है। क्रोध है, घृणा है, द्वेष है, ईर्ष्या है, अहंकार है—कोई भी एक। हर आदमी की एक केन्द्रीय वृत्ति होती है, जिसके इर्द-गिर्द सारी वृत्तियां घूमती रहती हैं। तो अपने चीफ कैरेक्टर को, अपनी प्रधान वृत्ति को खोज लें और फिर उसका अनुशरण करें, फिर उसके पीछे उतरना शुरू करें। फिर उसके जितने गहराई तक जा सकें, उसके साथ जाने की कोशिश करें। चलने दें यह कोशिश उस दिन तक, जिस दिन तक आप वहां न पहुंच जाएं, जिसके आगे फिर कोई और गति नहीं है। जहां पहुंचकर अन्तिम बिन्दु आ

गया विराम का, जड़ें आ गईं। फिर किसी से आपको पूछना नहीं पड़ेगा कि मैं क्या करूं इस फूल को अलग करने के लिए। इस ईर्ष्या को अलग करने के लिए मैं क्या करूं। इस क्रोध को अलग करने के लिए मैं क्या करूं। यह पूछना नहीं पड़ेगा। आप हंसेंगे और बात खतम हो जाएगी। वह एक हल्का सा धक्का, सारी बात बदल जाती है।

लेकिन उस हल्के से धक्के पर पहुंचने के पहले चित्त का पीछा करना पड़ता है। और यह पीछा एक अर्थ में बहुत आरडुअस, बहुत कठिन भी है। क्योंकि बहुत डर लगता है इस पीछा करने में। क्योंकि हमने अपनी अपनी एक शक्ल बना रखी है। इस पीछा करने में वह शक्ल टूटती है। जितना हम पीछा करते हैं, उतनी ही शक्ल टूटती है।

एक आदमी कहता है कि मैं ब्रह्मचारी हूं। अब अगर वह अपने सेक्स का पीछा करेगा, तो यह कल्पना उसको छोड़ देनी पड़ेगी कि मैं ब्रह्मचारी हूं। जैसे ही वह अपनी वासना के पीछे, काम के पीछे, सेक्स के पीछे यात्रा करेगा, वैसे-वैसे उसे पता चलेगा कि मैं कितना सेक्सुअल हूं, मैं कितना काम-वासना से भरा हुआ हूं। कहां है ब्रह्मचर्य! बल्कि जैसे-जैसे भीतर उतरेगा, उसको पता चलेगा, जिसको मैं ब्रह्मचर्य कहता था, वह सब सेक्सुअलिटि थी। एक स्त्री को देखकर मेरा आंख बन्द करना सेक्स था। नहीं तो आंख बन्द करने की कोई जरूरत न थी।

एक साध्वी से मैं मिलता था। समुद्र की हवाएं चलती थीं। अब समुद्र की हवाओं को कुछ भी पता नहीं कि एक स्त्री बैठी है, एक पुरुष बैठा है। समुद्र की हवाओं ने मेरे चादर को उड़ाकर उन साध्वी को स्पर्श करा दिया। वे एकदम बेचैन होकर घबड़ाईं। पुरुष का वस्त्र नहीं छूना चाहिए! वह ब्रह्मचारिणी थी। अब समुद्र की निर्दोष हवाएं, उन्हें कोई पता नहीं कि कोई साध्वी बैठी है, चादर उड़ाकर इसको स्पर्श नहीं कराना चाहिए। वे बहुत घबड़ाईं। मैंने उनसे पूछा, आप घबड़ा गई हैं? उन्होंने कहा, हां, पुरुष वस्त्र हमें नहीं छूना

चाहिए। मैंने उनसे कहा, वस्त्र भी पुरुष और स्त्री हो सकते हैं? वस्त्र भी! क्या वस्त्र से सेक्स का कोई सम्बन्ध है?

मैंने उनसे निवेदन किया—बुरा लगेगा, उनसे मैंने कहा, लेकिन आपको पता नहीं ब्रह्मचर्य के नाम पर आप और भी कामुक हो गई हैं। यह तो कामोत्तेजना की हद हो गई कि वस्त्र के स्पर्श से—और भय हो! यह भय इस बात की सूचना है कि भीतर पुरुष के स्पर्श को नहीं करना है, इस बात को दबाया है। पुरुष के स्पर्श का स्वाभाविक भाव हो सकता है। उसे इतना दबाया है, इतना दबाया है कि आज पुरुष का वस्त्र भी छू जाए, तो वह टेम्पटेशन बन गया, वह प्रेरणा बन गई, वह घबड़ाहट बन गई।

तो अगर अब ऐसा ब्रह्मचर्य का व्रत लिया हुआ आदमी सोचता है कि मैं ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हुआ हूं—अगर अपने ब्रह्मचर्य के थोड़े पीछे उतरेगा, तो ठीक ब्रह्मचर्य के पीछे पाएगा कि सेक्स खड़ा हुआ है। तो बड़ी घबड़ाहट होगी, वह वापस लौट आएगा कि ऐसा पीछे जाने में कोई फायदा नहीं। यहां पीछे जाने से तो उल्टी बातें पैदा होती हैं।

एक बहुत बड़े साधु हैं, बड़े ख्यातिनाम। किसी ने मुझे आकर कहा कि कोई पैसा-रुपया उनके सामने ले जाय, तो वे सिर फेर लेते हैं, आंख बन्द कर लेते हैं। उन्होंने बड़ी तारीफ के लिए मुझसे कहा था कि वे बड़े परम-त्यागी हैं, रुपये को देखकर एकदम आंख फेर लेते हैं। मैंने उनसे कहा, रुपया इतना निर्दोष है, उसे देखकर आंख फेरना, बड़ी बीमारी का लक्षण है। रुपये में ऐसा क्या है, कि आंख फेरी जाय? रुपया, रुपये की जगह है, आंख फेरने की जरूरत? और आंख फेरनी पड़ती है, तो रुपये में रस है। नहीं तो आंख फेरने की जरूरत नहीं पड़ेगी। और रुपये में बहुत रस है।

एक आदमी को रुपया देखकर लार टपक जाती है। उसको हम कहते हैं, इसको रस है। और एक आदमी आंख फेर लेता है, तो इसको भी लार टपक जाने का भय है, इसलिए आंख फेरता है।

२४

ग्रांख फेरने की क्या जरूरत थी ? रुपये की ताकत कहां कि तुम्हारी ग्रांख को फेरनें के लिए मजबूर करे ? बड़े कमजोर हैं कि रुपया देखते हैं, तो ग्रांख फेरनी पड़ती है।

ग्रब यह जो त्याग है रुपये का, ग्रपरिग्रह है, ग्रगर इसका यह ग्रादमी पीछा करेगा, तो इसे पता चलेगा, इसमें रुपये की ग्रासक्ति छिपी हुई है, रुपये के प्रति ग्रटेचमेंट है। यह डिटेचमेंट, यह ग्रनासक्ति, उसी ग्रासक्ति का छिपावा हैं, भुलावा है ग्रौर कुछ भी नहीं। यह सेल्फ-डिसेप्शन है ग्रौर कुछ भी नहीं। ग्रगर हम ग्रपनी वृत्तियों का पीछा करेंगे, तो वह जो सेल्फ-इमेज हमने खड़ी कर रखी है कि मैं यह हूं—त्यागी हूं—यह हूं, वह हूं, हमको पता चलेगा, झूठी हैं वह बात। इस झूठ को देखने की हिम्मत होनी चाहिए। तो कोई ग्रादमी वृत्तियों का ग्रनुशरण कर सकता है। ग्रौर ग्रगर इस झूठ को देखने का साहस ग्रौर करेज नहीं है तो फिर ग्राप ग्रपने ऊपर के भवन में ही टहलते रहिए—नीचे ग्राप नहीं जा सकते हैं। ग्रौर नीचे बिना जाय, ग्रापकी जिन्दगी में कोई परिवर्तन सम्भव नहीं है। रत्ती भर परिवर्तन सम्भव नहीं है।

फिर ग्राप ऊपर ही डेकोरेट करते रहें, सजावट करते रहें—नीचे का ज्वालामुखी जलता रहेगा। ग्रौर रोज, वक्त-बेवक्त खबर देता रहेगा ग्रपनी कि ग्रब मैं ग्राता हूं, ग्रब मैं ग्राता हूं। ग्रौर ग्रापके प्राण कंपते रहेंगे कि वह कहीं ग्रा न जाय, कहीं ग्रा न जाय। इसी कम्पन में, इसी ट्रेम्बलिंग में पूरी जिन्दगी बीत जाती है कि कहीं भीतर से वह ग्रा न जाय। ग्रौर हमें सब पता है कि भीतर मौजूद है, ग्रौर प्राण कंप रहे हैं। पूरे वक्त प्राण कंप रहे हैं, पूरे वक्त हम डरे हुए हैं, पूरे वक्त हम घबड़ाए हुए हैं।

यह जो सारी स्थिति है, यह बाधा बनती है। इसलिए ग्रारडुग्रस तो है। तो मैं तो वृत्तियों के ग्रनुशरण को ही तप कहता हूं, तपश्चर्या कहता हूं। धूप में खड़े होने को नहीं, उपवास करने को नहीं, बच्चों जैसी बातें हैं, कोई भी कर सकता है। थोड़े ग्रभ्यास की

भर जरूरत है। ग्रौर रोज-रोज करता रहे, तो ग्रभ्यास धीरे-धीरे पूरा हो ही जाता है।

एक ग्रदालत में एक मुकदमा चला। एक ग्रादमी ने ग्रपनी पत्नी को तलाक देने की दरख्वास्त की थी। मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा, क्या कारण ग्रा गया है पत्नी को छोड़ देने का ? उसने कहा, पत्नी में एक खराब ग्रादत हमेशा से रही है। यह मेरे ऊपर चीजें फेंक-फेंक कर निशाना लगाती है। उस मजिस्ट्रेट ने पूछा, कितने दिन हुए शादी हुए ? उसने कहा, बीस वर्ष। उसने कहा, पागल ! लेकिन बीस वर्ष तुम कहां रहे ? उस ग्रादमी ने कहा, पहले इसका निशाना ठीक नहीं लगता था, ग्रब ग्रभ्यास से ठीक लगने लगा। बीस साल के ग्रभ्यास से ग्रब इसका निशाना चूकता ही नहीं। ग्रब मैं घबड़ा गया हूं। पहले निशाना ग्रक्सर चूकता था, बात चलती थी। ग्रभ्यास से निशाना ग्रब बिल्कुल ठीक लगने लगा है।

तो निरन्तर हम एक झूठ का ग्रभ्यास करते रहें—मैं यह हूं, मैं वह हूं—मैं यह हूं, मैं वह हूं—ग्रौर भीतर, भीतर धक्के मारती रहे कोई चीज, तो ग्रभ्यास से हम इस थोथे पाखंड को थोड़ा बहुत सम्हाल भी ले सकते हैं। एक ग्रादमी जिसके भीतर ग्रांसू फूट पड़ने को हों, वह भी ग्रभ्यास से मुस्कुराता हुग्रा बैठा रह सकता है।

ग्रक्सर हम ऐसा करते हैं। ग्रांसू होते हैं भीतर ऊपर हम मुस्कुराते हैं। सिर्फ इसलिए कि भीतर के ग्रांसू किसी को दिखाई न पड़ें—मुस्कुराते रहते हैं। भीतर होता है दुख, ऊपर बड़े प्रसन्न मालूम पड़ते हैं। भीतर होती है पीड़ा, ऊपर ऐसे मालूम पड़ते हैं कि बड़े खुश हैं, बड़े सुखी हैं। तो हम भीतर के विरोध में ऊपर कुछ क्वालिटीज चिपका लेते हैं, कुछ गुण चिपका लेते हैं।

लेकिन ध्यान रहे कि ग्रक्सर जो गुण हम ऊपर से चिपकाते हैं, ठीक विरोधी गुण के सूचक होते हैं वे। भीतर कोई विरोधी चीज मौजूद होती है, ग्रन्यथा इसको चिपकाने की कोई जरूरत नहीं थी।

जो ग्रादमी ब्रम्हचर्य चिपका लेता है ऊपर, इसके भीतर गहरी

सेक्सुअलिटि होती है। नहीं तो इसे ब्रम्हचर्य चिपकाने की कोई जरूरत न थी। जो आदमी अपरिग्रह, नान-अटेचमेन्ट चिपका लेता है अपने ऊपर, इसके भीतर बहुत गहरा परिग्रह, बहुत गहरा अटेचमेंट है। ऐसे हमारे भीतर जो नहीं है, उसको ही हम ऊपर चिपका लेते हैं। और इस ऊपर चिपकाए हुए झूठे कागजी फूलों से हमारा व्यक्तित्व बनता है। इस व्यक्तित्व के टूटने का डर है। जैसे ही आप भीतर प्रवेश करेंगे, यह इमेज, यह प्रतिमा तोड़नी पड़ेगी।

खुद की प्रतिमा तोड़ने के लिए जो तैयार है, वही साधक है, और कोई साधक नहीं है।

वही यात्रा कर सकता है सत्य की, जो इस बात को, हिम्मत से जानने को तैयार है कि कुछ भी हो, जो सच्चाई है, उसे मैं जानना चाहता हूं। चाहे मेरे सारे फूल गिर जाएं, मेरी सारी सजावट गिर जाय, मेरा सारा सौन्दर्य उखड़ जाय; लेकिन जो मन है, चाहे वह कितना ही अग्ली हो मैं उसको देखने के लिए तैयार हूं।

एक बार एक बहुत अद्भुत घटना घटी थी। इन्द्र ने तीन ऋषियों को स्वर्ग में आमन्त्रित किया था। उन तीन ऋषियों की तपश्चर्या की खबर सारी पृथ्वी पर फैल गई थी। इन्द्र ने स्वर्ग की सबसे सुन्दरी अप्सरा उर्वशी को कहा, इन तीन ऋषियों के मन को किसी भी भांति विचलित करना है। उर्वशी ने कहा, कठिन नहीं है यह काम। ऋषि-मुनि बहुत जल्दी विचलित हो जाते हैं। यह हो सकेगा। क्योंकि जो जोग स्त्रियों से दूर-दूर भागते हैं, उनके मन में स्त्रियों का गहरा आकर्षण है। जल्दी हो सकेगी यह बात। अगर वेश्यालय में पड़े किसी आदमी को विचलित करना होता, तो बहुत कठिन था। क्योंकि वह स्त्रियों से इतना परिचित है कि उसे विचलित करना थोड़ा मुश्किल है। लेकिन ऋषि-मुनि हैं, ये तो बेचारे जल्दी ही मुश्किल में पड़ सकते हैं।

निमन्त्रण दे दिया गया। स्वर्ग का निमन्त्रण था। ऋषि-मुनि भी इन्कार न कर सके। क्योंकि ऋषि-मुनि सारी कोशिश ही स्वर्ग

पहुंचने की करते हैं। और कोशिश ही क्या है? निमन्त्रण पाकर बहुत प्रसन्न हुए। बड़ा सम्मान था यह। इन्द्र का जन्म दिन था और उन तीन को ही बुलाया गया था। और उनके जितने काम्पटीटर ऋषि-मुनि थे, वे नहीं बुलाये गए थे, इससे बड़ी प्रसन्नता थी। वे काफी खुश हुए।

वे गए। सब तरह से सजधज कर गए। ऋषि-मुनियों की भी अपनी सजधज होती है। आप पहचान नहीं पाते, यह दूसरी बात है, क्योंकि आपकी सजधज दूसरे तरह की होती है। तरह का फर्क होता है, सजधज में कोई भेद नहीं होता। वे परिपूर्ण तैयारी से, पूरे ऋषि-मुनि बनकर वहां उपस्थित हो गए। उर्वशी भी उस दिन तैयार हुई थी। और जितनी उन दिनों प्रसाधन सामग्री थी, सुन्दर होने की— जितने भी एक्सपर्ट थे स्वर्ग में, जितने विशेषज्ञ थे, सबने मेहनत की थी। उर्वशी इतनी सुन्दर दिखाई पड़ी कि खुद इन्द्र मुश्किल में पड़ गया। उसे कल्पना न थी कि उर्वशी इतनी सुन्दर हो सकती है।

उर्वशी का नृत्य शुरू हुआ। घंटे भर में ही, मन्त्रमुग्ध वे सारे लोग देखते रह गए। कभी परिचित न थे इतने सुन्दर नृत्य से— इतने मनो-मुग्धकारी। फिर उर्वशी ने, जब रात गहरी हो गई, तो अपने आभूषण निकालकर फेंक दिए। आभूषण शरीर को सुन्दर करते हैं। लेकिन आभूषण-रहित शरीर का भी अपना एक और ही सौन्दर्य है। आभूषण सुन्दर भी करते हैं, लेकिन शरीर को बहुत जगह छिपा भी लेते हैं। आभूषण फेंककर उसने वस्त्र भी फेंकने शुरू कर दिए। एक ऋषि घबड़ाया और जोर से चिल्लाया रुको, ठहरो, उर्वशी यह मर्यादा का उल्लंघन है। वस्त्र नहीं निकाल सकती हो। लेकिन दूसरे दो ऋषियों ने कहा, मित्र, अगर आप घबड़ा गए हों तो आंखें बन्द कर लें, नृत्य बंद नहीं होगा। नृत्य को आप कैसे रोक सकते हैं? और किसी को वस्त्र निकालना हो तो भी आप कैसे रोक सकते हैं? आपका हक और अधिकार क्या है? एक हक आपका जरूर है कि आप आंख बन्द कर लें। नृत्य चलेगा। और उन्होंने कहा, उर्वशी

नृत्य चलने दो।

नृत्य चला। पहले ऋषि ने आंखें बन्द कर लीं। लेकिन उस बेचारे को पता नहीं था कि खुली आंख—फिर भी गनीमत थी, बन्द आंख—और भी मुश्किल में डाल दी। आंख बंद करने से कहीं उर्वशियां दिखना बंद होती हैं? आंख बंद करने से कुछ भी चीज दिखनी बन्द होती है क्या?

आंख बंद होने से उर्वशी और सुन्दर दिखाई पड़ने लगी। सपने सुन्दर होते हैं जागरण से ज्यादा। और सुन्दर होकर उर्वशी मन को दिखाई पड़ने लगी। और मन भीतर से धक्के देने लगा ऋषि को कि आंख खोलो। आंख खुली थी तो कम से कम यह उपद्रव नहीं था। मन कहने लगा, आंख खोलो। वह पीछे के अन-कान्शस हिस्से कहने लगे, आंख खोलो। पता नहीं उर्वशी ने और भी वस्त्र फेंक दिए हों। आंख खोलो। और यह चेतन मन कहने लगा, आंख कैसे खोली जा सकती है? हाथ-पैर कंपने लगे! आंख को और जोर से बंद करना जरूरी हो गया। बड़ी ताकत, बड़ी मेहनत उस ऋषि पर पड़ने लगी। वह बड़ी बेचैनी में पड़ गया। बड़ी मुश्किल में पड़ गया।

नृत्य थोड़ा आगे गया। उर्वशी ने और भी वस्त्र फेंक दिए, वह करीब-करीब नग्न हो गई। एक ही वस्त्र उसके शरीर पर रह गया। दूसरा ऋषि चिल्लाया, अब हद हो गई, यह तो अश्लीलता है। बंद करो यह नृत्य, अब नहीं देखा जा सकता।

पहले ऋषि ने कहा, मित्र। भूल गए, हमने पहले ऋषि से क्या कहा था? तीसरे ऋषि ने कहा, अब अपनी आंख आप भी बन्द कर लो। नृत्य तो चलेगा। नृत्य को रोकने का हक किसे है? आप अपनी आंख बन्द कर ले सकते हैं।

दूसरे ऋषि को भी आंख बंद कर लेनी पड़ी। नृत्य आगे चलता रहा। आंख बंद करते ही दूसरे ऋषि को पता चला कि कम से कम आंख खुली थी, तो उर्वशी एक वस्त्र पहने थी। आंख बंद करते ही

ऋषि के मन ने उस वस्त्र को भी निकालकर अलग कर दिया। बहुत घबड़ाया। उर्वशी—आंख बंद थी, लेकिन नग्न खड़ी थी।

जिससे बचने को आंख बंद की थी, वही सामने आ गया था! हमेशा यही होता है। जिससे बचने को हम आंख बन्द करते हैं, वही सामने आ जाता है। आएगा ही। क्योंकि आंख बन्द करने में हमने इतना रस जाहिर किया है, कि रस निमन्त्रण हो गया। आना जरूरी है उसका। दूसरा ऋषि भी कंप रहा है, घबड़ा रहा है!

उर्वशी ने अन्तिम वस्त्र भी फेंक दिया। सोचा था अन्तिम वस्त्र फेंकते ही तीसरा ऋषि भी घबड़ा जाएगा। लेकिन उर्वशी भूल में थी। वस्त्र फेंक दिया गया। तीसरा ऋषि देखता रहा, उर्वशी अब घबड़ाई। अब उसके पास फेंकने को भी कुछ भी न बचा था। अब और नग्न होना असम्भव था। अब कुछ था ही नहीं। अब वह नग्न, और सीधी, और साफ खड़ी थी। अब और उघाड़ने को कुछ बाकी न बचा था। और एक ऋषि देखे ही चला जा रहा था।

उस ऋषि ने उर्वशी को थका और घबड़ाया हुआ देखकर कहा, और कुछ फेकना हो तो फेंक दो। अगर यह चमड़ी फेंकनी हो तो चमड़ी फेंक दो। इस केंचुल को भी उतार डालो। आज मैं देखने को ही खड़ा हूं कि आखीर में है क्या? मैं पूरा ही देखने को आज आ गया हूं।

उर्वशी उसके पैरों पर गिर पड़ी। उसने कहा, फिर मैं आपसे हार गई। क्योंकि जो पूरा ही देखने को राजी है, वह आखीर में पा ही लेगा कि कुछ भी नहीं है। जो पूरा ही देखने को राजी है, वह जान ही लेगा कि कुछ भी नहीं है। जो पूरा देखने के पहले रुक जाता है, उसका रस भी भीतर रुक जाता है, कि शायद कुछ शेष रह गया, उसे और जान लेता। और वह जो शेष रह गया है, वही उसके प्राणों की जकड़ हो जाती है। अब आपको हराने का मेरे पास कोई उपाय नहीं। मैं हार गई।

उर्वशी पैर पर गिर पड़ी। वह ऋषि नहीं हराया जा सका।

क्यों ?

क्योंकि वह अन्त तक देखने की तैयारी और साहस किया था। चित्त की वृत्तियां भी उर्वशियों की भांति हैं। जो उनको पूरा, उनकी पूरी नग्नता में, उनकी पूरी नेकेडनेस में देखने को तैयार हो जाता है, उनके सब वस्त्र उतारकर—वे चित्त की वृत्तियां भी पैरों पर गिर जाती हैं और क्षमा मांग लेती हैं कि अब हम हार गए।

लेकिन जो चित्त की वृत्तियों को छिपा लेता है, वस्त्रों में ढांक देता है, आंख बंद कर लेता है, वह हार जाता है वृत्तियों से। वृत्तियों से वही जीतता है, जो वृत्तियों को पूरा देखने के लिए तैयार और तत्पर है।

यह तैयारी निरीक्षण की, जागरण की—वृत्तियों को उनकी समग्रता में, उनकी पूर्णता में—जीवन को बदलने, नया करने, सत्य की ओर आंखें खोलने, जीवन की जो जड़ें हैं, उनको पहचानने का मार्ग है। इसका साहस चाहिए।

और साहस का एक ही अर्थ है : अपनी हमने जो प्रतिमा बना रखी है, स्वयं को हम जो समझे हुए बैठे हैं, और समझा रहे हैं कि हम हैं—उसे गिर जाने का, उसकी ईटें खिसक जाने का, उसके भवन के मिट जाने का हम में बल चाहिए, कि हम उसे गिरता हुआ देख सकें।

और पुराना चर्च गिरे, तो ही फिर नया चर्च बन सकता है। मैं फिर से वह कहानी, जिससे मैंने तीन दिन पहले सुबह की चर्चा शुरु की थी, दोहरा देता हूं।

एक पुराना चर्च था। गिरने को हो आया था। हवा के झोंके चलते थे, तो उसकी दीवालें कंपती थीं और पलस्तर गिरता था। उसके भीतर खड़े होकर प्रार्थना करना असम्भव था। प्रार्थना दूर, उसके निकट से निकलना असम्भव था। खतरा था वह कभी गिर जाय और प्राण ले ले। पुरानी चीजों का होना, हमेशा खतरा है, वे कभी भी गिर सकती हैं और प्राण ले सकती हैं।

फिर चर्च की कमेटी बैठी और उसने निर्णय किया। उसने चार प्रस्ताव पास किए—एक, कि पुराना चर्च गिरा देना है। दो, कि नया चर्च बनाना है। तीन, कि नए चर्च को पुराने चर्च की ईटों, पत्थरों और सामान से ही बनाना है। और चार, कि जब तक नया चर्च न बन जाय, तब तक पुराना चर्च नहीं गिराना है।

पहले दो प्रस्ताव तो ठीक थे। लेकिन पिछले दो प्रस्ताव बड़े पागलपन के हैं। पुराने चर्च की ईटों से नया चर्च कभी बन ही नहीं सकता। वह पुराना ही होगा। उसका ही माडीफाइड रूप होगा। फिर पुराना जब तक न गिरे, तब तक नया बनाना नहीं है! तो नया बनेगा ही नहीं। क्योंकि पुरानी भूमि ही नए के बनने की भूमि भी है। पुराना गिरे तो ही नया बन सकता है।

यह जो हमारा मन है, यह जो मन का मन्दिर है, यह जो पुराना मन्दिर है—जिसमें हम बैठे हैं, और जिसमें हम कंप रहे है कि यह कभी भी गिर सकता है। जिसके गिरने के भय से एंगजायटि, एंगर, चिंता और संताप पैदा होता है। और हर आदमी जीवन भर चिंता में रहता है कि कब गिर जाएगा यह मंदिर, जिसके नीचे मैं बैठा हूं। रात न सो पाता है चैन से, न दिन जाग पाता है। चौबीस घंटे इसके गिरने का डर है। इस डर को जब तक हम जीतेंगे नहीं और इसके लिए राजी न हो जाएंगे कि इसे खुद ही गिरा दें, तब तक हम नए मंदिर को बना नहीं सकते हैं।

चित्त का यह जो झूठा मंदिर हमने बना रखा है अपने चारों तरफ—यह सही नहीं है। अगर यह सही होता तो हम शांत हो गए होते। अगर यह सही होता तो हमारा चित्त एक फूल की तरह खिल गया होता। अगर यह सही होता तो हमारे जीवन में सुगन्ध फैल गई होती। अगर यह सही होता तो हम आपको जान लिए होते, जो अमृत है। अगर यह सही होता तो तो हम उसे पहचान लेते, जो जीवनों का जीवन है, जो परमात्मा है। लेकिन यह सही नहीं है। और इसको हम सम्हाल के बचा रखना चाहते हैं! तो जो सही है, उसे हम कभी

जान भी न पाएंगे और बना भी नहीं पाएंगे। इसे तोड़ने की हिम्मत होनी ही चाहिए।

जो आदमी विध्वंस करने को राजी हो जाता है, वही आदमी सृजन करने में भी समर्थ होता है। डिस्ट्रक्शन, विध्वंस—क्रिएशन का, सृजन का पहला सूत्र है। एक इमेज है हमारी, एक प्रतिमा है, उसे गिराने का साहस ही हमें अंतरात्मा के ज्ञान में ले जा सकता है। और यह ज्ञान, निरीक्षण, जागरुकता, एक-एक वृत्ति के अनुसरण से सम्भव होता है और फलित होता है।

सुबह मुझे इतनी ही बात कहनी थी। अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे। थोड़े-थोड़े फासले पर हम हो जाएं।

०

साधना-शिविर माथेरान, दिनांक २१।१०।६६, सुबह

९. बस एक कदम

शिविर की इस अन्तिम रात्रि में थोड़े से प्रश्नों पर और हम विचार कर सकेंगे। कुछ प्रश्न तो ऐसे हैं, जो मेरे शब्दों को, विचारों को ठीक से न सुन पाने, न समझ पाने की वजह से पैदा हो गए हैं। एक शब्द भी यहां से वहां कर लें, तो बहुत अन्तर पैदा हो जाता है।

उन प्रश्नों के तो उत्तर मैं नहीं दे पाऊंगा। निवेदन करूंगा कि जो मैंने कहा है, उसे फिर एक बार सोचें। उसे समझने की कोशिश करें। जरा सा भेद आप कर लेते हैं, कुछ अपनी तरफ से जोड़ लेते हैं या कुछ मैंने जो कहा, उसे छोड़ देते हैं, तो बहुत सी भ्रान्तियां, दूसरे अर्थ पैदा हो जाते हैं। और जरा से फर्क से बहुत बड़ा फर्क पैदा हो जाता है।

एक राजधानी में उस देश के धर्मगुरुओं की एक सभा हो रही थी। सैकड़ों धर्मगुरु देश के कोने-कोने से इकट्ठे हुए थे। उस नगर ने उनके स्वागत का सब इन्तजाम किया। सभा का जब उद्घाटन होने को था, तो मंच पर से परदा उठाया गया। पांच छोटे-छोटे बच्चों के गले में हेलो, इसके पांच अक्षरों—एच, ई, एल, एल, ओ—ये पांच बच्चों के गलों में एक-एक अक्षर लटकाकर एक के बाद एक बच्चा बाहर आया स्वागत के लिए।

चार बच्चे आकर खड़े हो गए। पांचवां छोटा बच्चा हैरान हुआ, वह भूल गया, कहां खड़ा होना है। वह पीछे न खड़ा होकर आगे पंक्ति में खड़ा हो गया। हैलो की जगह "ओ हेल" बन गया। वह, स्वागत की जगह वहां नरक! उतने से एक अक्षर के यहां से वहां होने पर...कहां स्वागत का स्वर्ग था, कहां नरक उपस्थित हो गया!

एक नास्तिक ने अपने घर पर लिख छोड़ा था, "गॉड इज नो व्हेअर"। एक छोटा सा बच्चा पड़ोस का उसे पढ़ रहा था, नया-नया पढ़ने वाला था। उसने पढ़ा "गॉड इज नाउ हिअर"! वह

नास्तिक सुनकर हैरान हो गया। उसने लिखा था "गॉड इज नो व्हेअर" ईश्वर कहीं भी नहीं है। और बच्चे ने पढ़ा, गॉड इज नाउ हिअर, ईश्वर यहीं है—यहीं और अभी!

दो पुरोहित अपनी शिक्षा के लिए एक आश्रम में भर्ती हुए थे। उन दोनों को ही सिगरेट पीने की आदत थी। एक घंटे के लिए उन्हें आश्रम के बगीचे में घूमने का समय मिलता था। उसी समय वे पी सकते थे। लेकिन वह समय भी ईश्वर-चिन्तन करने के लिए मिलता था। तो उन्होंने सोचा गुरु से पूछ लेना उचित है। वे दोनों अपने गुरु के पास पूछने गए।

पहला व्यक्ति जब लौटा पूछकर तो उसने देखा कि दूसरा तो उससे पहले ही बगीचे में वापस लौट आया है और एक दरख्त के नीचे बैठकर आराम से सिगरेट पी रहा है! उसे बड़ी हैरानी हुई। उसे तो गुरू ने इन्कार कर दिया था। क्या उसके साथी को उन्होंने स्वीकार कर दिया? यह कैसे सम्भव है कि मुझे मना किया और मेरे साथी को हां भरी।

उसने क्रोध में आकर अपने मित्र को पूछा, तुम सिगरेट पी रहे हो। मुझे तो मना कर दिया है गुरु ने। उस साथी ने कहा, तुमने पूछा क्या था? उस व्यक्ति ने कहा, सीधी सी बात थी। मैंने पूछा था, क्या मैं ईश्वर-चिन्तन करते समय सिगरेट पी सकता हूं। उन्होंने एकदम कहा, नहीं, बिलकुल नहीं। तुमने क्या पूछा था?

वह दूसरा मित्र हंसा। उसने कहा, मैंने पूछा था, क्या मैं सिगरेट पीते वक्त ईश्वर-चिन्तन कर सकता हूं? उन्होंने कहा, हां। बिल्कुल।

ये दोनों बातें एक ही अर्थ रखती हैं। लेकिन एक ही परिणाम नहीं निकला। दोनों से बिल्कुल दूसरा परिणाम निकला। ईश्वर-चिन्तन करते समय कौन आज्ञा देगा कि सिगरेट पीओ। लेकिन सिगरेट पीते वक्त अगर ईश्वर-चिन्तन करते हो, तो अच्छा ही है, इसमें बुरा क्या है। वैसे बात दोनों एक ही हैं। लेकिन इतने ही फर्क से जमीन-

आसमान का फर्क पैदा हो जाता है।

तो उन सारे प्रश्नों को तो मैं छोड़ दूंगा, जिनमें आपने शब्दों को, भावों को विचारों को समझने की कोशिश नहीं की है—हेरफेर कर ली है, बदली कर दी है, अपने मन से कुछ जोड़ लिया या कुछ घटा दिया है। उन सब पर विचार करने का तो समय नहीं है। इतना ही निवेदन करूंगा उन सबके सम्बन्ध में कि जो मैंने कहा है, उसे फिर गौर से सोचें, उसका फिर से निरीक्षण करें, समझें। तो जो मुझसे पूछा है, उसके उत्तर आपको अपने से ही मिल जाएंगे।

कुछ और प्रश्न हैं।

एक मित्र ने पूछा है कितने समय में हम ध्यान को उपलब्ध हो सकेंगे।

कोई सामान्य उत्तर नहीं हो सकता है। क्योंकि ध्यान को कितने समय में उपलब्ध हो सकेंगे, यह मुझ पर नहीं, आप पर निर्भर है। और इसके लिए कुछ ऐसा नहीं हो सकता कि सभी लोग एक ही समय में उपलब्ध हो सकें। आपकी तीव्रता, आपकी प्यास, आपकी लगन, आपकी अभीप्सा, इन सब पर निर्भर करेगा। एक क्षण में भी उपलब्ध हो सकते हैं और पूरे जीवन में भी न हों। एक क्षण में भी तीव्र प्यास का एक क्षण भी, इन्टेन्सिटी का एक क्षण भी जीवन को बदल सकता है। और नहीं तो, धीरे, धीरे, धीरे—कोई तीव्रता नहीं है, कोई सीरियसनेस, कोई गम्भीरता नहीं है, कि उसे हम प्यास की तरह पकड़ें।

एक आदमी प्यासा है तो उसकी पानी की खोज और बात है। और एक आदमी प्यासा नहीं है, उसकी पानी की खोज बिल्कुल दूसरी बात है। प्यास तो खोज लेगी पानी को। और जितनी तीव्र होगी, उतनी तीव्रता से खोज लेगी।

एक पहाड़ी रास्ते पर एक यात्री जाता था। एक बूढ़े आदमी को बैठा हुआ देखा उसने और कहा, गांव कितनी दूर है और मैं कितने समय में पहुंच जाऊंगा? वह बूढ़ा ऐसे बैठा रहा, जैसे उसने न सुना

हो या बहरा हो। वह यात्री हैरान हुआ। उस बूढ़े ने कुछ भी न कहा। यात्री आगे बढ़ गया, कोई बीस कदम गया होगा, वह बूढ़ा चिल्लाया—सुनो, एक घंटा लगेगा। उस आदमी ने कहा, यात्री ने कि अजीब हो, मैंने जब पूछा था, तुम चुप रहे। उसने कहा, मैं पहले पता तो लगा लूं कि तुम चलते कितनी रफ्तार से हो। तो जब बीस कदम मैंने देख लिए कि कैसे चलते हो, तो फिर मैं समझ गया कि एक घण्टा तुम्हें पहुंचने में लग जाएगा। तो मैं क्या उत्तर देता पहले, उस बूढ़े ने कहा, जब मुझे पता ही नहीं कि तुम किस रफ्तार से चलते हो। तुम्हारी रफ्तार पर निर्भर है गांव पर पहुंचना—कितनी देर में पहुंचोगे, इसलिए मैं चुप रह गया।

आपकी रफ्तार पर निर्भर है। आप कैसी तीव्रता से, कितनी गम्भीरता से, कितनी सिनसिअरटि से, कितनी ईमानदारी से जीवन को बदलने की आकांक्षा से अभिप्रेरित हुए हैं, इस पर निर्भर है। एक क्षण में भी यह हो सकता है। एक जन्म में भी न हो। समय का कोई भी सवाल नहीं है। समय का रत्ती भर भी सवाल नहीं है। क्योंकि ध्यान में समय के द्वारा हम नहीं जाते हैं। ध्यान में हम जाते हैं अपनी प्यास और तीव्रता के द्वारा।

भीतर कोई टाइम नहीं है, भीतर कोई समय नहीं है। सब समय बाहर है। अगर बाहर यात्रा करनी हो, तब तो समय निश्चित लगता है। लेकिन भीतर यात्रा करनी हो, प्यास अगर परिपूर्ण हो, तो समय लगता ही नहीं। बिना समय के एक पल में, एक पल में भी नहीं—भीतर पहुंच जा सकते हो। लेंकिन वह निर्भर करेगा—मुझ पर नहीं, आप पर।

और यह जरूर कहूंगा, हमारी गम्भीरता, हमारी प्यास अत्यल्प है। अगर अत्यल्प न हो, अगर बहुत कम न होती, तो हम शब्दों और शास्त्रों से तृप्त न हो जाते।

एक आदमी को प्यास लगी है, क्या हम पानी के सम्बन्ध में लिखी हुई उसे कोई किताब दें, वह तृप्त हो जाएगा? उस किताब

को रोज पढ़ता रहेगा? किताब फेंक देगा, वह कहेगा किताब मैं क्या करूंगा। मुझे प्यास लगी है, मुझे पानी चाहिए। पानी के ऊपर लिखा हुआ शास्त्र नहीं।

लेकिन मैं तो देखता हूं परमात्मा के ऊपर लिखे शास्त्रों को लिए लोग बैठे हैं! वे कोई भी नहीं कहते कि हमें किताब नहीं चाहिए, हमें परमात्मा चाहिए! हमें प्यास लगी है, यह वे कोई भी नहीं कहते। रखे बैठे रहें वे शास्त्र को। उनके भीतर प्यास नहीं है, इसलिए वे शास्त्र को पकड़े बैठे हुए हैं। जिसके भीतर प्यास हो, वह शास्त्र से कभी तृप्त हुआ है? वह किताब से, शब्द से कभी तृप्त हुआ है? वह नहीं हो सकता तृप्त।

मैं तो अधिक लोगों को किताबों से तृप्त हुआ देखता हूं। इसलिए लगता है कि कोई प्यास नहीं है। नहीं तो वे परमात्मा को खोजते-खोजते—सत्य को—शब्दों को तो नहीं पकड़कर बैठ जाते। हम सब शब्दों को पकड़कर बैठे हुए हैं। यह प्यास की न्यूनता का सबूत है, प्रमाण है। शब्दों को पकड़कर बैठे रहिए, तो कभी नहीं पहुंच सकेंगे। खोजिए अपनी प्यास को—भीतर कोई प्यास है? सच में कोई भीतर आकांक्षा सरकती है—जीवन को जानने की कोई जिज्ञासा?

और अगर है तो फिर दूसरी बात ध्यान में रखना पड़ेगी। इस जिज्ञासा को बोथला मत कर दीजिए। जिज्ञासा को हम बोथला कर लेते हैं। भीतर जिज्ञासा है जानने की और हम मान लेते हैं दूसरों की बातों को, तो जिज्ञासा बोथली हो जाती है, कुण्ठित हो जाती है। भीतर है जानने की जिज्ञासा? क्या है? और हम मान लेते हैं—आत्मा है, परमात्मा है! मान लेते हैं चुपचाप! इस मान लेने के कारण, इस विश्वास के कारण, ऐसी बिलीव्हस के कारण फिर जिज्ञासा आगे गहरी नहीं हो पाती है।

विश्वास जिज्ञासा को रोक लेते हैं, ठहरा लेते हैं, फिर जिज्ञासा गहरी नहीं हो पाती। अगर जिज्ञासा को गहरा करना है, तो विश्वासों

को मत पकड़ना, थोथे ज्ञान को मत पकड़ना; सुने-सुनाए ज्ञान को, पढ़े-पढ़ाए ज्ञान को मत पकड़ लेना—वह सब जिज्ञासा को मार डालेगा। क्यों? क्योंकि बिना जाने हमें यह भ्रम पैदा हो जाएगा कि हम जानते हैं। हम सबको यह भ्रम है कि हम जानते हैं। ईश्वर है—हम सबको यह भ्रम है। हम जानते हैं—मोक्ष है! हम सबको यह भ्रम है! हम जानते हैं—पुनर्जन्म है! हम सबको यह भ्रम है! हम जानते हैं कर्म है, आत्मा है, फलां है, ढिकां है! हम सब कुछ जानते हुए मालूम पड़ते हैं!

यह जानते हुए मालूम पड़ना घातक है। यह आपकी प्यास की हत्या कर देगा। और फिर आपके भीतर वह ज्वलंत प्यास नहीं रह जाएगी, जो पहुंचा सकती है। इस सबको छोड़ देने के लिए इसलिए मैंने इधर तीन दिनों में आपसे कहा। जानें ठीक से—कि मैं अज्ञानी हूं, नहीं जानता हूं।

जो व्यक्ति इस बात को ठीक से जानता है कि मैं नहीं जानता हूं, उसकी प्यास अदम्य हो उठती है। क्योंकि अज्ञान से कोई भी तृप्त नहीं हो सकता है। ज्ञान से तृप्त हो सकता है। तथाकथित ज्ञान से तृप्त हो सकता है। लेकिन अज्ञान से कोई कैसे तृप्त हो सकता है? अज्ञान तो धक्के देता है। अज्ञान तो एक अतृप्ति पैदा करता है, एक डिस्कन्टेन्ट कि बदलो, इस अज्ञान को बदलो।

लेकिन हम अज्ञान को छिपा लेते हैं शब्दों के ज्ञान में। फिर अज्ञान की ताकत टूट जाती है, वह हमें धक्के नहीं दे पाता। और तब हम एक मीडियाकर, एक बिल्कुल ही कुनकुने आदमी, जिसके जीवन में कोई जीवन्त-बल, कोई जीवन्त-ऊर्जा नहीं है—ऐसे आदमी हो जाते हैं—बुझे-बुझे। जिसकी ज्योति जलती नहीं।

हम सब बुझे-बुझे आदमी हैं। इसलिए देर लगती है पहुंचने में। जलता हुआ आदमी होना चाहिए। पूरा जीवन एक ज्वलंत, एक जीवंत, एक लिविंग शक्ति, एक ताकत होनी चाहिए। और हम सब

हो सकते हैं। लेकिन अपने ही हाथों हम नहीं हैं।

मुझ पर नहीं निर्भर है, आप पर निर्भर है। चाहें तो इसी क्षण—अभी और यहीं, बात पूरी हो सकती है। एक क्षण में भी बातें हुई हैं।

एक साधु था। उसके आश्रम में बहुत लोग थे। एक युवक आया था आश्रम में। वह अत्यन्त विवादी था, आरग्यूमेन्टेटिव था, हर किसी से विवाद करता। बहुत तर्कनिष्ठ भी था। जो बात कहता, उसमें तर्क का बल भी होता। लेकिन चौबीस घंटे विवाद, विवाद। एक संन्यासी यात्रा करते हुए उस आश्रम में ठहरा। उस संन्यासी के साथ भी उस युवक का विवाद हो गया। और घंटे, दो घंटे में उसने संन्यासी की चिंदियां-चिंदियां अलग कर दीं। संन्यासी पराजित, दुखी वापस लौटा।

उस युवक के गुरु, उस बूढ़े साधु ने, जो उस आश्रम में था, उसने उस युवक को कहा, मेरे बेटे, तुम कब तक व्यर्थ ही बोलते रहोगे? तुम कब तक अपने जीवन को व्यर्थ की बातों में गंवाते रहोगे? कब तक?

पता है आपको—उस युवक ने उत्तर दिया? नहीं, उसने फिर उत्तर देना भी व्यर्थ समझा। उस दिन के बाद सारा जीवन मौन में बीत गया। इसका उत्तर भी नहीं दिया। क्योंकि उसकी भी क्या जरूरत थी। बात खतम हो गई। उसे यह बात दिखाई पड़ गई, यह व्यर्थता। इस सारे विवाद की, तर्क की—इस जाल की व्यर्थता दिखाई पड़ गई। बात खतम हो गई। उसने फिर यह नहीं कहा, कब तक। कल, परसों, अगले वर्ष; एक वर्ष बाद, दो वर्ष बाद। नहीं, बात दिख गई और समाप्त हो गई।

जब कोई बात दिखाई पड़ती है, उसी वक्त समाप्त हो जाती है। दिखाई ही नहीं पड़ती, इसलिए सवाल उठता है कि कब, कितने दिनों में? कैसे? देखने की कोशिश करें। जो चीज दिखाई पड़ जाएगी—दिखाई पड़ने से ही एक परिवर्तन तत्क्षण हो जाता है।

फिर उसके गुरु को कई लोगों ने कहा, यह आदमी तो बड़ा पागल मालूम होता है ? कल तक इतना विवाद करता था। इसे क्या हो गया ? उसके गुरु ने कहा, मैं खुद हैरान हो गया इसे देखकर, चकित हो गया। मुझे यह कल्पना न थी। मैंने पूछा था, कब तक ? उसने इसका भी फिर उत्तर नहीं दिया। बात फिजूल हो गई। दिख गई तो फिजूल हो गई।

एक बहुत बड़ा वैयाकरण था। बहुत बड़ा व्याकरण का विद्वान था। उसका पिता दिन-रात, राम राम, राम, राम जपा करता था। विद्वान की उम्र साठ वर्ष हो गई, पिता की कोई अस्सी के करीब होगी। उसके पिता ने एक दिन उसको बुलाकर कहा कि बेटे अब तुम भी बूढ़े हो गए। अब राम के स्मरण का समय आ गया। मैंने तुझे कभी मंदिर जाते नहीं देखा। मैंने कभी तुम्हें धर्म की बात करते नहीं देखा! मैंने कभी तुम्हारी इस तरफ, परमात्मा की तरफ उत्सुकता नहीं देखी! अब कब तक ? बूढ़े हो गए हो तुम भी, साठ वर्ष पार हो गए तुम्हारे भी। कब तक ?

उस बेटे ने कहा, मैं भी आपको देखता हूं वर्षों से राम-राम जपते, मन्दिर जाते--रोज वही करते। जो कल भी किया था, आज भी आप करते हैं। लेकिन कल जब उस करने से कुछ उपलब्ध नहीं हुआ, तो आज कैसे उपलब्ध हो जाएगा ? तीस वर्षों से मैं भी देखता हूं। तीस वर्षों में रोज मन्दिर जाते देखा, ग्रंथ पढ़ते देखा, राम-राम जपते देखा। अगर तीस वर्षों में कुछ नहीं हुआ वही करते हुए, तो आज उसके करने से और क्या हो जाएगा ?

उस युवक ने कहा, किसी दिन मैं मन्दिर जाऊंगा। लेकिन जहां तक मैं समझता हूं, वह मेरा मन्दिर जाना अन्तिम होगा। दो कारणों से। या तो मन्दिर से मैं लौटूंगा ही नहीं। और या लौट आया तो फिर मन्दिर नहीं जाऊंगा। वह अन्तिम और प्रथम मन्दिर मेरा जाना होगा।

बाप नब्बे वर्ष का हो गया। लड़का सत्तर वर्ष पार कर गया।

सत्तरवीं वर्षगांठ थी उसकी। उस दिन सुबह ही उसने अपने पिता के पैर छुए और कहा, मैं मन्दिर जाता हूं। सारे गांव के लोग इकट्ठे हो गए, यह खबर सुनकर कि वह आदमी जो कभी मन्दिर के पास नहीं फटका, आज मन्दिर जा रहा है। सारा गांव इकट्ठा हो गया।

वह व्यक्ति मन्दिर गया। लेकिन वह जाना अन्तिम था। मन्दिर में वह आंख बंद करके खड़ा हुआ, और श्वांस समाप्त हो गई। उसका पिता रोने लगा। उसके पिता ने कहा, बहुत बार मैं मन्दिर गया, लेकिन आज तक मैं मन्दिर नहीं पहुंच पाया। और यह मेरा लड़का आज मंदिर गया और पहुंच भी गया।

प्राण अगर पूरी प्यास से—प्राण अगर पूरी प्यास से, प्राण का कण-कण अगर पूरी प्यास से भरकर एक क्षण भी ठहर जाय, तो परमात्मा से मिलन सुनिश्चत है, सत्य से मिलन सुनिश्चित है। लेकिन बिना प्यास के हम भटकते रहते हैं, भटकते रहते हैं। और पूछते रहते हैं, कैसे होगा, कब होगा, क्या होगा! कभी नहीं होगा, ऐसे कभी नहीं होगा। होने के लिए चाहिए एक त्वरा, एक पैशन—इसी क्षण हो सकता है।

उचित है कि इस अन्तिम दिन इसको हम ठीक से समझ लें खोज लें अपने भीतर, कि कोई प्यास है। न हो प्यास तो फिजूल क्यों इन सब बातों में समय को गंवाना। न हो प्यास तो ठीक है। जिस बात की प्यास हो, उसी तरफ जाएं। ईमानदार तो होएं अपनी प्यास में कम से कम। कम से कम एक ईमानदारी तो होनी चाहिए। जो मेरी प्यास नहीं है, उस तरफ नहीं जाऊंगा। जिस तरफ मेरी प्यास है, उसी तरफ जाऊंगा। चाहे दुनिया कुछ भी कहे।

अगर इतनी ईमानदारी हो, तो एक दिन सारी प्यास व्यर्थ हो जाती है, सिर्फ परमात्मा की प्यास ही फिर शेष रह जाती है। और तब एक बल के साथ, एक त्वरा के साथ, एक गति के साथ सारा जीवन परमात्मा के सागर की तरफ दौड़ने लगता है। जैसे नदियां

सागर की तरफ दौड़ती, पहाड़ों को छलांगती, मैदानों को पार करतीं, पत्थरों को तोड़तीं--किसी दूर अनन्त सागर की यात्रा करती रहती हैं, वैसे ही ......।

लेकिन अगर हम जीवन भर ऐसी प्यासों के पीछे भी दौड़ते रहें, जिनकी हमें कोई प्यास ही नहीं है। तो हमारा मन अगर बोथला हो जाय, कुंठित हो जाय, अगर सारी गति अवरुद्ध हो जाय, तो आश्चर्य नहीं है। मनुष्य को खोजना चाहिये—मेरी खोज क्या है, मेरी सर्च क्या है? क्या खोजना चाहता हूं?

लेकिन हम दूसरों की बातों से खोज में लग जाते हैं, इसलिए कठिनाई है। हम दूसरों की बातों से खोज में लग जाते हैं! इसलिए कठिनाई है। कुछ लोग ईश्वर की बातें करते हैं, आत्मा की बातें करते है, हमारे लोभ को पकड़ जाती हैं वे बातें। हम सोचते हैं, यह भी मिल जाय तो अच्छा है। यह भी हमारे मिलने के जो बहुत से आइटम हैं हमारी लिस्ट में, जो-जो चीजें हमें पानी हैं—फर्नीचर अच्छा, कार, मकान—इनमें इस ईश्वर को भी सम्मिलित कर लेते हैं। यह भी, इसी, इन्हीं कमोडिटीज में, इन्हीं चीजों में एक चीज है, यह भी मिल जाय तो अच्छा ही है।

ईश्वर हमारे सामानों की फेहरिस्त में एक सामान नहीं है। हमारी सामग्री की चाह में एक सामग्री नहीं है। और इस भांति जो सत्य को चाहता होगा, उसे सत्य कभी मिलने वाला नहीं है।

ईश्वर या सत्य बात ही और है। वह हमारे समग्र प्राणों की समग्र प्यास है—पूरी, इकट्ठी, टोटल, उससे कम नहीं। और वह तभी पैदा होती है, जब जीवन की सब चीजों को हम गौर से देख—देखकर, सब तरफ पाते हैं कि कहीं कोई तृप्ति नहीं है, सब जगह असंतोष है। सब जगह जब डिसकंटेन्ट मिलता है, जब सब जगह हमारा यह भ्रम टूट जाता है कि कहीं भी नहीं कुछ संतोष मिलता, कहीं कोई शाति नहीं मिलती, कहीं कोई आनन्द नहीं मिलता......

जब सब तरफ हम जांच लेते हैं, दौड़ लेते हैं, खोज लेते हैं......।

मैं कहता हूं, खोज लेना चाहिये। क्योंकि बिना खोजे सबको—हमारी कच्ची खोज, कच्ची प्यास होगी। खोज लेना चाहिए ठीक से जीवन में कहां मिल सकता है आनन्द, कहां मिल सकती है शान्ति, कहां मिल सकता है संतोष। और जब कहीं न मिले, जब सब मोर्चे पराजित हो जाएं, कोई मोर्चा न रह जाय और जब हम खड़े हो जाएं कि नहीं कहीं मिलता है, कहीं भी नहीं, नो व्हेअर, जब दिखाई पड़े कहीं भी नहीं, उसी क्षण सारी यात्रा एक नए बिन्दु पर दौड़ने लगेगी, जो स्वयं का है, जो स्वयं के भीतर है। उस तरफ एक दौड़ शुरू होगी।

लेकिन हमारी दौड़ और तरह की है। हम एक ऐसे मकान में बैठे हुए हैं कि कोई उपदेशक आकर हमको समझाता है कि मकान में आग लगी हुई है। हम उससे पूछते हैं, वह तो ठीक है, लगी होगी, लेकिन हम कब तक निकल पाएंगे इस मकान से। साफ है मतलब, उपदेशक कहता है आग लगी है, इसलिए हमने मान लिया आग लगी है, अब हम पूछ रहे हैं कि कब तक निकल पाएंगे।

हमको आग दिखाई पड़ जाय तो हम यह पूछेंगे कि कब तक निकल पाएंगे? उपदेशक पीछे रह जाएगा, हम पहले निकल जाएंगे। उसको एक धक्का देंगे कि रास्ता छोड़ो, मुझे बाहर जाने दो, तुम भला फिर समझाना किसी को। अब यहां समझने की फुर्सत नहीं है मुझे। हम उसे धक्का देंगे और बाहर निकल जाएंगे।

लेकिन हमें तो आग दिखाई नहीं पड़ती। लोग समझाते हैं कि आग लगी हुई है। जीवन में दुख है, पीड़ा है—लोग समझाते हैं। हमारी समझ में तो कुछ आता नहीं। इसलिए हमारी समझ में कुछ और ही आता है और ये समझाने वाले कुछ और समझाते हैं। एक झूठी प्यास पैदा हो जाती है। उस झूठी प्यास के कारण सवाल उठता है कब तक?

अपनी प्यास को खोजना चाहिए—क्या वह सच्ची है? और

न हो सच्ची, तो उस प्यास को दो कौड़ी का समझ कर फेंक देना चाहिए। चाहे वह ईश्वर की ही प्यास क्यों न हो। झूठी प्यास का कोई मूल्य है? झूठी प्यास का कोई मूल्य नहीं है। फिर जो हमारी प्यास हो, उसी को ठीक से खोजना चाहिए। और जब उस सारी खोज में नहीं मिलेगा कुछ, तब वह खोज पैदा होगी, जो उसकी है—परमात्मा की, सत्य की।

जब सब तरफ से मन हारा, थका—कहीं भी नहीं पाता. तब उठना चाहता है, तब भीतर जाना चाहता है। लेकिन हमें बचपन से ही झूठी प्यासें सिखा दी जाती हैं, उससे सारी मुश्किल हो जाती है! अपनी झूठी प्यास को छोड़ दें। सच्ची प्यास की तलाश करें। और वह तभी होगी सच्ची प्यास की खोज, जब आप, जो भी आपकी प्यास है......। चाहे सारी दुनिया कहती हो कि वह गलत है, कहने दें दुनिया को। यह जिन्दगी आपको मिली है और एक बार। इसको आप किसी के कहने पर मत जिएं। हो सकता है, वे सारे लोग गलत हों। कोई महात्मा कहता हो, कोई ज्ञानी कहता हो। मत जिएं उसकी बात को मान कर। हो सकता है वह गलत कहता हो। हो सकता है, वह कुछ भी न जानता हो। अपनी प्यास का सहारा पकड़ें और खोजें। और पूरे जागरूक होकर खोजते रहें। जागरूकता भीतर रहे और हर प्यास को खोज लें। चाहे वह कोई प्यास हो। तो आप पाएंगे कि जागरूकता बता देगी कि प्यास व्यर्थ है, यह रास्ता कहीं भी नहीं जाता है। और जब कोई रास्ता कहीं जाता हुआ न दिखाई पड़े, तब वह रास्ता उपलब्ध हो जाता है, जो प्रभु तक जाता है। उसके पहले नहीं।

प्यास को एक सजगता, ईमानदारी, एक त्वरा, एक गति, एक स्पष्टता देना जरूरी है। इस सम्बन्ध में थोड़ा खोजें, बीनें। अपनी प्यास को देखें, कहीं ये झूठी बातें तो नहीं हैं कि मैं ईश्वर को चाहता हूं। सच में चाहते हैं? तो इसी क्षण हो सकती है बात। लेकिन पूछें अपने से चाहता हूं? आप खुद को ही डांवाडोल पाएंगे भीतर, चाहता

भी हूं या नहीं।

रवीन्द्रनाथ नें एक अद्‌भुत गीत लिखा है। लिखा है कि मैं ईश्वर को खोजता था बहुत-बहुत जन्मों से। अनेक बार दूर किसी पथ पर उसकी झलक दिखाई पड़ी, मैं भागा, भागा, लेकिन तब तक वह निकल गया और दूर। मेरी सीमा थी, उस असीम की, सत्य की कोई सीमा नहीं। जन्म-जन्म भटकता रहा, कभी कोई झलक मिलती थी किसी तारे के पास। भागता जब मैं उस तारे के पास, पहुंचता, तब वह फिर कहीं और निकल गया होता था।

आखिर बहुत थका, बहुत परेशान, बहुत प्यासा, एक दिन मैं उसके द्वार पर पहुंच गया। मैं उसकी सीढ़ियां चढ़ गया। परमात्मा के भवन की सीढ़ियां मैंने पार कर लीं। मैं उसके द्वार पर खड़ा हो गया। मैंने सांकल हाथ में ले ली। बजाने को ही था, तभी मुझे ख्याल आया, अगर वह कहीं मिल ही गया तो फिर क्या होगा? फिर मैं क्या करूंगा? अब तक तो एक बहाना था चलाने का कि ईश्वर को खोजता हूं। फिर तो यह बहाना भी नहीं रह जाएगा। द्वार पर खड़े होकर घबड़ाया मन कि द्वार खटखटाऊं या न खटखटाऊं। क्योंकि खटखटाने के बाद उससे मिलना निश्चित है। यह उसका भवन आ गया। और वह मिल जाएगा। फिर? मैं उससे मिलना भी चाहता हूं? या कि केवल एक बहाना था अपने को चलाए रखने का। अपने समय को काटने का एक बहाना था। अपने को व्यर्थ न माननें की, सार्थक बनाने की एक कल्पना थी। चाहता हूं मैं उसे?

और तब मन बहुत घबड़ाया और उसने कहा, कि नहीं, दरवाजा मत खटखटाओ। अगर कहीं वह मिल गया तो फिर बड़ी मुश्किल है। फिर क्या करोगे? फिर सब करना गया। फिर सब खोज गई, फिर सब दौड़ गई। फिर सारा जीवन गया।

तब मैं डर आया और मैंने सांकल आहिस्ता से छोड़ी कि कहीं वह सुन ही न ले। और मैंने जूते पैर से बाहर निकाल लिए कि सीढ़ियां उतरते वक्त आवाज न हो जाय—कहीं वह आ ही न जाय।

ग्रौर मैं भागा उसके द्वार से। जब मैं बहुत दूर निकल ग्राया, तब मैं ठहरा, तब मैंने सन्तोष की सांस ली ग्रौर तब से मैं फिर उसका मकान खोज रहा हूं। क्योंकि खोजने में जिन्दगी चलाने का एक बहाना है। मुझे भली-भांति पता है कि उसका मकान कहां है? उसको बचा कर निकल जाता हूं। खोज जारी रखता हूं। जो भी मिलता है, उससे पूछता हूं, ईश्वर कहां है? ऐसे जिन्दगी मजे में कट रही है। एक ही डर लगता है, कहीं किसी दिन उससे मिलना न हो जाय। मकान उसका मुझे पता है।

बड़ी ग्रजीब सी बात है। लेकिन हम सबके साथ ऐसा ही है। हम सबको पता है कि उसका मकान कहां है। हम सबको मालूम है कि थोड़ा खटखटाएं ग्रौर द्वार खुल जाएंगे। लेकिन कोई तैयार है? किसी का मन राजी है?

समझ लें ग्राप उसके द्वार पर खड़े हो गए हैं जाकर ग्रौर खटकाने की बात है। जैसा क्राइस्ट ने कहा, नॉक, एंड द ढोर शॅल बी ग्रोन ग्रोपन ग्रन टू यू, खटखटाग्रो ग्रौर द्वार खुल जाएंगे। द्वार पर ही ग्राप खड़े हैं, खटखटाने की बात है। होता है मन कि खोल लें द्वार? या कि मन डरता है? या कि मन कहता है चलो, वापस लौट चलें? खोज बड़ी ग्रच्छी थी, मिल जाने पर बड़ी मुश्किल होगी, फिर क्या करेंगे?

मैं निश्चित ग्रापसे कहता हूं ग्राप भी द्वार से वापस लौट ग्राएंगे। या कौन जाने लौट ग्राए हों। रोज लौट ग्राते हों। परमात्मा का मकान बहुत दूर तो नहीं हो सकता। है तो कहीं बिल्कुल निकट, पास—सब तरफ। उसका द्वार कहीं किसी ग्राकाश में, किसी सितारे के पास तो नहीं हो सकता। है तो हर जगह। उसके रास्ते कहीं बहुत दुर्गम तो नहीं हो सकते। सब रास्ते उसी के हैं। जहां से भी हम चलें, उसी तक पहुंचेंगे, उसके ग्रतिरिक्त कुछ है नहीं।

लेकिन फिर भी हम खोज रहे हैं। तो जरूर कुछ मामला है, जरूर कुछ बात है। यह भी एक बहाना है, यह भी एक मनोरंजन है।

कभी फिल्म देख लेते हैं, कभी सत्संग कर लेते हैं। कभी नाच-गान देख लेते हैं, कभी भजन-कीर्तन सुन लेते हैं। कभी ताश खेल लेते हैं, कभी गीता पढ़ लेते हैं। इनमें फर्क थोड़ी है। ये सब एक जैसे हैं। ये सब जिन्दगी को भरने के उपाय हैं। एक मनोरंजन है। जिन्दगी फिजूल है, मीनिंगलेस है, उसमें कोई ग्रर्थ नहीं। सब तरफ से हम ग्रर्थ पैदा करने की कोशिश करते हैं। इसमें ईश्वर को भी ठकठका लेते हैं कि शायद इससे भी कुछ ग्रर्थ पैदा हो। शायद कुछ रस ग्रा जाय, कुछ मजा ग्रा जाय, कोई थ्रिल पैदा हो जाय, कोई एक्साइटमेंट मिल जाय इससे भी। शायद इससे भी एक नया ग्रनुभव मिल जाय। ऐसी खोज चल रही है। यह खोज कोई बहुत गहरी, कोई प्यास की खोज नहीं है। इस सबको सोचना, देखना, जानना चाहिए, तो शायद गहरी खोज पैदा हो जाय।

ग्रभी मैं ग्रा जाऊं ग्रापके पास ग्रौर एकदम से कहूं, चलो चलते हो मिला दूं ईश्वर से। तो ग्राप कहोगे, कल सुबह मुझे घर वापस जाना है। ग्रौर टिकट तो रिजर्व करा ली है। टिकट भी रिजर्व न कराई होती, तो शायद ग्रापकी बात पर हम विचार भी करते। फिर कभी, ग्रागे कभी, फिर कभी मिलिए, फिर देखेंगे, फिर सोचेंगे। ऐसा ही मन है। ग्रौर ऐसा मन कहां जाएगा, कहां पाएगा, क्या करेगा? नहीं, ऐसे मन से कुछ भी नहीं हो सकता है। इस पूरे मन को ही फेंक देना है। एक बिल्कुल नया मन चाहिए। उसकी ही हम इधर तीन दिनों में बात करते थे।

लेकिन बार-बार वही बात फिर पूछने हम चले ग्राते हैं। तो लगता है ऐसा......एक मित्र ग्रभी ग्राए, कि क्रोध के लिए क्या करें? मैंने उनसे कहा, सुबह मौजूद थे, कल मौजूद थे? वे मौजूद हैं। सुना होगा, समझा होगा, लेकिन फिर पूछते हैं, क्रोध के लिए क्या करें! करना चाहते हैं या नहीं करना चाहते हैं? या कि महज बहाना है कि क्या करें, क्या न करें। तो वही तो कह रहा हूं कि क्या करें। फिर बार-बार पूछते हैं, क्या करें।

शायद ऐसा लगता है कि इस भ्रम में कि हमें पता नहीं है क्या करें, इसलिए हम कुछ नहीं करते हैं—चलता चला जाता है। ठीक-ठीक पता है सब बात का। करना चाहते हैं, तो अभी कर सकते हैं। क्या कठिनाई है ? कब तक पूछते रहेंगे ? कब तक पूछते रहेंगे कि क्या करें, क्या करें, क्या करें ? नहीं, यह न पूछें। समझें और करना शुरू कर दें। कुछ एक-आध कदम तो चलें।

एक रात एक गांव के पास एक युवक अपनी लालटेन लिए हुए बैठा था। कोई चार बजे होंगे रात के। पास ही दस मील दूर एक पहाड़ी थी, उसे देखने जा रहा था। लेकिन सुबह चलेगा तो धूप हो जाएगी, कठिनाई होगी। इसलिए तीन बजे रात उठ कर चला था। फिर लालटेन लेकर गांव के बाहर पहुंचा तो अमावस की रात, घना अन्धकार......तो वह लालटेन रखकर बैठ गया। उसने सोचा लालटेन है छोटी सी, फीट-दो फीट तक रोशनी जाती है, दस मील का रास्ता कैसे पार होगा ? दस मील तक प्रकाश होता तो चले भी जाते। कुल दो फीट तक प्रकाश पड़ता है। और दस मील का लम्बा रास्ता। हे भगवान, यह नहीं हो सकता। उसने दस मील में दो फीट का भाग दिया होगा, तो समझ में आ गया कि यह तो बहुत कठिन बात है। गणित उसे मालूम था। दो फीट की रोशनी है, दस मील का रास्ता है—अंधेरे से भरा हुआ—काम होगा कैसे ?

वह वहां बैठ गया, सूरज निकल आए तो जाऊं। ऐसे तो काम नहीं चल सकता। पीछे से एक बूढ़ा आदमी भी उसी पहाड़ की तरफ जाता था। उसने पूछा कि बेटे, तुम बैठे क्यों हो ? उसने कहा कि मैं इसलिए बैठा हूं कि सूरज निकल आए तो जाऊं। क्योंकि रास्ता है दस मील लम्बा और मेरे पास छोटी सी लालटेन है और दो फीट रोशनी पड़ती है। कैसे होगा यह ? यह पार कैसे पड़ेगी बात ?

उस बूढ़े ने कहा, बड़ा पागल है तू। दो फीट रोशनी बहुत है। एक दफे में एक आदमी एक कदम से ज्यादा चलता ही नहीं। एक कदम चल, तब तक रोशनी दो फीट आगे हो जाएगी। फिर एक

कदम चल, तब तक रोशनी फिर दो फीट आगे हो जाएगी। तुझे हमेशा दो फीट आगे रोशनी उपलब्ध रहेगी, तू चल तो। दस मील क्या, दस हजार मील छोटी लालटेन से पार हो सकते हैं। लेकिन तू भी अजीब गणित लगाने बैठा है कि दो फीट रोशनी जाती है, तो दस मील के लिए कितनी रोशनी चाहिए ! इतनी बड़ी लालटेन नहीं बन सकती, बहुत मुश्किल है, फिर तू कभी नहीं जा सकेगा।

मैं निवेदन करूंगा, छोटी सी रोशनी जो भी दिखाई पड़ती हो, उसमें चलना शुरू कर दें। रोशनी काफी है, थोड़ी से थोड़ी भी काफी है, क्योंकि एक कदम से ज्यादा कभी कोई चल सकता है ? एक कदम चलिएगा, रोशनी और एक कदम आगे हो जाएगी। लेकिन चलना हमें नहीं है। हम हिसाब लगाने मे बहुत कुशल हैं, हम बैठकर हिसाब लगाते हैं।

मैंने आपको कहा, निरीक्षण करिए क्रोध का। आप फिर पूछते हैं, क्रोध के लिए क्या करें। निरीक्षण करिए। नहीं आज एकदम से हो सकेगा निरीक्षण। दो फीट ही सही, दस मील न सही, थोड़ा सा ही सही, लेकिन करें तो। कुछ चीजें हैं, जो केवल करके ही जानी जा सकती हैं, जिन्हें जानने का और कोई उपाय नहीं है।

एक आदमी तैरना सीखना चाहता हो, वह कहे कि पहले हमें तैरना सिखा दें, फिर हम पानी में उतरेंगे। तो बड़ी मुश्किल है। क्योंकि वह कहेगा कि जब तक मैं तैरना न सीखूं, तब तक पानी में उतरूं कैसे ? और जब तक कोई पानी में न उतरे तब तक तैरना सीखे कैसे ? फिर बात खतम हो गई, वह किनारे पर रह जाएगा आदमी, क्योंकि उसने एक शर्त लगाई है कि जब तक मैं तैरना न सीख लूं, तब तक मैं पानी में नहीं उतर सकता ! और पानी में उतरना जरूरी है तैरना सीखने के लिए भी।

आप पूछते हैं कि क्या करें ? पूरी, हमें सारी साधना स्पष्ट हो जानी चाहिए। वह स्पष्ट होगी आपके चलने से। एक कदम भर स्पष्ट हो जाय, तो काफी है। फिर आप चलिए। फिर आप उतरिए

पानी में। फिर आप सीखेंगे चलने से, गति करने से। नहीं तो जीवन भर कभी नहीं सीखेंगे।

इधर तीन दिनों में जो थोड़ी सी बातें हुई हैं, इसमें से कुछ भी—एक कण भर आपको दिखाई पड़ता हो कि करने जैसा है, तो करिए। और उस कण भर को करने में आप पाएंगे कि और आगे का रास्ता, आलोकित हो गया। उतना और चलिए और आप पाएंगे और बड़ा रास्ता आलोकित हो गया। जितना चलिए, उतना ही रास्ता प्रकाशित होता चला जाएगा।

लेकिन आप शुरू से लेकर आखीर तक पूरी पंचवर्षीय योजना अभी जान लेना चाहते हों, तो उसके लिए अपने मन से सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। वहां इस तरह की बड़ी कारीगरियां निरन्तर चलती रहती हैं! वह बड़ी लम्बी योजनाएं बनाता है। हजारों कदमों की! वे हजारों कदम तो कभी उठते नहीं, वह एक कदम भी जो उठ सकता था, वह भी नहीं उठ पाता है। एक कदम काफी है।

गांधी जी एक भजन गाया करते थे—वन स्टेप इज इनफ फॉर मी—उसमें एक पंक्ति है, एक कदम काफी है। सच है यह बात। एक कदम काफी है। लेकिन एक कदम जो नहीं चलता और हजारों कदमों का विचार करता रहता है, वह खो देता है, जीवन से वंचित रह जाता है।

एक और मित्र ने पूछा है कि मैं ईश्वर के दर्शन कैसे कर सकता हूं?

तो मैं आपसे निवेदन करूं, "आप", अर्थात् "मैं", यह कभी भी ईश्वर का दर्शन नहीं कर सकता है। "मैं" की कोई भाषा ईश्वर तक ले जाने वाली नहीं है। जिस दिन "मैं" न रह जाएगा, उस दिन तो कुछ हो सकता है। लेकिन जब तक "मैं" हूं, कि "मुझे" करना है

ईश्वर के दर्शन—तो यह "मैं" ही तो बाधा है।

विक्टोरिया, महारानी विक्टोरिया अपने पति से एक दिन लड़ पड़ी थी। उसका पति अल्बर्ट कुछ भी नहीं बोला, चुपचाप जाकर अपने कमरे में बन्द होकर द्वार उसने लगा लिया। विक्टोरिया क्रोध में थी, वह भागी हुई पीछे गई। उसने जाकर द्वार पर जोर से धक्के मारे और कहा, दरवाजा खोलो। अल्बर्ट ने पीछे से पूछा, कौन है? उसने कहा, क्वीन ऑफ इंगलैंड, मैं हूं इंगलैंड की महारानी। फिर पीछे से दरवाजा नहीं खुला। फिर वह दरवाजा ठोंकती रही, फिर पीछे से कोई उत्तर भी नहीं आया, कोई आवाज भी नहीं।

घड़ी भर बीत जाने के बाद उसने धीरे से कहा, अल्बर्ट, दरवाजा खोलो, मैं हूं तुम्हारी पत्नी। वह दरवाजा खुल गया। अल्बर्ट, मुस्कुराता हुआ सामने खड़ा था।

परमात्मा के द्वार पर हम जाते हैं—"मैं हूं इंगलैंड की महारानी", दरवाजा खोलो। वह दरवाजा नहीं खुलने वाला है। यह "मैं" जो है, "इगो", इसके लिए कोई दरवाजा नहीं खुलता। दरवाजा खुलने के लिए ह्यूमिलिटि चाहिए, विनम्रता चाहिए। और विनम्रता वहीं होती है, जहां "मैं" नहीं होता है। और कोई विनम्रता नहीं होती।

अहंकार को लेकर कोई कभी ईश्वर तक नहीं पहुंचा है, न पहुंच सकता है। खो देना पड़ेगा स्वयं को तो। छोड़ देना पड़ेगा स्वयं के इस भाव को, कि "मैं" हूं। इसे हम बड़े जोर से पकड़े हुए हैं कि "मैं हूं"। एक सख्त दीवाल बन गई हमारे चारों तरफ, जिसमें कोई किरणें प्रकाश नहीं करतीं, न ही प्रवेश कर पाती हैं। छोड़ देना होगा इस "मैं" को। तो मैं ईश्वर के दर्शन करना चाहता हूं—यह भाषा ही गलत है।

और दूसरी बात। ईश्वर के दर्शन की बात भी गलत है। ईश्वर का दर्शन कोई आदमी का दर्शन थोड़ी है कि आप गए और

सामने खड़े हो गए और आपने दर्शन कर लिया ! ईश्वर कोई व्यक्ति तो नहीं है । कोई रूप-रंग, कोई रेखा तो नहीं है । ईश्वर के दर्शन का मतलब : किसी व्यक्ति का कोई दर्शन थोड़ी मिल जाने वाला है ! ईश्वर के दर्शन का मतलब है : वह जो जीवन्त चेतना है, सर्वव्यापी, वह जो ऊर्जा है, वह जो शक्ति है जीवन की, वह जो सृजन का मूल-स्रोत है, वह जो सब तरफ व्याप्त अस्तित्व है, वह जो एक्जिसटेंस है—वही सब, उस सबका इकट्ठापन, उसकी टोटलिटी, उसकी होल-नेस, यह अस्तित्व की समग्रता और पूर्णता ही, ईश्वर है ।

तो जिस दिन मेरे अहंकार की बूंद इस विराट अस्तित्व के सागर में खोने को राजी हो जाती है, उसी दिन मैं उसे उपलब्ध हो जाता हूं, मैं उसे जान लेता हूं । बूंद खो जाए तो सागर के साथ एक हो जाती है । लेकिन बूंद कहे कि मैं सागर को जानना चाहती हूं, फिर बहुत कठिनाई है । बूंद कहे कि मैं मिटने को राजी हूं, तो जिस जगह वह मिट जाएगी, उसी जगह वह सागर को उपलब्ध हो जाती है—वहीं मिल जाएगी सागर से । अहंकार की बूंद लिए रास्ता तय नहीं हो सकता है ।

यह मत पूछें कि मैं ईश्वर के दर्शन को उपलब्ध हो सकता हूं ! नहीं, न तो 'मैं' ईश्वर के दर्शन को उपलब्ध हो सकता है और न ईश्वर का दर्शन किसी व्यक्ति का दर्शन है ।

एक मित्र ने पूछा है कि ध्यान में बैठता हूं तो बस अन्धकार ही अन्धकार दिखाई पड़ता है । कोई प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता ।

प्रकाश दिखाई पड़ने की जरूरत क्या है ? अन्धकार दिखाई पड़ता है, यही एक बीमारी है । धीरे-धीरे यह भी दिखाई नहीं पड़ेगा । जब कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा—कुछ भी; जब कुछ भी अनुभव में नहीं उतरेगा—कुछ भी; रह जाएंगे केवल जागरूक; रह जाएगा केवल ज्ञान, बोध मात्र; रह जाएगी केवल कान्शसनेस और सामने कोई भी ऑबजेक्ट नहीं, कोई भी विषय नहीं, कोई भी अनुभव

नहीं, उसी क्षण जो जान लिया जाता है, वह समग्रता का अनुभव है । उसे हम प्रेम की भाषा में परमात्मा कहते हैं ।

परमात्मा शब्द सिर्फ हमारी प्रेम की भाषा है । अन्यथा सत्य ही कहना उचित है । उस दिन हम जान पाते हैं, सत्य क्या है । लेकिन सत्य को जब हम प्रेम की तरफ से देखते हैं, जब हम सत्य को प्रेम से देखते हैं तब सत्य बड़ा दूर मालूम पड़ता है, बड़ा गणित का सिद्धांत मालूम पड़ता है, मैथमेटिकल मालूम पड़ता है । उससे कोई सम्बन्ध पैदा होता नहीं मालूम पड़ता, तब हम कहते हैं, परमात्मा । और तब एक सम्बन्ध बनता हुआ मालूम पड़ता है । एक प्रेम का नाता और एक सेतु बनता हुआ मालूम पड़ता है ।

एक मित्र ने पूछा है कि मैं आखीर में कहता हूं कि आप सबके भीतर परमात्मा के लिए प्रणाम करता हूं । या कभी कहता हूं, कि परमात्मा करे......तो मेरा मतलब क्या है ?

मेरा मतलब किसी ऐसे परमात्मा से नहीं, जो ऊपर बैठा है और सब चला रहा है । मेरा मतलब सबके भीतर बैठी हुई, सोई हुई चेतना से है । उस चेतना को ही बुलाता हूं । कोई दूर किसी परमात्मा को नहीं । वह जो आपके भीतर है और कण-कण में, पत्ते में, पत्थर में, सब में है ।

और हमारे शब्द और हमारी भाषा सब असमर्थ हैं ऐसे तो इसके बाबत कुछ कहने में । लेकिन फिर भी कुछ इशारे अत्यन्त जरूरी हैं । तो कोई नाम हम दे दें, परमात्मा कहें, सत्य कहें या कुछ भी कहें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता । मोक्ष कहें, निर्वाण कहें, ब्रह्म कहें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता । हमारे सब शब्द एक से असमर्थ हैं, उसे सूचित करने में । लेकिन शब्द के बिना कोई सूचना भी कठिन है ।

तो इसलिए निःशब्द में जाने का हम प्रयोग करते हैं, शब्द को छोड़ने का, ताकि वहां शायद उसका स्पर्श, उसका संस्पर्श हो सके ।

एक अन्तिम बात फिर हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे ।

अन्तिम बात यह मुझे कहनी है, वह भी एक मित्र ने पूछा है कि हम कैसे हो जाएं कि वह प्रगट हो सके ?

एक छोटी सी कहानी अंत में कह देनी है। उसके साथ ही बात पूरी हो जाएगी।

एक पंडित था। बहुत शास्त्र उसने पढ़े थे। बहुत शास्त्रों का ज्ञाता था। उसने एक तोता भी पाल रखा था। पंडित शास्त्र पढ़ता था, तोता भी दिन-रात सुनते-सुनते काफी शास्त्र सीख गया था। क्योंकि शास्त्र सीखने में तोते जैसी बुद्धि आदमी में हो, तभी आदमी भी सीख पाता है। सो तोता खुद ही था। पंडित के घर और पंडित इकट्ठे होते थे। शास्त्रों की चर्चा चलती थी। तोता भी काफी निष्णात हो गया। तोतों में भी खबर हो गई थी कि वह तोता पंडित हो गया है।

फिर गांव में एक बहुत बड़े साधु का, एक महात्मा का आना हुआ। नदी के बाहर वह साधु आकर ठहरा था। पंडित के घर में भी चर्चा आई। वे सब मित्र, उनके सत्संग करने वाले सारे लोग, उस साधु के पास जाने को तैयार हुए कुछ जिज्ञासा करने। जब वे घर से निकलने लगे, तो उस तोते ने कहा, मेरी भी एक प्रार्थना है, महात्मा से पूछना, मेरी आत्मा मुक्त होना चाहती है, मैं क्या करूं ? मैं कैसा हो जाऊं कि मेरी आत्मा मुक्त हो जाय ?

तो उन पंडितों ने कहा, उन मित्रों ने कहा कि ठीक है, हम जरूर तुम्हारी जिज्ञासा भी पूछ लेंगे। वे नदी पर पहुंचे, तब वह महात्मा नग्न नदी पर स्नान करता था। वह स्नान करता जा रहा था। घाट पर ही वे खड़े हो गए और उन्होंने कहा, हमारे पास एक तोता है, वह बड़ा पंडित हो गया है।

उस महात्मा ने कहा, इसमें कोई भी आश्चर्य नहीं है। सब तोते पंडित हो सकते हैं, क्योंकि सभी पंडित तोते होते हैं। हो गया होगा। फिर क्या ?

उन मित्रों ने कहा, उसने एक जिज्ञासा की है कि मैं कैसा हो

जाऊं, मैं क्या करूं कि मेरी आत्मा मुक्त हो सके ?

ह पूछना ही था कि वह महात्मा जो नहा रहा था, उसकी आंख बंद हो गई, जैसे वह बेहोश हो गया हो, उसके हाथ-पैर शिथिल हो गए। धार थी तेज, नदी उसे बहा ले गई। वे तो खड़े रह गए चकित। उत्तर तो दे ही नहीं पाया वह और यह क्या हुआ ! उसे चक्कर आ गया, गश्त आ गया, मूर्च्छा हो गई, क्या हो गया ? नदी की तेज धार थी—कहां नदी उसे ले गई, कुछ पता नहीं।

वे बड़े दुखी घर वापस लौटे। कई दफा मन में भी हुआ इस तोते ने भी खूब प्रश्न पुछवाया। कोई अपशगुन तो नहीं हो गया। घर से चलते वक्त मुहूर्त ठीक था या नहीं यह प्रश्न कैसा था, प्रश्न कुछ गड़बड़ तो नहीं था ? हो क्या गया महात्मा को।

वे सब दुखी घर लौटे। तोते ने उनसे आते ही पूछा, मेरी बात पूछी थी ? उन्होंने कहा, पूछा था। और बड़ा अजीब हुआ। उत्तर देने के पहले ही महात्मा का तो देहान्त हो गया। वे तो बेहोश हुए। मृत हो गए, नदी उन्हें बहा ले गई। उत्तर नहीं दे पाए वह।

इतना कहना था कि देखा कि तोते की आंख बंद हो गई, वह फड़फड़ाया और पिंजड़े में गिरकर मर गया। तब तो निश्चित हो गया, इस प्रश्न में ही कोई खराबी है। दो हत्याएं हो गई व्यर्थ ही। तोता मर गया था, द्वार खोलना पड़ा तोते के पिंजड़े का।

द्वार खुलते ही वे और हैरान हो गए। तोता उड़ा और जाकर सामने के वृक्ष पर बैठ गया। और तोता वहां बैठकर हंसा और उसने कहा कि उत्तर तो उन्होंने दिया, लेकिन तुम समझ नहीं सके। उन्होंने कहा, ऐसे हो जाओ, मृतवत्, जैसे हो ही नहीं। मैं समझ गया उनकी बात। और मैं मुक्त भी हो गया—तुम्हारे पिंजड़े के बाहर हो गया। अब तुम भी ऐसा ही करो, तो तुम्हारी आत्मा भी मुक्त हो सकती है।

अंत में मैं यही कहना चाहूंगा—ऐसे जियें जैसे हैं ही नहीं, हवाओं की तरह, पत्तों की तरह, पानी की तरह, बादलों की तरह।

जैसे हमारा कोई होना नहीं है। जैसे "मैं" नहीं हूं। जितनी गहराई में ऐसा जीवन प्रगट होगा, उतनी ही गहराई में मुक्ति निकट आ जाती है।

इन तीन दिनों में इस तरह ही जी सकें। उसी के लिये मैंने सारी बातें कहीं हैं। इस तरह जियें, जैसे नहीं हैं। बस, साधना का इससे ज्यादा गहरा कोई और सूत्र नहीं है।

अब हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे और फिर विदा होंगे। यह अन्तिम रात्रि है, इसलिए बहुत शांति से ध्यान में जाने का प्रयोग करें। बहुत शांति से ध्यान में जाने का प्रयोग करें।

सब लोग थोड़े दूर चले जाएं। अपनी-अपनी जगह रुक जाएं, जो जहां हैं। कोई किसी तरह की बातचीत नहीं करेगा। जो खड़े हैं, या बैठे हैं, वे सबका ध्यान रखेंगे—थोड़ी भी गड़बड़ न हो।

शांति से लेट जाएं। सारे शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। वैसे ही जैसा अभी मैंने कहा, जैसे आप हों ही नहीं। बिल्कुल ढीला छोड़ दें। जैसे कोई जीवन भी नहीं है। बिल्कुल शिथिल छोड़ दें।

शरीर शिथिल हो रहा है, छोड़ दें। आंख आहिस्ता से बन्द कर लें। शरीर शिथिल हो रहा है, अनुभव करें। शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर बिल्कुल शिथिल हो गया है। छोड़ दें। शरीर शिथिल हो गया है।

श्वांस शान्त हो रही है, श्वांस शान्त हो रही है, श्वांस शान्त हो रही है। श्वांस भी बिल्कुल ढीली छोड़ दें। अब बिल्कुल शान्त और मौन चारों तरफ जो भी आवाजें सुनाई पड़ रही हैं, उन्हें सुनें। रात्रि की आवाजें आ रही हैं, जंगल का सन्नाटा बोल रहा है, उसे मौन, जागे हुए सुनते रहें। सुनें। शांति से सुनें। भीतर जागे रहें और सुनते रहें। सुनते-सुनते ही मन शांत होता जाएगा। सुनते-सुनते मन एकदम नीरव, एकदम शांत हो जाएगा। सुनें।

सुनें, रात्रि के सन्नाटे को सुनें। सुनते-सुनते ही मन शांत और

मौन हो जाएगा।

मन शांत हो रहा है, मन शांत हो रहा है। मन शांत हो रहा है, मन शांत हो रहा है, मन शांत हो रहा है।

मन शांत हो रहा है, मन शांत हो रहा है, मन शांत हो रहा है।

मन शांत होता जा रहा है, मन शांत हो रहा है।

मन शांत हो गया है, मन शांत हो गया है, मन बिल्कुल शांत हो गया है। मन शांत हो गया है, मन एकदम शांत हो गया है। मन शांत हो गया है। मन शांत हो गया है।

मन बिल्कुल शांत और शून्य हो गया है। शून्य, बिल्कुल शून्य हो गया है।

अब धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वांस लें। धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वांस लें। फिर बहुत आहिस्ता से आंख खोलें। जैसी शांति भीतर है, वैसी ही बाहर भी है। धीरे-धीरे आंख खोलें और बाहर देखें। फिर धीरे-धीरे उठ आएं। शांति से मौन चुपचाप उठकर बैठते जाएं। धीरे, आहिस्ता अपनी-अपनी जगह चुपचाप बैठ जाएं।

दुख पहुंचाने वाली बात आपको मैंने कही हो, किसी को भी—स्वप्न में भी दुख पहुंचाने का मेरा मन नहीं है। लेकिन मजबूरी है? कुछ बातें दुख पहुंचाने वाली हो सकती हैं। अन्त में, किसी को दुख पहुंच गया हो, उससे मैं क्षमा मांगता हूं—सभी से। और विदाई के इन क्षणों में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

०

साधना-शिविर माथेरान, दिनांक २१।१०।६६, रात्रि

भगवान श्री रजनीश का नवीनतम हिन्दी साहित्य

रा. = राज संस्करण सा. = सामान्य संस्करण

१.	एक ओंकार सतनाम	रा. ७५-००	(नानक-वाणी)	सा. ५०-००
२.	दिया तले अन्धेरा	रा. ७५-००		सा. ५०-००
३.	ताओ उपनिषद्	रा. ७५-००	(भाग ३)	सा. ४५-००
४.	ताओ उपनिषद् (भाग-२)			रा. ४०-००
५.	महावीर-वाणी (भाग-३)			६०-००
६.	महावीर-वाणी (भाग-२)			३०-००
७.	महावीर-वाणी (भाग-१)			३०-००
८.	महावीर : मेरी दृष्टि में			४०-००
९.	कृष्ण : मेरी दृष्टि में			४०-००
१०.	तत्त्वमसि			४०-००
११.	शिव-सूत्र	रा. ५०-००		सा. २५-००
१२.	गूंगे केरी सरकरा	रा. ५०-००	(कबीर-वाणी)	सा. ३०-००
१३.	कस्तूरी कुंडल बसै	रा. ५०-००	(कबीर-वाणी)	सा. ३०-००
१४.	पिव पिव लागी प्यास	रा. ५०-००	(दादू-वाणी)	सा. ३०-००
१५.	गीता-दर्शन अध्याय-१०			५०-००
१६.	गीता-दर्शन अध्याय-४			३०-००
१७.	गीता-दर्शन अध्याय-८			२५-००
१८.	गीता-दर्शन अध्याय-११			२५-००
१९.	गीता-दर्शन अध्याय-५			१५-००
२०.	ईशावास्य उपनिषद्			१५-००
२१.	निर्वाण उपनिषद्			१५-००
२२.	महावीर या महाविनाश			१५-००
२३.	जीवन-क्रांति के सूत्र			१२-००

नवीनतम और पूर्व प्रकाशित साहित्य के लिए सम्पर्क सूत्र :

सचिव, रजनीश फाउन्डेशन,

श्री रजनीश आश्रम, १७, कोरेगांव पार्क, पूना-१

नये प्रकाशन

- आनन्द-गंगा
- शून्य समाधि
- सम्बोधि के क्षण
- करुणा और क्रान्ति
- क्या ईश्वर मर गया है ?

रजनीश ध्यान-केंद्र प्रकाशन